अंगारे न बुझे

रांगेय राघव

किताब महल
इलाहाबाद, बम्बई

विषय-सूची

जाति और पेशा

अब्दुल ने चिन्ता से सर हिलाया। नहीं, यह पट्टी उसी की है। वह रामदास को उस पर कभी भी कब्जा नहीं करने देगा। श्यामा जब मरा था तब वह मुझसे कह गया था। रामदास तो उस वक्त वहाँ था भी नहीं। उसका क्या हक है? आया बड़ा हिन्दू बनकर। उस वक्त कहाँ चला गया था? जब देखो तो हाथ में लट्ठ उठा-उठा कर दिखाता है। मैं कचहरी में ले जाऊँगा इसको।

उसके शरीर पर एक मैली सी मिरजई और कटि के नीचे घुटनों तक ऊँची धोती। वह बैठा-बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। इधर जो नाज महँगा बिकता है, उसके पास कुछ रुपया जमा हो गया है। वह अब किसी से भी क्यों दबे? और उसने भौं सिकोड़ कर गंभीरता से एक बार ज़ोर का कश लगाया और फिर अपने कैंची से कटे बालों पर हाथ फेरा। जब मुँह से धुआँ छोड़ा तो उसका हाथ दाढ़ी को सहला रहा था।

उसके बच्चे बाहर धूल में खेल रहे थे। उन्हें किसी की भी क्या फ़िक्र! साथ में ही रामदास के बच्चे भी थे। एक बच्चा धूल में पैर देकर ऊपर से मिट्टी थोपकर घर बनाने की कोशिश कर रहा था। जब चिलम बुझ गयी वह उठा। पत्नी को आवाज दी और कह दिया कि सम्भवतः देर में लौटेगा। पत्नी कुछ नहीं समझ सकी। अपने इन्हीं विचारों में मग्न वह शहर चल दिया।

दो मील चलकर जब वह वकील साहब के यहाँ पहुँचा तो उसने

देखा वकील साहब को एक मिनट की भी फुर्सत नहीं। किन्तु जब वह पास जा कर सलाम करके बैठ गया तो उसे पता चला कि वह सिर्फ गवाहों की भीड़ थी जिन्हें वकील साहब कल का बयान रटा रहे थे। वह चुप-चाप प्रतीक्षा करता रहा। जब बयान खत्म हो गया, उन्होंने एक गवाह से उसे सुना। उसकी गलतियों को ठीक किया और फिर सन्तुष्ट होकर कहा—'ठाकुरों को उस गाँव में कोई नहीं हरा सकता। अब जाओ।'

वकील साहब की आँखों में एक तीक्ष्णता थी जिससे उन्होंने शीघ्र ही अब्दुल को भाँप लिया। उनका काम ही यह था। उन्होंने उससे कहा—'अरे बहुत दिन बाद दिखाई दिये। इधर तो आना ही छोड़ दिया था।' फिर हँस कर कहा—'वकील और डाक्टर दूर रहें यही अच्छा है।'

वे धार्मिक आदमी थे। सुबह अँधेरे ही उठकर भजन-पूजन समाप्त कर लेते और फिर सांसारिक कामों में लग जाते। छुआछूत का पूरा खयाल रखते। जब बच्चे सुबह पढ़ने लगते वे अपने मुवक्किलों से बात करते हुए उनपर भी नजर रखते कि कोई बेकार ही पेन्सिल छील-छील कर तो समय नष्ट नहीं कर रहा है। पड़ोस के खाँ साहब से उनके पिता के समय में बहुत मेल-जोल था। किन्तु अब आना-जाना तो है नहीं, बच्चे अलबत्ता साथ खेलते हैं। उनका सिर्फ सलाम दुआ का रिश्ता है, और कुछ नहीं। वे मुसलमान, ये हिन्दू। अब पड़ोस से सब व्यवहार बंद हो चुका था। वकील साहब की सदा यही कोशिश रहती कि कैसे भी हो खाँ साहब यहाँ से उखड़ें तो मैं मध्यस्थ बन कर वह मकान किसी शरणार्थी को दिला दूँ, और बीच में जो अपना हो उसे प्राप्त करूँ।

श्यामा की भूमि पर अब्दुल का यह हक जमाना कतई नापसन्द रहा। पर उनको क्या ? उन्हें तो पैसा मिलना चाहिए।

उन्होंने कागज पर बहुत कुछ लिखा और कहा—केस पेचीदा है। जबानी किसी ने कुछ कह दिया, उसे साबित करना कठिन काम है। और कोई लिखा-पढ़ी है ?

'होती तो क्या बात थी।' उन्होंने स्वयम् कहा; क्योंकि अब्दुल खाली आँखों से देख रहा था। उन्होंने जोर देते हुए कहा—और तुम्हारी अड़ पड़ गयी है।

अब्दुल ने सिर हिला कर स्वीकार किया—हाँ, अड़ पड़ गयी है। जमीन तो ऐसी कोई बहुत नहीं है, पर रामदास जीत गया तो अब्दुल सदा के लिए दबकर रहेगा।

वकील साहब समझ गये। वे समझदार आदमी थे।

'कौन से डिप्टी की कोरट में जायगा ?' अब्दुल ने पूछा, 'ऐसी जगह पहुँचवाओ जहाँ काम हो जाय।'

वकील हँसे। कहा—तकवी के यहाँ ले जाता, पर वैसे सुन्दरभान ठीक रहेगा। क्यों ? आदमी तो वह ठीक है ?

अब्दुल ने कहा—आप जानें।

वकील साहब ने कहा—अरे भाई तुम्हारी भी तो राय लेनी चाहिये। मैं और वकीलों की तरह नहीं हूँ।

उन्होंने उसे कुछ और समझाया। रुपये गिन लिए। आश्वासन दिया। वह प्रसन्न-सा लौट आया। वकील साहब खुश हुए। सुन्दरभान से उनकी अदावत थी। वहाँ यह मुसलमान कभी नहीं जीतेगा। हिन्दू की जमीन हिन्दू को ही मिलेगी। एक पन्थ दो काज सिद्ध होंगे। तकवी दोस्त तो है, लेकिन क्या ठीक ? किन्तु अब्दुल कुछ और ही सोच रहा था। वकील को रुपये देते ही बोझ उतर गया। जिस समय वह गाँव पहुँचा उसे लगा उसने रामदास को हटा दिया था। मामूली नहीं है यह वकील। कितने गवाहों को साथ पढ़ा रहा था। जब उस झूठे मामले को वह यों ही सुलझा गया तो फिर उसका तो एक सहारा भी है। वह जरूर जीत-कर रहेगा।

तभी किसी ने कहा—कहो अब्दुल अच्छे तो हो ? बहुत दिन बाद दिखाई दिये।

गरगलाती आवाज में एक भारीपन था जिसमें अधिकार, स्नेह और चातुर्य्य की भावना थी। अब्दुल ने देखा मौलवी साहब थे। वह खुशी से अपना किस्सा सुना गया।

उसकी बात सुनकर वे उसे ऐसे देखते रहे जैसे किसी बेवकूफ को आज जिन्दा पकड़ लिया था। अत्यन्त गम्भीर मुद्रा बनाकर उन्होंने कहा—अब्दुल तू सचमुच बच्चा है।

अब्दुल चौंक उठा। उसने पूछा—क्यों? क्या बात है?

लम्बा चोग़ा पहनने वाले मौलवी साहब की उँगलियाँ उनकी खिचड़ी दाढ़ी में उलझ गयीं। वे चुप खड़े रहे। उनके उस मौन को देखकर अब्दुल को भय होने लगा। वह हल और जमीन का मोटा काम करने वाला किसान अल्लाह के सूक्ष्म तत्वों को समझने वाले मौलवी साहब को इस तरह खामोश देखकर सिहर उठा।

उन्होंने मुस्कराकर कहा—अभी वह शायद तुमने सुना नहीं। हिन्दू अब मुसलमानों पर खार खाये बैठे हैं। यह वह बोदा हिन्दू नहीं है जो हमारा गुलाम बनकर रहता था, अब वह हमें गुलाम बनाकर रखना चाहता है।

अब्दुल काँप उठा। मौलवी साहब अपनी भारी आवाज में कहते रहे—सूबेदार तलवार लगाकर घूमता है, वह कहता है इन्हें सूई की नोक बराबर जमीन पर भी नहीं रहने दिया जायगा। कोई रोकने वाला है उसे? कोई नहीं। क्योंकि सुन्दरभान सबसे बड़ा अफसर है। उसके सामने कौन बोल सकता है?

उन्होंने हाथ फैलाकर समझाते हुए कहा—आज हल्के में सब मुसलमान हैं। अपना दारोगा है, अपना तहसीलदार, मगर सुन्दरभान अकेला हिन्दू डिप्टी है। मुसलमानों को दबाकर रखना चाहता है। तकवी है—अपनी बातें सुनता है, तरफ़दारी करता है, ठीक है, मगर डरता है।

जहाँ हिन्दू-मुसलमान का सवाल आया फौरन अपने आपको ईमानदार साबित करने के लिए हिन्दू की तरफ हो जायगा। अगर ऐसे लोग न होते तो क्या मुसलमान इतना दबकर रहता ?

अब्दुल संकट की सी हालत में पड़ गया। अब वह क्या करे ? कुछ भी हो आखिर जब वह दीन भाई है तो क्या कुछ भी ख्याल नहीं करेगा ! तकवी ही ठीक रहेगा।

अब्दुल दूसरे दिन जब वकील साहब के यहाँ पहुँचा वकील साहब अकेले बैठे थे। उनकी स्त्री पर्दे के पीछे खड़ी उनसे कुछ बातें कर रही थी। अब्दुल को देख कर वह भीतर चली गयी।

'आओ, आओ, अब्दुल' वकील साहब ने आराम कुर्सी पर लेटते से बैठते हुए कहा। अब्दुल जाकर बगल में जमीन पर बैठ गया। काफी तकलीफ के साथ उसने अपनी बात को छिपाकर उनसे कह दिया।

वकील साहब ने अधमुंदी आँखों से देखा। तकवी के यहाँ मामला पहुँचाना उनके बस की बात है लेकिन उसमें वही खतरा है। मुसलमान कैसा भी दोस्त हो, आखिर मुसलमान है। वह जब देखेगा कि जमीन का मामला है, फौरन मुसलमान की तरफ हो जायगा, दोस्ती धरी रह जायेगी। केस तो शायद वे जिता दें, पर हिन्दुओं का इसमें नुकसान होगा। मुसलमान को जमीन दिलाने का मतलब है इनके यहाँ पट्टा कर देना। उन्होंने अब्दुल की बात पर हर पहलू से विचार किया।

वे समझ गये। इससे किसी ने कहा है कि तकवी मेरा दोस्त है। वहाँ काम जल्दी होगा। और मुसलमान मुसलमान की ही तरफ झुकता है। इस विचार से उन्हें कोफ्त होने लगी। उन्होंने सोचा वे खुद ही केस कमजोर रखेंगे कि तकवी उल्टा फैसला देगा। उन पर क्या चोट आयेगी। वह तो मुसलमान हैं।

उन्होंने कहा—अब तो खर्चा बढ़ेगा अब्दुल। समझे ! मैं जितना

गहरा जाता हूँ उतना ही मामला पेचीदा होता जाता है। तकवी से कुछ नहीं कहूँगा। सुन्दरभान से कह देता। केस मैं तकवी की कोर्ट में करवा दूँगा।

वे यह झूठ बोलते तनिक भी न हिचके। सुन्दरभान उन्हें दूर-रखते थे।

परिणामस्वरूप कुछ रुपये अंटी में से फिर झड़ गये। हृदय फिर हलका हुआ। अब्दुल जब लौटा तो फिर उसके पाँव जमीन पर पड़ने से इनकार कर रहे थे, जैसे वह उड़ रहा था। अब क्या है ? अगर तकवी भी उसकी मदद नहीं कर सकता, तो फिर खुदा भी नहीं कर सकता। मौलवी साहब कुछ भी हों, उन्हें मुकदमा करने का हक थोड़े ही है। रास्ते में देखा सब बच्चे इधर-उधर खेल में भाग गये थे। एक घुटनों पर चलने वाला रह गया था। उसने रामदास के बच्चे को गोद में उठा लिया। धूल में सना हुआ बच्चा रो रहा था। उसने उसे पुचकार कर चुप किया और उससे बातें करने लगा। उसका मन प्रसन्न हो रहा था। कैसा मजे का है ! बड़ी-बड़ी आँखों से घूर रहा है।

तभी रामदास ने पुकार कर कहा—इसे तो रहने दो। दोस्ती करने को मैं काफी हूँ ! वह सामने से आ रहा था। अब्दुल ने बच्चे को उतार दिया। बात लग गयी थी।

अब घरों के बीच की भीत और ठोस हो गयी, अभेद्य हो गयी। रामदास ने बच्चे की हिफाज़त के लिए कुछ टोटका किया था। अब्दुल ने सुना तो उसका हृदय कसक उठा। मुझे इतना कमीना समझता है ! और प्रतिशोध के शोले भीतर ही भीतर भड़क उठे। बीबी से उसने दृढ़ता से कहा—आज से रामदास हमारा बैरी है। समझती हो ? स्त्री ने देखा। वह कुछ नहीं समझ सकी।

कई दिन बीत गये।

अब्दुल हार चुका था। तकवी ने उसके खिलाफ फैसला सुनाया था। उसके सब-डिवीजन में कुछ हिन्दू-मुस्लिम तनातनी थी। सरकार ने उस पर कड़ी डाँट लगायी थी। उसकी नौकरी का चक्कर था। वकील साहब दोस्त थे। उनके मुवक्किल होने में ही हानि थी और फिर मुसलमान होना तो गजब था। सब सुन कर मौलवी साहब ने हँसकर कहा—मैंने पहले कहा था कि वह हिन्दुओं से दबता है। वकील नरोत्तम बड़ा घाघ आदमी है। जब तुम कोरट बदलवाने गये, जरा न हिचका। वह जानता था कि तकवी पोच आदमी है। उससे हिन्दू का कभी नुकसान नहीं हो सकता।

'लेकिन डिप्टी तो अपना ही था।' अब्दुल ने प्रतिवाद किया। 'मुसलमान तो बेकार है, हिन्दू तो अलग है ही। फिर भी करता भी क्या? अपना तो कोई नहीं निकला!'

मौलवी साहब सुनकर परास्त हुए। किन्तु हार कैसे जाते। कहा—तू तो सीधा आदमी है अब्दुल! इस मामले में बड़े-बड़े चक्कर खा जाते हैं। अंग्रेजों के ये कानून तो ऐसे हैं कि अच्छा वकील हो एक के चार मतलब निकाल ले। तू मेरी राय में एक काम कर। किसी मुसलमान वकील के पास जा। मुकदमे की जीत-हार की कुञ्जी डिप्टी नहीं, वकील है, वकील। समझा?

अब्दुल फिर विचारमग्न हो गया। मौलवी साहब का कहना ठीक है। पेशकार ने भी उससे अकेले में कहा था कि केस ही जब इतना कमज़ोर है तब तकवी क्या खाक कर लेता? और पेशकार से सुनी यह चार रुपये कीमत की बात उसके कानों में गूँज उठी।

जब वह घर पहुँचा उसकी स्त्री चूल्हे पर खाना पका रही थी। वह बैठा-बैठा सोचता रहा। स्त्री घर की मालकिन थी। उसके क्षेत्र में अब्दुल को बोलने का कोई अधिकार नहीं था, इसीलिए वह उसके मामलों में

अधिक दिलचस्पी नहीं लेती। अब्दुल की राय में औरत का दिमाग छोटा बनाया गया था। वह खा-पीकर लेट गया और अपनी चिन्ता में मग्न हो गया।

दूसरे दिन वह फिर वकील साहब के यहाँ पहुँचा। उस समय उसके हृदय में एक विक्षोभ था। उसने तीखी दृष्टि से देखकर आंखें फिरा लीं जैसे उनसे उसे घृणा हो गयी थी, जैसे वह किसी अद्‌भुत पशु के सामने खड़ा था जिसमें मनुष्यता के कोई भी लक्षण उसे दिखाई नहीं देते थे।

वकील साहब मुकदमा हारे हुए की प्रवृत्ति को खूब जानते थे। अब्दुल को उन्होंने गमगीन देखा तो मुस्कराये। कहा—क्यों? मैंने कहा नहीं था? सुन्दरभान के यहाँ मामला ठीक रहता। लेकिन तुम नहीं माने। मैं तभी समझ गया था कि किसी ने तुम्हें बहकाया जरूर है,—वर्ना तुम मेरे पुराने मुवक्किल ठहरे। आजतक कभी मेरी बहस से तुम हारे हो? कभी नहीं। फिर अब की क्या हुआ?

अब्दुल सिर झुकाये बैठा रहा।

वकील साहब ने फिर कहा—भाई, यह मामला तो उलझ गया है। अब तो तुम कब्जा ले लो। मैं दूसरा केस लड़ूँगा। समझ गये? कहो कि जमीन मेरी है। कई साल से मैं जोत रहा हूँ। अब उस पर किसी का हक कैसे चल सकता है? मुकदमा किया था, उस पर अपील चल सकती है। पहले जाकर दारोगा से मिलो। कुछ रुपया जरूर खर्च करना पड़ेगा। कब्जा सच्चा, झगड़ा झूठा!

वह उठा। सीधे दारोगाजी के पास गया। थाने में उस वक्त भीड़ थी। कई आदमी पकड़े गये थे। कोई चोरी का मामला था। वह बैठकर इन्तजार करने लगा। वह मन ही मन प्रसन्न हुआ। दूसरों को फँसा देखकर उसे खुशी हुई, क्योंकि उससे उसका नुकसान नहीं था। कुछ

देर बाद उसने देखा कि दारोगाजी अन्दर चले गये और वे आदमी भी एक-एक करके उनके पास बुलवा लिये गये।

बाहर बैठा-बैठा वह ऊँघ गया। गाँव के थानेदार बादशाह आदमी थे। उनके सामने सिर उठाना कोई साधारण बात नहीं थी। अब शाम हो गयी थी। कुछ देर बाद उसने देखा कि गाँव के लोग राम-राम करके चले गये। सब छूट गये थे। उसे दारोगा के खुले दिल पर विश्वास हुआ। एकान्त में अपनी कहानी सुनायी। दीन का महत्त्व समझाया पर काम मुफ्त नहीं हुआ। और वह भी सिर्फ कोशिश करेंगे।

खाली होकर जब वह घर लौटा तो खटोले पर बैठकर पाँव फैला दिये। आज वह कुछ अधिक थका हुआ था। उसने एक लम्बी साँस छोड़ी और सिर से पगड़ी उतार कर धर दी। फिर अपनी कैंची फिरी खोपड़ी पर हाथ फेरा। और फिर उठ कर खाट पर लेट गया, जिस पर से उसके पाँव बाहर निकल रहे थे।

बीबी सामने आ गयी। उसने मुस्कराकर कहा—आज बड़ी देर कर दी। कहाँ गये थे ?

उसे कुछ-कुछ मालूम था कि उसके पति का रामदास से मुकदमा चल रहा था, जिसमें उसका पति हार गया है। अब वह इसी की झेंप में बैठा है। अपना अधिकार दिखाने को जो उसने प्रश्न पूछा वह ठीक निशान पर बैठा। अब्दुल का सिर झुक गया।

उसकी पहले तो हिम्मत ही न पड़ी, किन्तु उसके बार-बार पूछने पर उसे लाचार होकर सब सुनाना पड़ा। वह चुपचाप उसकी ओर देखती रही। उसके चुप होते ही स्त्री का चातुर्य्य अब खुलपड़ा—मैं कहती थी न कि पहले मेरी बात सुन लो। अब हो गया!

उसका व्यंग सुनकर अब्दुल ने कहा—तो मैं करता भी क्या ?

स्त्री ने उसे घूर कर देखा। अब्दुल सहम उठा। तब स्त्री ने अपने दोनों हाथ चला कर कहा—'वह सब बड़े लोगों के खेल हैं। वकील से

कहो, डिप्टी के यहाँ जा, चपरासी से कहो। वह डिप्टी का भी बाप है। सीधे मुँह बोल नहीं कढ़ता। एक हैं थानेदार, वाह···वाह···' उसने मुँह बनाया जिसको देखकर अब्दुल हँस दिया। उस स्त्री के मुँह पर दो झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। वह बकबक करती रही। ये लोग सब ऐसे ही हैं। अपना तो यही रामदास है। उसकी बहू से मैं कह देती। घर का मामला था, घर में ही सुधर जाता। पर तुम क्यों मानने लगे? दो पैसे मिले बस चले कचहरी। कुछ और भी ख्याल रहता है? चले आये बड़े अकलमन्द! वकील को दे आया हूँ, पेशकार को दे आया हूँ और थानेदार को दे आया हूँ। जमाना कहेगा, इसके बड़े-बड़े साले हैं...वह हंस दी।

अब्दुल अधीर-सा देखता रहा। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। औरत की अक्ल ही कितनी! यह क्या बक रही है? वे सब और हैं। स्त्री ने फिर कहा—'उन्हें नहीं है हिन्दू-मुसलमान की जात। वे तो बेईमान हैं, बेईमान!' अब्दुल चौंक उठा। लेकिन वह खुद तो मुसलमान है। उसने कहा—वाह! यहाँ शहर-गाँव का चक्कर लगाते टाँगें टूट गयीं और तू है कि अपनी रट लगाये जाती है। अरे आखिर इतने लोग हैं। वे कुछ भी नहीं समझते? एक तू ही दुनियाँ में अकलमन्द बाकी है?

स्त्री इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। उसने कहा—जिसने घर-वाली की नहीं मानी उसका काम कभी ठीक नहीं चलता।

अब्दुल ने हाथ उठाकर कहा—रहने दे। कल मैं किसी बिरादरी के वकील से राय लूँगा, फिर देखना क्या होता है...

स्त्री ने चेत कर सिर झुका लिया।

दूसरे दिन वह हामिद खाँ वकील के पास गया। हामिद खाँ आगा पेशकारों की 'जय हिन्द' सुनकर मुवक्किलों से रिश्वत दिलवाने वाले आदमियों में थे। पहले मुस्लिम लीगी थे, अब राज-भक्तों में थे, काँग्रेस वालों के पीछे-पीछे लगे डोलते थे। स्वयं उन्हें अपने ऊपर कभी-कभी आश्चर्य होने लगता था। इस समय वे पान चबाते हुए आराम कुर्सी पर

बगल में रखा हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। कभी-कभी बढ़े हुए पेट पर हाथ फेर लेते।

अब्दुल ने इधर-उधर की बातों के बाद अपनी बात कहना शुरू किया। हामिद खाँ ने चौंककर पूछा—क्या कहा? सुन्दरभान की कोर्ट से मामला तुमने हटवा कर तकवी की कोर्ट में करवा दिया?

अब्दुल ने कहा—जी हाँ, बदलवा लिया। नरोत्तम वकील ने यही कहा था।

उन्होंने काटकर कहा—बड़े अजीब आदमी हो, तुमने निहायत गलती की। तुम्हें उसके सिवा कोई वकील नहीं मिला। मुसलमानों में से कोई नहीं ठीक जंचा तुम्हें? वह बड़ा तास्सुबी हिन्दू है। उसी की गड़बड़ी से सब कुछ बिगड़ गया। और तकवी से उसकी दाँत काटी रोटी है। तकवी उसके जरिये खूब खाता है। डिप्टी सुन्दरभान ठीक थे। मुझसे क्यों न कहा? मैं उनसे जो चाहे करा सकता हूँ...

अब्दुल ने शंका की—वह तो हिन्दू है...

'हो' हामिद खाँ ने कहा—'मेरा दोस्त है। इन मामलों में वह फर्क नहीं करता।'

और चार रुपये देकर जब वह लौटा उसका मन ग्लानि से फट रहा था। बीबी की बात सच थी। वे लोग वास्तव में और थे। उसका अपना तो वही रामदास था,-और कोई नहीं।

खेत पर रामदास को देखकर, उसने पुकार कर कहा—राम-राम भैया!

रामदास ने उसे गर्व से देखा और व्यंग से हँसा। खाली जेब वाले अब्दुल ने उस अपमान को पी लिया। आज उसे लग रहा था कि जो सत्य उसने पहचान लिया है रामदास अभी उससे बहुत दूर है। लेकिन जब वह घर पहुँचा उसने पत्नी से कहा—कल मैं रामदास पर अपील दायर करूँगा...

ति रि या

—१—

गाँव के लोगों ने देखा --आगे-आगे पिल्ली चला आता था। उसके काले सीने का एक हिस्सा उसकी फितूही के बन्द में से निकल रहा था और लम्बी-लम्बी मूँछें होंठों पर फैल रही थीं। लम्बा-चौड़ा आदमी था। घुटनों से ऊँची धोती, पाँव के जूते कन्धे पर रखे लट्ठ में टंगे हुए थे। आज उसकी चाल में एक उमंग थी। आज तक पिल्ली को किसी ने नहीं देखा था। यदि किसी ने उस पर निगाह भी डाली तो ऐसी कोई बात ही नहीं मिली जिस पर आँख ठहर जाती। उसमें क्या था? कुछ नहीं। पाँच-एक बीघे जमीन थी और वह उसी पर सब कुछ भूला हुआ हर एक से अपनी शादी का जिक्र छेड़ देता। पैंतीस-छत्तीस साल के उस आदमी से कोई भी अपनी लड़की ब्याहने को तैयार नहीं होता था। इतने बड़े आदमी का भला कभी ब्याह होता है? उसकी ब्याह की बात गाँव में एक मजाक की तरह थी। एक बार जब वह पटवारी से बात कर रहा था तो पटवारी ने कह दिया कि बाकी नम्बरदारों ने तेरी जमीन दबा ली है। असल में तेरे पास पैंतीस बीघे भूमि है। पिल्ली ने सुना तो जैसे-जैसे उसकी आँखों में फैलती, बढ़ती हुई धरती दिखाई दी; उसके साथ ही साथ एक उसी के शब्दों में, 'बैयर' भी आ खड़ी हुई; गोया धरती और स्त्री का ऐसा जोड़ा था, ऐसा संग था, कि इनमें से एक न होने पर दोनों का ही होना कठिन है। बहरहाल पिल्ली ने नम्बरदारों से कहा-सुनी की और जब उसे मालूम हुआ कि पटवारी ने मसखरी की थी, तब वह विरक्त हो गया। गाँव से मन उचट गया। नम्बरदारनियों ने ताना कसा—"बैयर के लिये दूसरों के खेत छीनोगे?"

बात पिल्ली के चुभ गई। उसे लगा—जीना बेकार है और एक दिन जो वह कहीं चला गया, तो आज दिखाई दिया। और आज अब सबने उस पर आंखें डालीं तो दृष्टि अपने आप ठहर गई; क्योंकि वह आगे-आगे था और उसके पीछे भी कोई थी। लोगों ने आश्चर्य से देखा; वह कोई औरत थी और फिर सबने आपस में कहा कि—'भाई अब तो अमोली का बेटा पिल्ली सचमुच एक बैयर ले आया।'

वह स्त्री भारी और मोटा लहँगा पहने, पाँव में भारी कड़े, और चमरौंधा जूता डाटे थी। हाथों में चूड़ियाँ थीं, घूँघट काढ़े थी और युवती थी। यह लोगों की ईर्ष्या का कारण था। वे चाहते थे कि कोई अधेड़ सी होती तो पिल्ली की चाची कह कर चिढ़ाते, पर वह आशा व्यर्थ हो गई। आने वाली स्त्री किसी तरह भी जमीन पर हल्का पाँव नहीं रखती थी, जैसे उसने धरती को पराया नहीं समझा और उस पर उसका अपना ही अधिकार था।

गाँव वालों ने देखा और ऊपर उठा कर जूड़ा बाँधने से उल्टी हाँड़ी सी खोपड़ी वाली मैनी मुस्कराई; चर्चा चली, झोपड़ियों और घरों में चबर-चबर हुई और डूब गई। परन्तु यह किसी की समझ में नहीं आया कि पिल्ली लुगाई ले कहाँ से आया? 'चादलबूका' के जगपत बामन, जो 'त्रिधौलिया' के मूल बामन थे, जिनका कुनबा भिक्षुकी करता था, अब रियासत की पुलिस में सिपाही हो गए थे, इस घटना से प्रभावित हुए और उनकी इच्छा समस्त व्यापार को अपने फायदे की ओर मोड़ लेने की हुई। परन्तु पिल्ली की औरत ने उन्हें पहले घूँघट और उंगलियों के बीच से देखा, फिर एक बार उसके हँसते हुए होंठ जिनमें से सोने की कील ठुके दाँत दिखाई दिये और फिर वह घूँघट उनके लिए ऐसे गिर गया जैसे रात का पर्दा गिर जाने पर सब ओर अन्धेरा छा जाता है और न खेत दिखाई देता है, न बिजका, बस चरेरू को उड़ाने के लिये उठी हरया की आवाज

गूँजती हुई सुनाई देती है, जो काँपती फसल पर सरसराती पेड़ों और कुएँ पर घुमड़ते काले-काले आसमान में खो जाती है।

—२—

पिल्ली की स्त्री का नाम था मन्दो। उसमें घर-गिरस्ती की औरत के कोई लक्षण नहीं थे। घूँघट के अतिरिक्त उसमें कोई मर्यादा नहीं थी। जोर से बोलती थी और खिलखिला कर हँसती थी। औरतें उसकी आँखों को जब देखतीं तो जरूरत से ज्यादा काजल लगाने की आदत पर मन ही मन हँसतीं। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह पान खाती थी, और थूकती थी।

जगपत सिपाही ने सुना तो व्यंग किया—'बड़े घर की बैयर लगती है। हमारे गाँव में ऐसा कभी नहीं हुआ। क्यों पण्डित?'

जिनसे पूछा गया था वे गर्दन हिला कर हर बात में आँखें चढ़ा कर राय देने वाले रामजीलाल थे, जो गाँव के बच्चों को पढ़ाते थे। बच्चों को पढ़ाते रहने के कारण कुछ शाही तबियत हो गई थी। इस समय उन्होंने गर्दन हिला कर कहा—'सो तो ठीक है। मगर यह पिल्ली इसे ले कहाँ से आया? सुसरी जगह-जगह थूकती है।'

ग्यारसी जो खुद पान इसलिए खाते थे कि सुपारी के शौकीन थे और सुपारी भी इतनी बड़ी कि कम से कम ५ मील तक कुतरते चले जायं और जिससे गैल मालूम नहीं पड़े, इस समय बोले—'जगह-जगह कैसे थूक लेगी?' उसके स्वर में एक अक्खड़पन था और उच्चारण करते समय असल में उन्होंने कहा था—"जग्गै-जग्गै कैसे थूक्क लेग्गी। गाम भर बिगाड़ देगी, सो क्या अब कोई मरजाद नहीं रही?"

और मन्दो निर्द्वन्द्व पान खाती थी, थूकती थी, निडर थी, हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने की शौकीन थी।

शाम को जब पिल्ली आया, तो देखा मन्दो बैठी है। मुँह फूला

हुआ है और भौं चढ़ी हैं, चूल्हा नहीं सुलगा है। पिल्ली का हृदय भीतर ही भीतर डरा, 'क्या हुआ ?' और वह कठोर पिल्ली, पीढ़े पर बैठी मन्दो के पास जमीन पर बैठ कर घिघियाते स्वर में बोला—'क्यों क्या बात हुई ? तेरा जी तो ठीक है ?'

मन्दो की टेढ़ी भौं ने तरेर खाई और मुँह फेर कर उसने उपेक्षा दिखाई। पिल्ली में इतना साहस नहीं था कि अब अकड़ा रहता। उसने अत्यंत नम्र स्वर में कहा—'बोलेगी नहीं ? किसी ने कुछ कहा है ? कुछ कहेगी भी कि नहीं ?'

मन्दो फूट पड़ी। उसका एक-एक शब्द पिल्ली के जेठ की दुपहरी से तपी-फटी धरती जैसे दिमाग पर गर्म गर्म राख की तरह बिछता गया। मन्दो की शिकायतें थीं कि गाँव वाले उसे छेड़ते हैं। तब ज्यादा सुखी थी, जब वह पासवान थी। यहाँ आकर तो उसका दम घुटने लगा है। पिल्ली ने जो वादे किये थे, उनमें से एक भी पूरा नहीं हुआ; बल्कि उसे तो रोटी भी ठोंकनी पड़ती है। वह क्या रोटी सेकने के लिए है ? चूल्हे के धुएँ में आँखें सुजाने के लिए है ? कंडे थापना, कुएँ से पानी लाना, न्यार और ढोरों का काम करना, उसके बस की बात नहीं है। वह पान क्या खाती है, लोग उससे जलते हैं, उस पर हँसते हैं। पिल्ली अगर बुद्धू न होता तो इनकी मजाल थी कि कोई कुछ भी कह जाता ! वह दबंग नहीं है, कोई दबदबा नहीं है उसका......

पिल्ली उसकी शिकायतों को खुशामद से मनाने का हौसला रखता था, पर अपने ऊपर जब हमला हुआ तो उसमें इतनी ताब नहीं थी कि सुन लेता।

कोने में धरा लट्ठ लेकर झट बाहर निकल आया और चिल्लाने लगा "खबरदार जो किसी ने कुछ भी कहा ! जो इधर आँख उठेगी तो आँख फोड़ दूँगा !"

गाँव की हवा भी चुनौती का जवाब देना जानती थी। तुरंत जगपत बामन दिखाई दिये। गरज कर कहा "क्या बात है पिल्ली ?"

पिल्ली जरा दबका। जगपत एक तो लठैत था तथा दूसरे सिपाही था, सरकारी आदमी था। राज का भय तो सबसे बड़ा भय है। पिल्ली ने कहा—"आओ पंडितजी ! तुम ही न्याय करो। भला यह भी कोई बात है कि अकेली बैयर को सब छेड़ते हैं ! आज मैं किसी की भी नहीं सुनूँगा।"

जगपत ने पिल्ली का हाथ थाम कर कहा—"अरे, तू इतना क्यों रिसाता है ? तू भी इसी गाँव का और वे भी यहीं के, आखिर बात क्या हुई है ?"

"मैं बताऊँ, क्या हुई ?" ओसारे से निकलते हुए मैनालक्खा चौकीदार ने कहा। सब का ध्यान उनकी ओर केन्द्रित हो गया, क्योंकि वे गाँव के चौकीदार थे और एक इज़्ज़तदार आदमी थे। उन्होंने कहा—हुई यह कि पिल्ली की बैयर में घर-गिरस्ती के लच्छन नहीं। पान खाती है। गाँव में ऐसा कभी हुआ है ? और फिर पिल्ली की रोटी तक का सहारा नहीं !"

पिल्ली ने कहा—"तो वह मेरी उसकी बात है। गाँव को इसमें बोलने का क्या हक़ है ?"

कुछ लोग हँसे। पिल्ली ने कहा—"हँसोगे तो सिर तोड़ दूँगा।"

और फिर गालियाँ, जो गाँव की इज्जत रूपी हवा में बबूल के पेड़ की तरह कँटीली होकर उठ खड़ी हुईं, फैल गईं और काँटों की नोक उठाकर सारे गाँव के हृदय को चुनौती देने लगीं। सारा गाँव अब पिल्ली के विरुद्ध हो गया।

लक्खा चौकीदार ने कहा—"ओ, मुँह बंद कर ले......"

बढ़कर वे उसके घर के द्वार पर आ गये और कहते गये, "जो बैयर रोटी नहीं सेक सकती, वह काहे के लिये रहती है ? तू कोई राजा तो है

नहीं, जो सैंत को घर में डाल रखेगा। जाने कहाँ से पकड़ लाया है.........!"

पर बात पूरी नहीं हुई। भीतर बैठी मन्दो सब सुन रही थी। उसने अपना भारी चमरौंधा जूता खींचकर मारा, हाथ सधा हुआ था, लक्खा चौकीदार के सीने पर वह भारी जूता, सारे गाँव के सामने धक से बैठा और चौकीदार हक्कीबक्की भूल गया।

सब चकित रह गये। ऐसी निडर औरत है! पिल्ली ने परिस्थिति समझकर चौकीदार के पाँव पकड़ लिये। परन्तु चौकीदार उसे ठोकर मारकर चला गया। भीड़ हट गई। पिल्ली जब भीतर घुसा तो मन्दो शेरनी की तरह बैठी थी। उसके हाथ में अब दूसरा जूता हिल रहा था, जैसे कोई लपलपाती जीभ हो; जिसका एक स्पर्श ही सारी इज्ज़त चाट जाने के लिये काफी था।

—३—

चौकीदार लक्खा, मैना को लगा, वह मर गया है। अब उसके लिए जमीन फट जाये तो अच्छा। अब अगर वह चुप रह गया तो कहीं मुँह दिखाने को भी जगह नहीं रहेगी। सारा गाँव उसका लोहा मानता था। सब लोग देखते रहे। किसी ने कुछ नहीं कहा। लक्खा की इच्छा हो रही थी कि जाकर उस औरत की कलाई तोड़ दे। पर जो औरत एक जूता फेंक कर मार सकती है, वह जरूर दूसरे जूते को सँभाले बैठी होगी और जब दूर से उसका निशाना इतना अचूक बैठा है, तो पास से जाने कितना सधा हुआ होगा। और फिर औरत के मुँह लगना, अपनी आबरू अपने आप गँवा देना है।

चौकीदार ने चलते-चलते रुककर कहा—पटेल मैं तो चला।

गुलाब लम्बरदार लगभग ६० बरस के बूढ़े आदमी थे; गंजे थे, यहाँ

तक कि उनकी भौं भी उड़ गई थीं। गाँव के बौहरे थे। गाँववालों के पंच थे। आपस में झगड़ा करा देना और कभी नक्शे में नजर न आना उनके बाँये हाथ का खेल था। फुर्तीले इस कदर थे कि अगर किसी से बात करते हों तो सुनने वाले को बार बार घूमना पड़े; क्योंकि गुलाब कभी यहाँ बैठे हैं, तो दूसरा वाक्य कहने से पहले लपक कर दूसरी जगह बैठे हैं! बात करने में अंग अंग फड़कता है। आँखें पानी में पड़ी मछली की तरह चुलबुलाती हैं—लगता है इस आदमी में बिजली भरी है। तीन-चार स्वरों से बात करते हैं। इस समय तक सब सुन चुके थे, चौंक कर बोले—क्या हुआ?

और जहाँ बैठे थे, वहाँ से करीब गज भर आगे सरक आये।

'अद्वान की डूब गई', चौकीदार ने कहा—अर्थात् पूरी तरह से नाक कट गई। अब क्या है? मैं तो गाँव छोड़कर चला।

बौहरे ने उसकी कुहनी पकड़ कर कहा—अरे बैठ तो। चौकीदार रुआसे से बैठ गये।

गुलाब ने पूछा—क्या हुआ? मुझ से कह तो?

लक्खा चौकीदार की गाथा सुनकर गुलाब ने दोनों हाथ उठाकर कलेजे के भीतरवाली आवाज में कहा—तो पै कुछू रुपिया हैं?

लक्खा, सदा की सतर्कता भूलकर कह गये, 'हैं'।

'तो ला'। गुलाब ने कहा—तीस रुपिया दे।

लक्खा ने अंटी से निकाल कर रख दिये।

'अब देख', बौहरे ने फुर्ती से उठकर कहा—छिनाल को क्या रंग दिखाता हूँ!

लक्खा चौकीदार नहीं समझा। गुलाब उसे ले चला। सीधा थाने पर गया और थानेदार को एकांत में सारी कथा सुना कर कहा—अब कहो मालिक का करैं......!

बीस रुपये उनके हाथ में सरका दिये। थानेदार साहब दुबले-पतले आदमी थे। थे गाँव के, पर शहर में पढ़े थे। अजीब सी खिचड़ी थी; ऊपर बंद कोट, पतलून और टोप लगाते थे। फूल सूँघते थे और रेशमी रूमाल रखते थे। बात करने की फीस लेकर उन्होंने माथे में बल डालकर कहा—जवाब है ?

'है तो मालिक !' गुलाब ने बाँये सरक कर कहा।

'तो साली को गिरफ्तार करवा दो।'

'अन्नदाता सो कैसे ?' गुलाब ने आँखें नचाकर पूछा।

थानेदार साहब को यह बताना मंजूर नहीं हुआ। कुछ देर सोचते रहे; फिर सिर उठाकर कहा—बन गया !

'काम बन गया ?' गुलाब ने पूछा।

'नहीं मुकद्मा बन गया।'

गुलाब फड़क उठा। उसने हाथ जोड़कर कहा—तो फिर हुकुम ? लक्खा चौकीदार का काम अधूरा नहीं रह जाये अन्नदाता !

दूसरे दिन पिल्ली इस जुर्म में गिरफ्तार हो गया कि वह औरत भगा लाया है। सारे गाँव की शहादत थी। वह औरत भी इसलिये गिरफ्तार कर ली गई कि उसकी कोई देख-रेख करने वाला न था। अतः अकेलेपन से ऊबे हुए थानेदार साहब ने उसकी देख-रेख का तब तक जिम्मा ले लिया, जब तक मुकद्मा तय न हो जाये। संकोच तथा कृतज्ञता के कारण लक्खा चौकीदार बाकी दस रुपयों का गुलाब लम्बरदार से हिसाब नहीं माँग सके; पर गुलाब ने स्वयं बताया कि वे सिपाहियों को दे दिये गये। इस पर उन्होंने विश्वास नहीं किया।

—४—

पाँच दिन से पिल्ली बन्द था। निजामत के लोग परेशान थे। खुद बात-बात में रिश्वत लेने वाले नाजिम साहब भी कह कह कर हार चुके थे; पर

पिल्ली कोठरी में बन्द चिल्ला रहा था, "अरे मेरी बैयर छीन ली! हत्यारों मुझे छोड़ दो......!!"

जिसे देखता उसी से रिरिया कर कहता—मोहै छुड़ाय लै......! लोग लाचार से चले जाते थे और हंसते थे। स्त्री के प्रति यह मुखर आकर्षण सब को हँसी की बात लगती। कल मुकद्दमे का फैसला होने वाला था। उसकी आतुरता बढ़ती जा रही थी। उसका मन चाहता था कि वह सींकचे तोड़कर निकल जाये और उस थानेदार से अपनी बैयर को छीन ले जिसने उसे उससे जबर्दस्ती हथिया लिया है। पिल्ली की आत्मा छटपटा रही थी।

ठीक उसी समय मन्दो हँसी। थानेदार साहब सकपका गये। उन्होंने कहा—क्या बात है?

'बात तो कुछ नहीं', मन्दो ने मुस्करा कर कहा—'पर तुमसे तो वह गधा ही अच्छा था।'

'कौन, पिल्ली?' थानेदार ने पूछा, जैसे उसका घोर अपमान हुआ था। स्त्री केवल हँसी।

'हरामजादी', थानेदार ने चेतकर कहा—तू भी जेल जायगी कल!

'चली जाऊँगी', उसने निडर होकर कहा—पर अदालत में कहके जाऊँगी।

'क्या कहके जायगी?' थानेदार चौंके।

'जो मन होगा सो कहूँगी' उसने उसी स्वर में उत्तर दिया।

'फिर भी तो?' थानेदार ने फिर पूछा।

'यही कि तुमने मेरी बेईज्जती की।'

'तेरी भी कोई इज्जत है? तूने खुद कहा है कि तू पासवान थी। पिल्ली के साथ भाग आई थी।'

स्त्री क्रुद्ध हुई। उसने फूत्कार किया, 'मैं कहूँगी कि तुम सहर के दुबले पतले आदमी हो........'

'चुप, चुप।' थानेदार ने घबरा कर कहा—दिवालों के भी कान होते हैं। क्या बक रही है ?

स्त्री ने मुस्कराकर कहा—मैं तो जेल जाऊँगी।

'तू क्यों जाने लगी ?' थानेदार ने टाला, 'जाएगा पिल्ली। वह तुझे फुसला लाया था। उसमें तेरा क्या कुसूर। था तू तो नासमझ थी। पर एक बात है।'

'क्या ?'

'वह जेल चला जाएगा तो तू घर लौट जायगी ?'

'घर में कौन है वहाँ ?'

'तो कहाँ रहेगी ?'

'यहीं।' स्त्री ठठा कर हँसी।

थानेदार हतप्रभ हुआ। उसने सिर हिलाकर कहा—यहाँ नहीं।

स्त्री फिर हँसी।

—५—

तहसीलदार की अदालत में मुकद्दमा पेश हुआ। पिल्ली ने वकील नहीं किया क्योंकि उसकी किसी ने गाँव में जमानत तक नहीं दी। सब ने एक स्वर से कहा कि यह स्त्री को भगा लाया था। उसे जैसे पूर्ण विश्वास था।

तहसीलदार ने पूछा—सुनता है ? लोग क्या कहते हैं ?

पिल्ली चुप ही बना रहा।

तहसीलदार ने मुस्करा कर कहा—तुझे कुछ कहना है ?

'मेरी बैयर छीनने को परपंच रचा गया है। ये सब एक जाल बिछा रहे हैं......' पिल्ली अन्त में गला रुँध जाने के कारण बोल नहीं सका।

तहसीलदार ने कहा—तेरा कोई गवाह है ?

'बैयर है' पिल्ली ने कहा—उसीसे पूछ लो।

उसके उस विश्वास से लक्खा चौकीदार और गुलाब लम्बरदार चौंके। पिल्ली ने कहा—हजूर ! चौकीदार की छाती पर मेरी बैयर ने पन्हा (जूता) उठाकर दे मारा था। इससे उनका मुझ से बैर हो गया है। थानेदार साहब को रिस्वत दी गई है.........

'क्या बकता है ?' जगपत बामन ने डाँटा—देखता नहीं, किससे बात कह रहा है ?

'देखो सा'ब,' पिल्ली ने तहसीलदार को देखकर कहा—बोलने नहीं देते। धौंस में लेते हैं। हाँ, तुम मेरी बैयर भी छीन लो और उल्टे मुझे ही आँख दिखाओ.........

'पागल मालूम देता है,' तहसीलदार ने कहा। फिर मुड़कर पूछा—तो उस औरत से पुछवायेगा ?'

'हाँ अन्नदाता।' पिल्ली ने कहा—फैसला तो यहीं हो जायगा।

दो सिपाही मन्दो को ले आये। वह घूँघट काढ़े हुये थी, पर उसका समस्त संकोच देखकर ही बनावटी लगता था। तहसीलदार की आँखें तराजू की तरह टँग गईं। पिल्ली ने टोक कर कहा—सरकार ! आँखों से आँक लो। कैसी सुथरी है।

अबके थानेदार साहब की बन आई। डाँटा—क्यों बे, पिटेगा ? अदालत से तमीज से बात नहीं करता ?

पिल्ली दबका, कहा—तो अन्नदाता पूछ लें।

तहसीलदार ने पूछा—तुम्हारा नाम मन्दो है ?

स्त्री ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

'तुम इसकी बीबी हो ? तुम्हारा इससे ब्याह हुआ था ?'

पिल्ली ने देखा—स्त्री ने इंकार करते हुए सिर हिलाया।

'इससे तुम्हारा धरेजना हुआ था ?'

स्त्री ने फिर सिर हिलाकर इंकार किया।

'तो फिर यह तुम्हें भगा लाया है ?'

स्त्री ने स्वीकार किया। पेशकार ने बयान दर्ज किया।

पिल्ली चिल्लाया—'अन्नदाता बैयर सुधरी है। बदमासों ने इसे कुछ खिला दिया है। वह मेरे पास रहेगी ?'

'क्यों' ? तहसीलदार ने पूछा—'इसी के पास रहेगी ?'

अदालत में सन्नाटा छा गया।

थानेदार ने कहा—बताती क्यों नहीं ?

'कहाँ रहती है ?' तहसीलदार ने पूछा।

'मेरे यहाँ है आजकल।' थानेदार ने स्वयं कहा।

'आपके यहाँ ?' पेशकार ने सिर हिलाया।

'जी हाँ, इसको कोई और रखने को तैयार ही न था। लाचारी थी। बड़ी परेशानी हुई, मगर क्या किया जाता ?'

'जी हाँ दुरुस्त है।' पेशकार ने सिर हिलाया।

थानेदार निश्चय नहीं कर सके कि यह व्यंग था या सादगी थी।

'जवाब दे'—तहसीलदार ने फिर कहा।

स्त्री ने सिर हिलाया। अस्वीकृत कर दिया।

तहसीलदार ने जोर से पूछा—पिल्ली के साथ रहेगी ?

महीन आवाज आई—नहीं।

सब ठठा कर हँसे। पिल्ली चिल्ला उठा--यह फरेब है, यह धोखा है, मेरी बात कोई नहीं सुनता.........!

पर तहसीलदार ने फैसला सुना दिया। पिल्ली को दो महीने की जेल हो गई। औरत भगाने का जुर्म था। स्त्री स्वतंत्र कर दी गई। जब सिपाही पिल्ली को खींचते चले, वह चिल्ला रहा था—मेरी बैयर.........मेरी बैयर.........

अदालत हँसती थी, फिर तहसील हँसी, गाँव हँसा और पिल्ली जेल चला गया; पर स्त्री ने कचहरी से बाहर निकल कर लक्खा चौकीदार से कहा--क्यों, क्या करवा लिया मेरा ?

लक्खा इस न्याय से प्रसन्न नहीं थे। वे समझ नहीं पाये थे। कहा—थानेदार से और कहूँगा अभी।

'कह लीजो' मन्दो हँसी--वह क्या कर लेगा ?

लक्खा ने कुछ बेहूदी बात कही। वह थानेदार की सामर्थ्य की परिचायक थी। परन्तु मन्दो ने और भी बेहूदी जबान में उत्तर दिया, जिसमें थानेदार की कमजोरी पर व्यंग्य था।

लक्खा चौकीदार हतप्रभ रह गया। मन्दो सामने से इठला कर चली गई।

—६—

दो महीने बीत चुके थे। गुलाब लम्बरदार अपना छोटा-सा कद लिये गर्दन उठाकर ऊँचे स्वर में लक्खा-चौकीदार से बातें कर रहे थे। हठात् वे चौंक उठे। पुकारा—अरे पिल्ली !

एक उदास व्यक्ति पास आ गया।

'कब छूटौ ?'

'कल्ल।'

'फिर क्या हुआ। खबर है तुझे ?'

'नहीं तो,' पिल्ली ने कहा।

'यही तो बात है।' गुलाब ने फड़क कर कहा—तू तो भोला है। देख, लक्खा चौकीदार के हरामजादी ने जूता मारा। तूने बजाय इनके, उसकी गवाही दी। और उसने तुझे क्या दिया ?

'पर वह तो मेरी बैयर है।'

'तेरी है ? ले ससुर। तेरी है तो डरोगासिंह गूजर के यहाँ जाकर देख ले।'

'क्या कहा ?' पिल्ली को झटका सा लगा।

'कहता हूँ तो मानता नहीं। तुझसे कोई दुसमनी थी हमारी ?'

बात काट कर लक्खा ने कहा—मैं तो तेरे भले के लिये बीच में पड़ा था। पर तू तो लुगपिटा निकला।

'ठोक दे हरामजादी पर मुकद्दमा ! तेरे नहीं रही, तो दूसरे के कैसे रह जायेगी ?'

पिल्ली सोचने लगा। दिन चढ़ रहा था।

उसने कहा—पहले देख तो आऊँ।

'देख के क्या करैगा ?' गुलाब ने टोका। किन्तु पिल्ली नहीं माना। उसका हृदय आतुर हो उठा। वह चल पड़ा। उसके हृदय में आशा बलवती होती जा रही थी।

हठात् उसके पाँव रुक गये। डरोगासिंह गूजर, अपनी बड़ी घोड़ी पर से उतरा। काला रंग था और गले में सोने की पँचलड़ी कंठी थी। कानों में मुरकी पहने था। और हट्टा-कट्टा, लंबा-चौड़ा आदमी था। उसकी लम्बी और घनी मूँछें उसके होठों के दोनों तरफ पड़ी हुई थीं जिसके कारण उसका चेहरा ऐसा लगता था, जैसे कोई चीन का रहने वाला हो। परन्तु उसका ठोस, चौड़ा सीना देखकर उसकी शक्ति का अंदाज हो सकता था।

पिल्ली ने देखा। शायद वह कहीं बाहर से आया था। उसने घोड़ी बाँध दी और उसका साज खोल दिया। भीतर से तभी एक स्त्री निकली। उसके होठों पर मुस्कराहट थी और वह लजीली सी लगती थी, जैसे घर की बहू हो। वह सोने की हँसली और चाँदी के कड़े पहने थी।

उसको देख पिल्ली को आश्चर्य हुआ—इतना परिवर्तन ! वह मन्दो थी।

पिल्ली लौट चला।

अ ना मि का

—१—

सुकुमार ने अत्यन्त धैर्य से अनेक दिनों में भी वह चित्र पूरा न किया। वकील साहब रोज वहाँ आ बैठते और अपने लिये सबसे पहले सिगरेट का पाकेट ढूँढ़कर बस फिर जम जाते जैसे इससे अधिक उन्हें और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं थी। फिर बातों का सिलसिला चल पड़ता। सुकुमार कलाकार आदमी था। अगर वह बात न करे तो वकील साहब कभी इसमें अपना अपमान नहीं समझते। उन्हें अपनी बात कहनी। वे एक सुर से पहले कांग्रेस की तारीफ़ करते, फिर विलायत की सरकार की प्रशंसा करते, फिर यह भी कहते कि वाह साहब रज़ाकारों से कोई हैदराबाद में लड़ा तो वह आपका कम्युनिस्ट ही। क्यों विनोद जी? लेकिन इस कहने का कितना मूल्य था? वे कभी बात करते समय एक दूसरे का फ़र्क नहीं करते थे। पर अगर किसी बात में उनका स्पष्ट मत था तो यही कि देखिये साहब! किस कदर ज्यादती है। अगर किसी आदमी ने मर पच कर, जी हाँ ऐड़ी चोटी का पसीना बहा कर, तीन हज़ार रुपया इकट्ठा किया हो, समझे आप, तो अब उसकी कीमत तीन सौ रुपये, अजी तीस रुपये समझिये।

सुकुमार अपनी कूची रोक कर कहता—क्यों वकील साहब? तीन ही हज़ार हैं आपके पास?

'अरे मेरे पास नहीं भाई, कहने के लिये कहा था। पर मैंने कुछ गलत कहा?'

विनोद खामोशी से देखा करता। वह सुकुमार का पुराना सहपाठी था। जब दोनों कालेज में आये थे तब दोनों ही एक दूसरे की ओर आकर्षित हुए। सुकुमार जब एक लड़की के प्रेम में पागल हो चला, तब विनोद शहर के मेहतरों की हड़ताल करवा रहा था। जब सुकुमार चाँदनी रात में यूकलिप्टस के पेड़ों की छाया में अपनी प्रिया की प्रतीक्षा में व्यर्थ खड़ा था, विनोद कोतवाली के अँधेरे कमरे की छोटी खिड़की से बाहर भीख माँगते सड़े गले आदमियों की भीड़ देख रहा था। जब वह छूटा और घर पहुँचा तब मालूम हुआ कि मेहतरों ने जबर्दस्त हड़ताल की और अधिकारियों को मजबूर होकर उसे रिहा करना पड़ा, तब सुकुमार कुर्सी पर अधलेटा सा आकाश की ओर देख रहा था क्योंकि उसकी प्रिया एक रईस से शादी कर रही थी। क्योंकि सुकुमार उसे सुख नहीं दे सकता था।

उसी स्त्री को सुकुमार अब रहस्यमयी कहता था। वह जिसके भेद नहीं खुलते। विनोद अत्यन्त नीरसता से सामाजिक परिस्थितियों का, वर्ग भेद का वर्णन करता और दोनों में परस्पर कहा-सुनी हो जाती।

वकील साहब को न इससे मतलब था, न उससे। उन्हें सुबह अखबार चाहिये था, सिगरेट चाहिये थी। सो दोनों ही उन्हें मिल जाते थे, बस फिर क्या चिंता थी। निहायत बेतकल्लुफी से कुर्सी पर पाँव उठा कर रख लेते, फिर अख़बार में डूब जाते। उस समय अगर कोई उनसे कुछ कहे तो अत्यन्त बनावटी ढङ्ग से मुस्कराते। जैसे क्या बात है? और आँखें फिर अखबार पर दौड़ने लगतीं। उनकी इस हरकत से सुकुमार और विनोद दोनों ही मन ही मन चिढ़ा करते, पर वकील साहब का कभी भी हृदय परिवर्तन नहीं होता था। उनका आना भी उतना ही लाज़मी हो गया था जितना महँगाई में हर चीज़ के लिये इन्सान का हाय हाय करना।

—२—

सुकुमार का चित्र पूरा ही नहीं होता था। वह उसकी प्रिया का

चित्र था। पर उसके साथ अजीब परेशानी थी। एक मकड़ी का जाला बना दिया था, घटायें बना दी थीं। अँधेरा था तो बीच बीच में बिजली की चमक थी, ।•एक स्त्री हँस रही थी एक चिल्ला रही थी। हँसती हुई वृद्धा थी। रोती हुई जवान थी।

सुकुमार उस चित्र को नाम देना चाहता था। उसका कहना था, मृत्यु की घटाओं में आशा का प्रकाश है, पर वह नितान्त दारुण है और दुख हँसता है पर जर्जर है, सुख रोता है पर तरुण है, और मकड़ी का जाला संसार है। सत्ता ही अन्धकार है।

किंतु विनोद को यह स्वीकृत नहीं था। वह कहता था पूँजीवाद की घटाओं में जन जीवन की शक्ति बिजली बन कर चमक रही है, पर वह भयानक है, जर्जर संस्कृति अपने महँगाई के अन्धकार को फैला कर हँस रही है, और जनता जो तरुण है, जिसका भविष्य निश्चित् है इस समय संकट-ग्रस्त है।

वकील साहब कहते थे। नितांत भावुकता है। सुकुमार का हृदय रुद्ध है। विनोद बाल की खाल निकलता है। अरे भाई तुम्हें रंग भरना आता है, भर लो। उससे किसी का क्या नफ़ा नुकसान ! तुम चित्र किसलिये बनाते हो सुकुमार ! अपने लिये या औरों के लिये ?

सुकुमार ने गर्व से कहा—अपने लिये और सिर्फ़ अपने लिये।

'अच्छा छपवाओगे तो नहीं ?'

सुकुमार चिंता में पड़ जाता।

'जवाब दो', वकील साहब ने कहा, 'अगर छपा तो हमारे लिये।'

फिर उसकी परेशानी देखकर वे हँसते और विनोद से कहते, 'देखा आपने ! यह है कला कला के लिये। कला लिखे, कला पढ़े, हमें मतलब ?'

पर वे सँभल कर कहते—लेकिन विनोद जी की बात भी मैं नहीं मानता। इस मृतकला में जीवन ढूँढ़ने की आवश्यकता ही क्या है ?

विनोद चुप रहता। सुकुमार अपनी कला का यह अपमान असह्य समझ कर कहता, 'आप अभी वकील साहब जरा गौर से देखिये। शायद मेरा विचार आपकी समझ में आ जाय।'

'अजी जाने दीजिये', वकील साहब एक और सिगरेट सुलगा कर कहते—फिर कभी देखा जायेगा। आज मुझे एक मुकद्दमे की तैयारी करनी है।

'मुद्दकमा!' विनोद कहता—फ़र्माइये। क्या कोई दिलचस्प मामला है?

'यहाँ तो भाई' वकील साहब ने कहा—ज़िंदगी से पाला पड़ता है। तुम जय हिंद का नया मतलब जानते हो?

'बताइये।'

'जयहिंद जनाब अब आदाबअर्ज की जगह कचहरियों में काम आता है, रिश्वत लेने के लिये।'

'लाहौलबिलाकूबत!' सुकुमार ने कहा—यार क्यों झूठ बोलते हो?

'झूठ कहता हूँ?' वकील साहब ने चेतकर कहा, 'यही तो मैं तुम्हें बार बार समझाता हूँ कि असल में तुम जिंदगी के बारे में कुछ भी नहीं जानते। तुम क्या जानो रोज कितनी खुराफातें कानून और इन्साफ के नाम पर हुआ करती हैं। परसों मैंने यह साबित कर दिया कि बिशनचन्द सेठ का कल्लू अहीर की बीबी से कोई लेना-देना नहीं था। यह औरत बुढ़ापे से सठिया गई है। इसके यहाँ कभी बिशनचन्द ने सोने का नाम लेकर पीतल के गहने नहीं रखे।'

'और सचाई क्या थी?' विनोद ने पूछा।

'सचाई। उसे क्यों पूछते हो? इस दुनियाँ में मेरे नादान भाई उस चीज की अब कोई जरूरत नहीं है। समझे? सचाई यह थी कि उसने पीतल के ही गहने ले जाकर गिरवी रखे थे। अब वह बुढ़िया तबाह हो गई।'

वकील साहब हँसे। उसी हँसी में एक विक्षोभ था। वे अपने आप

कहने लगे, आप कहेंगे मैंने पैसे के लिये पाप किया। यही बुढ़िया, जो अब रोती है, इसने नत्थू कुम्हार को पचास रुपये उधार दिये थे और आज डेढ़ साल बाद उससे ढाई सौ रुपया चाहती है। उसे धर्म की दुहाई देनी है। लेकिन वह मेरा यार धर्म विरुद्ध हो गया है...' वकील फिर ठठाकर हँसे। उनकी अंतरात्मा झनझना उठी थी।

–३–

चित्र बन चुका था। तीनों उसके लिये नाम ढूँढ़ रहे थे।

विनोद कहता था नाम ऐसा होना चाहिये जिसमें नई दुनियाँ का पैगाम हो। कोई बात नहीं कि जल्दी समझ में नहीं आती। पिकासो के चित्र भी तो समझ में नहीं आते।

सुकुमार उससे सहमत नहीं था। उसकी इच्छा थी कि वह कोई ऐसा नाम रखे जैसे—'महान् का आवाहन', 'गहराइयों की पर्तें' या 'ऊँचाई की उलझन'

वकील साहब बीच-बीच में मुस्कराते थे फिर अखबार पढ़ने लगते थे।

'आप तो वकील साहब' सुकुमार ने लेटते हुए कहा, 'बस अखबार में जुटे हैं।'

'जी हाँ, देखिये नाम ढूँढ़ रहा हूँ।'

'अजी उधर छोड़िये' विनोद ने कहा—वहाँ कोई नाम नहीं बदला है। चेहरे बदल गये हैं। बिड़ला की देशभक्ति से आप इतने अधिक प्रभावित मत हो जाया कीजिये।

'ठहरिये साहब' वकील साहब ने टोककर कहा—आप तो बस अपनी धुन में लगे रहते हैं। यह देखिये। कितने सिनेमाओं का विज्ञापन है। इनमें से कोई भी काम नहीं आ सकता? हाँ क्या लिखा है...

'जाने दीजिये, जाने दीजिये', सुकुमार ने काट कर कहा—मुझे उन नामों की ज़रूरत नहीं है।

कमरे में फिर एक ख़मोशी छा गई। तस्वीर अपने स्टैंड पर लगी थी। तीन-तीन दिमाग लड़ रहे थे पर नतीजा नहीं निकल रहा था।

इसी समय बाहर से किसी ने आवाज दी। सुकुमार बाहर गया। लौटा तो एक लिफ़ाफा खोल रहा था। पोस्टमैन आया था।

'क्या है ?' विनोद ने पूछा। 'किसने भेजा है ?'

'ओहो !' सुकुमार ने पत्र खोलकर देखा और उसके मुँह से निकला, 'जानेमन का खत आया है।'

'जानेमन का खत ?' वकील साहब चिहुँक उठे। 'रजिस्ट्री से आया है ?'

'जी हाँ सुकुमार ने कहा नोटिस दे दिया गया है।'

'किसने दिया ?'

'मकानदार साहब ने।'

'क्यों ?'

अब के विनोद बोल उठे, 'ब्लैक होती है। क्यों ? जेब कटती है, क्यों ?'

'तोबा, तोबा' वकील साहब ने कहा—तो इसमें इतने तैश में आने की क्या ज़रूरत है। अख़िर पढ़ो भी तो। वे चाहते क्या हैं ?

और अचानक जैसी बिजली का तार छू गया सुकुमार चमक गया।

'और आप ! वकील साहब !' उसने चिल्लाकर कहा—आपने दिया है यह नोटिस ! आपका मुवक्किल है वह पगड़ी लेने वाला ! आपने दिया है हमें यह नोटिस।

विनोद चौंक उठा, 'क्या कहा ! कौन वकील साहब आपने ?'

'नहीं साहब', सुकुमार ने सिर हिलाकर कहा—विनोद ठीक कहता है। इस दुनियाँ में पैसे के लिये इन्सान सब कुछ कर सकता है। आज पूँजीवाद ने

सबकी मनुष्यता को छीन लिया है। कहीं भी आदमी आदमी बनकर काम नहीं कर सकता। उफ़! इन्तिहा हो गई।

विनोद के मुखपर विजय का गर्व था। उसने जोर से कहा—'मैं न कहता था ...

किंतु वकील साहब बीच में ही चीख उठे—तोबा! तोबा! म्याँ क्यों पागल हुए जा रहे हो। मैंने तुम्हें नोटिस देकर अच्छा किया कि बुरा किया पहले जरा इस चीज पर भी तो गौर करो। शुरू से कहना चाहता हूँ, पर चाहो तो आखिर ही कह दूँ।

'शुरू से ही कहिये।' विनोद ने कटुता से कहा।

'तो सुनिये' वकील साहब ने पैंतरा बदलकर कहा—इस समाज में पुलिस फौज, कानून, सरकार, अख़बार, रेडियो, सब पूँजी पतियों की हैं। हैं न?

'जी हाँ', सुकुमार ने कहा। 'फिर?'

तो इनसे कोई ले नहीं सकता। दे सकता। ये आपका ईमान खरीदते हैं, इज्जत खरीदते हैं, आबरू खरीदते हैं। तब आप कहते हैं कि मजदूर किसान ही मुक्ति के रास्ते को बनाने वाले हैं। कहिये हाँ।'

'जी हाँ' विनोद ने तिक्त कंठ से कहा—आप मतलब की बात कहिये।

'कहता तो हूँ सरकार', वकील साहब ने फिर कहा—इस समाज में भी चार प्राणी ऐसे हैं जो सेठ को छलते हैं। एक डाक्टर, एक साधु-सन्यासी, एक तवायफ़ और एक......। वकील साहब ने हँसकर कहा—हम लोग। बाकी सब लोग गुलाम होते हैं।

'और आप क्या होते हैं?' सुकुमार ने चिढ़कर कहा।

'हम? हम दलाल कहिये, चोर कहिये, पर ईमान हम लोग पहले बेच देते हैं। सच तो यह है कि खुशामद से खुदा राज़ी है...'

'आपको शर्म नहीं आती?' सुकुमार ने पूछा।

'अजी वे कौने कभी के घिस चुके मियाँ', वकील साहब ने कहा—अठपहलू खोपड़ी की जगह हमें तो पिलपिली ही मंजूर है। अब सोचिये। मैंने नोटिस दिया है तो मैं आपको उसका जबाब लिख दूंगा। कहिये मैंने सेठ को उल्लू बना दिया।

'हिश' सुकुमार ने कहा—दोस्ती बन्द। कल से आपका अखबार और सिगरेट बन्द।

वकील साहब हँसे। बोले—'बस पैसे का जोर। जहाँ देखो, पैसे का जोर म्याँ, मेरी बीबी न होती, चार बच्चे न होते, और तुम लोगों की तरह होता, तो मैंने यहाँ लाइब्रेरी बना दी होती। फिर एकाएक वकील साहब ने तीखी आवाज में कहा—'खाना खाते में जब आदमी मक्खी खा जाता है, तो कै होती है। उस वक्त लगता है जैसे अँतड़ियाँ निकल आयेंगी। सारा समाज आज पूँजीवाद की भयानक और जहरीली मक्खी खाकर मन मिचलाने से घबरा रहा है। वह गले में उङ्गली डालकर कै कर रहा है। इस वक्त कुछ कै हो चुकी है, बाकी पेट में खौल रही है। बदबू, सिर दर्द, उफ़! मैं बयान नहीं कर सकता......

वे खामोश हो गये।

कुछ देर बाद सुकुमार ने सिगरेट पेश करके कहा–वकील साहब सिगरेट। हाँ, अपने तस्वीर का नाम नहीं बताया?

वकील साहब ने कहा—अनामिका। रख दीजिये।

विनोद ठठा कर हँसा किंतु सुकुमार विक्षुब्ध पीछे हट गया था।

'बात यह है', वकील साहब समझा रहे थे—वह जो है न? जो इसके भीतर है, यानी कि बाहर नहीं है, तो वह किस तरफ़ ले जाता है, कौन जानता है, कोई नहीं...। उन्होंने दोनों हाथ फैला कर कहा इस तस्वीर का नाम सिर्फ एक हो सकता है बस और वह भी जिसका कोई नाम ही नहीं हो........ अनामिका.........

बाँबी और मन्तर

—१—

'अये हये लुंगाड़े !' नसीमन ने कहा और अपने कच्चे घर के दरवाजे में से झुककर निकलते हुए वह सीधी जाकर नीम के पेड़ के नीचे बैठी, जहाँ पहले ही बुढ़िया चाची बैठी-बैठी सुपारी काट रही थी। उसने चाची से फिर अपनी चुंदी आँखें उठाते हुए कहा—अये, कुछ तुमने भी सुना, वो है ना ? वो बाबू की बीबी·····

'अये वो हरामन !' चाची ने चौंककर कहा और उनका झुर्रीदार मुँह खुला रह गया, जिसमें से मिस्सी रँगे, चूना झड़े दाँत दिखाई देने लगे।

'उसी की तो कहती थी मैं !' नसीमन ने अपने माथे पर हाथ रखकर कहा और फिर उसी हाथ को आसमान की ओर दिखाते हुए कहा—हाये अल्ला, गजब !

स्त्री का गजब स्त्री ही अधिक पहचानती है, पत्तन क्या पहचानता ? अभी जुमा-जुमा सत्रहवाँ चल रहा है। ज़रा तड़क-भड़क के कपड़े पहन लेने से क्या अक्ल आ जाती है ?

सो जब पाँवों में पैंजनी पहने जरा लचककर बाबू की बहू निकली, पत्तन उसी वक्त नल के पास पानी भरता हुआ पाया गया और फिर नसीमन के पास चुगल खोरों ने संवाद पहुँचाया कि आज फिर वह कलमुँही, मुँहजली, उसकी लाश में कीड़े पड़ें, लौंडे को फुसला रही थी।

नसीमन को भविष्य का अज्ञात भय इस विषय में सताता क्योंकि वह

स्वयं जानती थी, यह पुरुष नामक प्राणी, जब पत्नी आती है, तब माँ से दूर हो जाता है—इसलिए नहीं कि वह यह चाहता है; मगर इसलिए कि जिस खंभे से दो गधे बँधे रहते हैं, वह बहुत जल्द कमजोर हो जाता है। किन्तु इस सब के पीछे उसे मन-ही-मन एक गर्व भी था कि यह जो आज चर्चा हो रही है, उसका केन्द्र उसका पुत्र है। परंतु चाची इस स्नेह से शून्य, व्यावहारिक अधिक थीं और ज्यादा बात करने पर भी, दो एक बात ठीक कह लिया करती थीं।

अपने खान्दानी पेशे को नसीमन ने बार-बार चलाने की कोशिश की, मगर वह न चला। वर्ना एक जमाने में शहर के बड़े बड़े रईस उसके मालिक के हाथ की बुनी हुई दरियाँ खरीदने आया करते थे। पड़ोस में बाबू के बाप की पुरानी दूकान थी। अब वह रंगसाजी की दूकान भी दरियों के रोजगार के साथ ही उठ गई। अब वह मुन्ना बाबू भी जूतियाँ चटकाता डोलता है। पहले रोजे में तमाशबीनों को चाय पिलाया करता था। अब इधर वह भी नहीं रहा। मगर कुलच्छन की बहू जो आई है··· नसीमन उसकी शक्ल देखकर काँप उठती·····

—२—

जब पत्तन सोकर उठा तो नसीमन चक्की चला रही थी। वह पेड़ की छाया में आकर बीड़ी सुलगाकर पीने लगा। उधर नल पर औरतों की भीड़ हो रही थी। कुछ मर्द नहा रहे थे। सड़क पर बच्चे खेल रहे थे।

पत्तन उठा और चल दिया। चाची पान चबाती बैठी रही। जब पत्तन लौटकर आया, उसके शरीर पर पानी की बूँदें थीं। तहमद बँधा हुआ था। देह सुती और स्वच्छ थी। सिर के लंबे बाल माथे पर झूल रहे थे, जिनसे पानी की बूँदें टपक रही थीं। बायें हाथ पर गीले कपड़े। वह खुशी से कोई सिनेमा का गीत गुनगुना रहा था। लपककर भीतर गया। रंगीन चारखाने का तहमद पहनकर हरी चिलकती कमीज पहनी। गले में गंडा बँधा था। चुल्लू में खूब भरके सिर में तेल डाला और फिर काढ़

लिया। पैरों में जब चमकता जूता पहनकर निकला, नसीमन चौंकी। बोली—ऐ हो लौंडे ! किधर ?

'अभी आया।' उस ओर बिना देखे ही, एक अत्यंत संक्षिप्त सा उत्तर देकर जल्दी से पत्तन आनन-फानन ही निगाहों की ओट हो गया। बात आई-गई हो गई। नसीमन रोटी सेकने उठी और चाचो वहीं आधी धूप-आधी छाँह में पेड़ के नीचे बैठी रही। सड़क वीरान हो चली।

उधर पत्तन जब नीचे पुलिया के पास पहुँचा, उसने अपने मुँह में उँगली डालकर सीटी बजाई। किसी को कोई संदेह नहीं हुआ; क्योंकि वह चौधरी के घर के पिछवाड़े खड़ा था, जिसके आगे-पीछे, किनारे ईंटों-मलवे के ढेर के सिवा कुछ न था। और दूर-दूर छतों पर लौंडे अपने-अपने कबूतरों को उड़ा रहे थे। कबूतर कभी आगे उड़ते, फिर एक लौट पड़ता और सब उधर ही टूटते। तब लौंडों की अजीब-अजीब आवाजें गूँजने लगतीं।

तभी ध्यान टूटा। एक सीटी फिर बजाई और वहीं झाड़ियों के पीछे हो गया। मैला बुर्का पहने एक लड़की आकर उन्हीं झाड़ियों में उसके पास छिप गई।

दो मिनट भी न बीते होंगे कि भारी क़दम से भागता हुआ एक आदमी तीर की तरह सामने से दौड़ गया। पत्तन चौंक उठा।

लड़की ने कहा—शायद वह घर आ गया है। अब ढूँढ़ रहा होगा। मैं जाती हूँ, वर्ना आज वह मुझे मार डालेगा।

पत्तन ने मुसकराकर कहा, 'छोड़ क्यों नहीं देती उसे ? मैं क्या तुझे रोटी नहीं खिला सकता ?'

लड़की ने मुसकराकर देखा।

पत्तन ने कहा—दो रुपये रोज़ की जमा है।

लड़की की आँखों में जैसे कुछ चिंता घूम रही थी। क्या यह हो

सकता है ? उसने एक बार पत्तन की ओर देखा, जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ था।

पत्तन पत्थर पर बैठ गया और उसने उसे खींचकर अपने पास बिठा लिया। लड़की बैठ गई।

दिन का उजाला अब पत्थरों के नीचे घुस रहा था। दोनों अपनी उम्र की आवश्यकता के अनुसार बेवकूफ़ी से एक-दूसरे को घूरने लगे। लगता था, आँखों में समा जायेंगे। और दोनों एक दूसरे की ओर झुकने लगे······

हठात् एक भयानक धक्का लगा। पत्तन देखता ही रह गया। उसकी प्रिया जोर से कंकड़ों पर गिरी। दोनों हक्के-बक्के हो गये। सामने मरियल पर इस वक्त बिफरे शेर की तरह बाबू खड़ा होंठ चबा रहा था। उसने बढ़कर फिर अपनी बीबी पर कसके एक लात जड़ी, जिससे क्षण भर उसका मुँह धूल में पड़ा रहा। जब सिर उठाया, तो वह रो रही थी।

'रोती है, छिनाल !' बाबू ने फिर बढ़कर हाथ में पत्थर उठाते हुए कहा—आज मैं तुझे······'

पत्तन का जी चाहता था, भाग जाये; पर अब बढ़कर हाथ पकड़ लिया। कहा—क्या कर रिया है··सिड़ी, बावले।

बाबू की बहू भाग चली। बाबू ने क्रोध से पत्थर फेंककर पत्तन की गर्दन पकड़ ली और खूनी आँखों से देखते हुए कहा—आज साले, तेरी मैयत न मनवा दी······

—३—

उसी समय एक गंभीर स्वर सुनाई दिया—क्या है बे बाबू ! पागल हो गया है ?

बाबू ने देखा, चौधरी था। कुंचित भ्रू। सिर पर मशीन फिरी हुई। मूँछें कटीं, पर छाती पर फैली हुई खिचड़ी दाढ़ी। पत्तन ने लपककर चौधरी के पाँव पकड़ लिये। चौधरी ऊँची धोती पहने था। शरीर पर

पतला-सा अधमैला कुर्ता, जिसमें से उसकी चौड़ी, पर पुरानी हड्डियों की झलक दिखाई देती थी।

'ठहरना!' बाबू ने क्रोध से पागल होकर कहा—आज मैं क़सम से इसका ख़ून कर दूँगा। आज मैं इसे नहीं छोड़ने का।

वह हाँफ रहा था। चौधरी मुसकराया। उसने कहा—आखिर हुआ क्या?

बाबू ने कहना चाहा, पर जीभ में आँट पड़ गई।

'यही तो बेटे!' चौधरी ने कहा—ख़ून कर दे, ले। साले, मुर्दा गड़ा रहे, सो ही भला। जो कहीं फैल गई बात, तो कहीं मुँह छिपाने को जगह न मिलेगी। ख़ून करेगा? वह फिर तिक्त हँसी हँसे। दाढ़ी पर हाथ फेरा। कहा—पुलिस ले जायगी। फाँसी पर लटकेगा। समझा? अगर बिरादरी में फैल गई, तो दसियों रुपये अंटी से झड़ जायँगे।

बाबू रुआँसा हो गया। उसके आवेश में भारी बाधा अटक गई थी। उसने कहा—तो फिर?

'यह तो बेटे,' चौधरी ने कहा—किस्मत की बात है। ले क्यों आया था जब सँभलती न थी।

'चौधरी!' बाबू ने फूत्कार किया।

'अबे चौधरी के बच्चे!' चौधरी ने पलटकर कहा—बेवकूफ़! साँप की तरह भन्नाया डोल रहा है। फिर कुछ रंगीन गालियाँ, जो हवा में चिड़ियों की तरह चुहल करने लगीं। 'औरत की तो पहचान ही यह है,' चौधरी का घुटा हुआ स्वर उठा। फिर कुछ स्त्री-पुरुष-संबंध का प्राकृतिक और आदिम वर्णन हुआ और चौधरी ने कुटिलता से कहा—अबे, यह तो दिक की बीमारी की तरह है, किसी-किसी घर में पलती ही है। भूल गया तेरी भाभी अजमत की इन्तज़ारी में रेल की पटड़ियों के पीछे। वे हँसे।

बाबू का सिर झुका गया। वह रोनेवाला था। शायद अब फफक उठेगा। एक ओर चुपचाप चल दिया। चौधरी ने पत्तन को एक लात दी और कहा—साले, बिरादरी में साँड़ बनने चला है। हड्डियाँ तोड़ दूँगा। अगर ऐसा ही मरद था, ले आता किसी बाहर की लड़की को। सीना ठोककर कहता हूँ, ले जाता जो कोई आकर कमीने! और एक लात और दी। पत्तन उठ खड़ा हुआ। कुत्ते की तरह खड़ा था।

हठात् चौधरी ने स्वर बदलकर कहा—हिम्मत है तो कर दिखा!

'हुकम।' पत्तन ने कहा—एक बार कह कर तो देखो।

चौधरी की पुरानी आँखों ने उस नये लड़के को देखा। जैसे बहुत दूर से बाज़ ने छोटे से पक्षी को देखा है और अब वह इस चक्कर में है कि किस तरफ से झपट्टा मारके इसे पंजों में दबा ले, और चोंच से फिर उसे फाड़ दे।

चौधरी ने कहा—बेटा! आज वह जूते पड़ते कि जी हलकान आ जाता। जिगर कलेजे से कहता कि अब तो मिलकर एक हो जा। और जो तेरी बुढ़िया सुनती, तो फिर वह कुहराम मचता······बचा दिया साले को। भला, और वो भी सुबह-सुबह······"

'तुम्हारी दुआ है, चौधरी साहब!' पत्तन ने नम्रता से कहा—मैं क्या किसी लायक हूँ? आज तो तुमने मौत के मुँह से निकाल लिया!

'अब दर्ज़ी के यहाँ जाता है कि नहीं?'

'जाता हूँ उस्ताद। कहीं दो रुपये रोज़ से हिलग रिया हूँ।'

'अब तो न जायगा बाबू के घर?'

'मैं तो अब भी न जाता था। वह मुझे खुद बुलाती थी।'

'साले में दूँगा हाथ। एक तू ही यूसुफ रह गया था। भटकटैरी-सा तो चेहरा है······।'

पत्तन ने झेंपकर सिर झुका लिया। फिर चौधरी ने कहा—कुछ काम करेगा?

पत्तन ने सिर हिलाया। चौधरी ने समझाया।

लाला बंसनारायन के साथ चौधरी की दो आने की पत्ती है। सो कुछ रेल के बाबुओं के जरिये चोरी का माल आया है। उसे स्टेशन से उठवाकर पहुँचवाना है।

'डरै मत बेटे!' चौधरी ने कहा—मैं तेरे पीछे हूँ! समझा। घबराना मत। जेल तो क्या, मौत के मुँह से निकाल लाऊँगा।

पत्तन को लगा, उसके पीछे फ़ौलाद की दीवार थी। वह चला। चौधरी ने कहा—सुन, ले, यह ले जा। दस रुपये का नोट था।

—४—

दोपहर को जब धूप कुछ तेज़ हो गई थी और आसमान में कभी-कभी बादल का एक-आध टुकड़ा पिघलती धूप को अपने भीतर सोखने लगता, मुन्ना दौड़ता हुआ आया। वह हाँफ रहा था। उसने जल्दी-जल्दी कहा—चाची, ओ चाची!

'क्या है बे?' नसीमन ने पूछा।

लड़का सहमा हुआ था।

'ऐ क्या है मुए? मुँह में काँटे उगे हैं तेरे, जो सीधा बोल न निकले है? ऐ, देखो!' फिर पुचकार कर कहा—बोल बेटे! फिर हँसकर कहा—ऐ, मरे को साँप सूँघ गिया दिक्खे हैं।

'अरी, पूछ तो।' चाची ने भारी सी आवाज़ में कहा—क्या कै रिया है?

और आश्वासन मिलने पर लड़के ने कहा—पत्तन भाई को पुलिस पकड़ के ले गई है

नसीमन के हाथ से सुराही छूटकर नीचे गिरी, फूट गई, पानी फैल गया। काई लगे खपड़े पड़े रहे। वह देखती रही। दिल धक से बैठ गया था।

चाची ने हिम्मत की। पूछा—क्यों ले गई है ?

'जे तो मुझे नीं खबर। मगर लोग बाग कै रए थे कि पत्तन भाई ने चोरी की थी।'

'चोरी की थी?' चाची का अंगार-स्वर भभक उठा—हराम-ज़ादा......।

'चौधरी ने भेजा था उन्हें किसी समान के साथ।' लड़के का स्वर खिच चला—वो माल डकैती का था, सो ब्लैक करना था......

'अये हये!' नसीमन को होश आया—'कुत्ता शहंशाह बनने चला था। घर में नाहीं दाने, अम्माँ चलीं भुनाने। अये, तू मुँहजले अबके जरा अइयो मेरे सामने, मैंने तेरी चटनी करके न धर दी, कसम से चटनी करके......।'

चाची ने कहा—क्यों गाली देती है? ले-देके घर में मरद के नाम पर वह लौंडा बच रहा है, सो दिन-रात कोसती है......

'मैं न कहती थी कुछ,' नसीमन ने कहा—बाबू के घर के हज़ार चक्कर लगा लेता। अरे, बाबू फिर भी अपना था, पर पुलिस से इश्क करने का इसे ही सूझी। भला था, बुरा था, इसी बाबू के घर से जूतियाँ खा लेता, कौन इज्जत चली जाती? सब लौंडे यही करते हैं, और सब नई लौंडियाँ; जिसे देखो...चटको, मटको पर इस हरामज़ादे, कुत्ते को तो जेलों के टुकड़े तोड़ने थे। अव्वल नम्बर का बदमास......!'

'इसका', 'चाची ने कहा', 'बाप भी सीधा था, नसीमन। वह भी भोला ही था। उससे तो शेखजी ने उसकी जमीन लिखा ली थी...है तो अपने बाप का बेटा......।'

नसीमन चिल्ला उठी—आग लगे ऐसे माँ-बाप में......।

उसका हृदय फटा जा रहा था। चाची ने देखा, वह आपे में न थी।

अपने-आपको आदमी तक गाली देता है जब और कोई चारा नहीं होता। और, आज सचमुच वह असमर्थ-सी देख रही थी।

तभी चौधरी को द्वार पर आया देखकर वह पुराना कच्चा घर सन्नाटे में पड़ गया। नसीमन इज्ज़त के लिए भीतर चली गई। चाची के पास ही चौधरी आकर खाट पर बैठ गये।

चौधरी ने कहा—चाची !

चाची ने मुँह फाड़कर ऐसे देखा, जैसे वे जो बहुत-सी मक्खियाँ इधर-उधर उड़ रही हैं, वे सब उन्हीं के मुँह में से निकल पड़ी हैं; क्योंकि उनके दाँत ऐसे लग रहे थे, जैसे मुँह में अभी तक बहुत-सी मक्खियाँ चिपकी हुई थीं।

चौधरी कहते रहे—घबराने की कोई बात नहीं है। मैंने उसे भेजा था—एक अपने ही काम से। अब क्या मैं उसे छोड़ दूँगा ? कभी नहीं। उन्होंने सिर उठाकर हिलाया—'चाची ! यह साले पुलिसवाले।' और फिर वह दुम्बे की पूँछ की तरह भारी-भारी गालियाँ, दुम्बे की वह पूँछ जिसका मांस सबसे ज्यादा जायकेदार होता है, और वह गालियाँ जो अंतःकरण से असमर्थता की नींवों को खोदने लगती हैं—समझीं, चाची ?'

चाची ने उन गालियों पर तनिक भी ध्यान न दिया। गाली तो मरद का जेवर है। उन्होंने रुआँसी आवाज़ में कहा—क्या होगा ?

'होगा क्या ?' चौधरी ने कहा—दो-चार हाथ खायगा। इधर मैं लाला के पास जाता हूँ। वे बुलाकर दरोगा को डाटेंगे कि साले हमने तनख्वाह बाँध दी है, फिर भी तुम्हारी बदमाशी नहीं जाती.....।

और चाची के कानों में फिर कुछ भयानक गालियाँ गूँजने लगीं, जीवन में जिनका इतना ही अर्थ है, जितना दूध में गिरे झींगुर का।

चौधरी अपनी भव्य आकृति से देखते हुए चले गये। चाची उदास-

सी आकाश की ओर देख रही थी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था, क्या करें ? कहाँ जायँ ? उन्हें चौधरी के प्रति अत्यंत घृणा हो रही थी, जैसे भेड़ के दूध में ऊपर चिकनाहट गाढ़ापन, और उसकी हीक—हीक जिसे सहा नहीं जा सकता।

तभी रोने की आवाज़ आई। बाबू अपनी बहू को राह पर ला रहा था। इसके लिए उसने धौ की लकड़ी काटकर 'बुद्धि सुधार' नामक हथियार बनाया था। वह उसकी ठुकाई उड़ा रहा था।

इधर नसीमन चिल्ला रही थीं—मुए, तुझे कुछ भी अकिल होती तो आज ये हाल होता ! भली कही। और तू मान गया कि बिल में हाथ तू दे, मैं पीछे से मंतर पढ़ता हूँ।

परन्तु सुनता कौन ? जिस पत्तन के लिए उसने ये शब्द कहे थे, वह तो चला गया था। नसीमन की आँखों से दो बूँद पानी ढुलक पड़ा। इस समय उसे बाबू की बहू पर दया आ रही थी, चौधरी घृणा की पर्त्तों में भी चमक रहा था।

ऊँट की करवट

—१—

गंगापुत्रों की उस छोटी सी बस्ती में किसी को भी हैसियत वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि किसी को भी खास आमदनी नहीं थी। रामदीन पांडे ही के पास थोड़ा बहुत धन था, और वह भी इसलिये कि उसके पास कुछ खेत थे जिनमें वह काश्त करवा लिया करते थे और पैसा दाँतों में भींच कर रखने से उनकी थैलियाँ तनिक और बड़ी हो गई थीं।

जब से नये दरोगाजी आये उन्होंने उस गाँव में एक नई हलचल पैदा कर दी। चारों तरफ दबदबा छा गया। गाँव के मशहूर गुंडों का उन्होंने ऐसे रातोंरात दमन कर दिया कि उनके छक्के छूट गये और दरोगाजी के विरोधी होने की जगह वे उनके गुर्गों का स्थान पा गये। दरोगाजी युवक थे। ६ फीट लम्बे, और गोरे आदमी थे। उनके चेहरे पर एक कठोरता थी। बड़ी बड़ी मस्ती भरी कंजी आँखों पर तनी हुई भौं थी और गर्दन ठोस थी, गठीली थी; जिसके नीचे उनका स्वस्थ और फैला हुआ वक्षस्थल देखकर आँखें तृप्त-सी हो जाती थीं। वह एक आकर्षक व्यक्तित्व था। उनकी मूँछें लम्बी थीं और पतली होने पर भी ऊपर की ओर तनी रहती थीं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर उनका विभिन्न प्रभाव पड़ा। बनिया उन्हें जो निपनिया दूध भेजता उसे देख एक बार वह स्वयं रो देता।

और पंडागिरी करनेवाले वे पुराने बाशिंदे जो गंगा पुत्रों के नाम विख्यात थे, उन्होंने हवा के झोंके के सामने झुकनेवाली खड़ी फसल की तरफ उन्हें भी सिर झुकाया। इसी तरह तूफान आते रहे थे, वे झुककर राह

देते थे और फिर खड़े हो जाते थे। पुराने अंग्रेजों का यह कथन उन पर पूरी तरह लागू होता था। उनकी आकृतियाँ अधिकांश अच्छी थीं और उनकी स्त्रियों के यौवन की चर्चा प्रायः सभी जातियाँ किया करती थीं।

सुबह और शाम को सूरज गंगा पर उदय होता और डूब जाता। एक बार समस्त धारा स्वर्ण की भाँति चमचमाती, दूसरी बार वही वक्ष फुलाये बहनेवाली धारा रक्त की तरह लाल लाल होकर बहने लगती, जिसमें उन घरों की छाया रात की उँगली पकड़ कर काँपा करती और धीरे धीरे बढ़ती जाती, सारा जल काला हो जाता, गहरा अंधकार भरा। गंगा की पवित्रता के प्रार्थी दूर दूर से वहाँ तीर्थ के लिये आया करते। पंडे अपनी पुरानी बहियाँ खोल कर बैठ जाते और वंशवृक्ष के पत्ते पत्ते को गिना देते, फिर धर्म के नाम पर लूटते और बात बात में तुलसीदास की रामायण की चौपाइयाँ सुनाया करते।

–२–

गंगापुत्रों में सरयू के घर सदा ठाठ रहते थे, क्योंकि पंडा गिरिजाकुमार की वह स्त्री ही आगन्तुकों की अतिथिसत्कार करती थी। कोई भी जिजमान अप्रसन्न होकर नहीं लटौता था। उसका व्यवहार, बोलचाल, हावभाव, सबही बहुत आकर्षक थे। गिरिजाकुमार के अतिथि सदैव ही एक दो दिन अधिक रहते और धीरे धीरे सरयू के शरीर पर सोना लदने लगा जिसने उसे और भी सुन्दर बना दिया।

उसकी बढ़ती को सब जानते थे क्योंकि वह अटारी में जलते दीपक के समान थी। गिरिजाकुमार ढूँढ़ ढूँढ़ कर लाते। जब औरों के यहाँ दो-दो, तीन-तीन दिन कोई नहीं आता, सरयू का द्वार धर्म का प्रशस्त पंथ बन जाता, जैसे पुरायतोया भागीरथी उस घर के अन्दर होकर बहती थीं।

उस ईर्ष्या के बढ़ने के साथ उसका यश भी बढ़ता जा रहा था।

गाँव के अन्य पंडे उसे खुले आम बदनाम करने का साहस नहीं रखते थे क्योंकि एक दूसरे की धोती का छोर एक दूसरे के पैर के नीचे मजबूती से दबा हुआ था। कपड़े का एक ओर से फटने का मतलब था, कि वह फट जाता, उसकी धज्जियाँ उड़ जातीं। अतः वे सब चुप थे और उसे भाग्य कहते थे।

दरोगाजी का सैलानीपन आत्म-प्रसिद्ध तो था, किंतु अभी वे अपने को नई बस्ती के खजानों से अपरिचित समझते थे। उनके मातहत सदैव नई नई चीजें तलाश किया करते थे जिन्हें दरोगाजी सूँघते और फेंक देते। उस दिन शाम हो गई थी। नाव पर दरोगाजी गाँव की सर्वोत्तम तवायफ़ को लिये नौकाविहार में मग्न थे। उनके सामने शराब की बोतल थी जिसमें से ढाल ढाल कर सोडा मिला मिला कर वेश्या हुस्ना उन्हें पिला रही थी। उनके बड़े बड़े नयनों के कोनों पर गुलाबी डोरे झलक आये थे और पलकें झपकने लगी थीं। आकाश में एक सुनहला बादल डूबते सूरज की किरणों में खेल रहा था। नदी चमचमा रही थी। समीरण की झूमती हुई गाथा अब पेड़ पत्तों को फरफराने लगी थी। गंगा का विशाल प्रवाह जगमगा रहा था।

हुस्ना का सौंदर्य उस चमक ने द्विगुणित कर दिया था। थी गाँव की, पर बड़े बड़े ताल्लुकेदारों के यहाँ नाच आई थी। दूर दूर तक उसके मादक शरीर का यश प्रसिद्ध था। हजारों काले काले गरीब किसानों की भीड़ एक गंदी फसल थी। उनके बीच में वह गुलाब का पौधा था जिस पर बड़े बड़े लोग भी हाथ डालने से नहीं हिचकिचाते थे। उसकी पूर्वी पोशाक, नाक में सोने की बड़ी नथ जिसे कान के पास बाँध दिया जाता था, उसके बाँये गाल का वह जहरबुझा काला तिल और फिर फरेबी आँखों में अविश्वास के धुँधलके में चलते नारी सुलभ कटाक्षों के धोखे मनुष्य को व्याकुल कर देने के लिये काफ़ी थे।

नाव बहाव से लौटने लगी थी। अब माँझियों की पेशियाँ धार

काटने में बार बार फूलती थीं, गिरती थीं। नदी के किनारे घाटों पर लोगों की चहल पहल थी। किसी ने भी उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

उधर सरयू नदी में स्नान करके जब उठी वह अत्यंत सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उसका नियम था कि नित्य प्रातः, सायं वह गंगास्नान के लिये घर से कुछ दूर चल कर इधर एकांत में स्नान करने आती। कभी कभी गंगा की धार पर प्रवाहित उसका दीपदान विस्तृत जलराशि के फेनोच्छ्वसित विलास गांभीर्य पर लगा संध्यातारा की भाँति टिमटमा उठता था।

हाठात् दरोगाजी ने देखा। उन्हें लगा वे स्वप्न देख रहे थे। उनकी भूल थी कि वे तृप्त हो गये थे। सामने वह नारी-जिसके वस्त्र भींगकर उसके अंगों से चिपक कर प्रायः स्पष्ट थे, खड़ी सूर्य्य को नमस्कार कर रही थी। डूबते हुए सूर्य ने जैसे अपनी उपासना के प्रति प्रसन्न होकर जो पराग उस पर फेंका था वह अब नदी के कुंकुम जल पर छिटक गया था। लगता था वह स्त्री नहीं थी। जल पर उगा कमल थी। दरोगाजी ने आज तक वह रंग, सफाई और वह रूप नहीं देखा था। वे उसे विभोर होकर देखते रहे। हुस्ना ने मुस्कराकर कहा: गिरिजाकुमार की बहू है। क्या उसे निगल जाओगे?

दरोगाजी ने पूछा तुम कैसे जानती हो? पड़ोस के गाँव की लड़की है। मैं यहाँ किसे नहीं जानती?

दरोगाज़ी ने सुना और देखा। सरयू नाव की ओर ही रही थी। मन में आशा का संचार हुआ।

जब हुस्ना चली गई दरोगाजी सरयू को पत्र लिखने लगे। उन्होंने एक बार लिखा और वही लिखा जो वे इससे पहले इक्कीस बार लिख चुके थे। छोटी जगह हाथ रखते थे और इसीसे जोर दबाव से आजतक सफल होकर जो उनमें अपने सौंदर्य, शक्ति और वैभव के प्रति दुर्दमनीय अभिमान था, वह फिर जाग उठा।

–३–

दीवानजी अपने फ़न में कम न थे। एक बुढ़िया को ढूँढ लाये। काम चल निकला। सरयू को पत्र मिलता। वह पढ़ती और उसके मन में तरह-तरह के विचार उठते। घर की देहलीज एक पहाड़ थी जिसे लाँघ जाना उसके लिये असंभव था। दरोगा के अधिकार को वह जानती थी। लोग कहते थे सब उस से डरते हैं। मन की स्पर्धा जाग उठी। उसने कुछ दिन चुप रह कर अंत में पत्र लिखा। यह आमंत्रण पत्र था। आप मेरे घर किसी दिन स्वयं आइये।। मैं कहीं नहीं आ सकती। पत्र लिखने के साथ ही फाड़ दिया। एक सादा-सा लिखा। आपका पत्र मिला। राजी-खुशी हूँ।

और उसके पत्रों की गिरिजाकुमार को कुछ भी खबर नहीं रहती। धीरे-धीरे दोनों ओर से दस दस पत्र प्रश्न और उत्तर के स्वरूप में हाथों में बदल गये फिर भी आग कोयले में ढकी रही। सरयू का स्नान नदी तीर पर अधिक होने लगा। दरोगाजी उसे अनेक बार वहाँ आकर अकेले देख गये किन्तु बोला कोई नहीं।

लेकिन वह मदभरी साँझ थी। दरोगा की आँखों में अजीब सुरूर था। सरयू के होंठ पर मुस्कराहट काँप कर उसको पराजित कर गई। वही पहले झुकी।

उसी दिन बुढ़िया ने कहा—सरयू बेटी, रात चलेगी?

'कहाँ?' उसने आशंका से पूछा।

'आज तेरे पति की दावत है न?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'सुना है दीवानजी ब्राह्मण हैं। उसी के घर। तू घर में अकेली रहेगी?'

सरयू के हाथ दरोगाजी का पत्र खोलने लगे।

रात हो गई थी। चाँदनी फैली हुई थी। वह चाँदनी जो आसमान से

उतर कर फिर आस्मान में समा जाती है। जिसके उजाले में दूधिया हिलोरें उठती हैं। जो छूती हैं, पर दिखाई नहीं देतीं। सरयू एकांत में घर के द्वार से सटी बैठी थी। किसी ने धीरे से द्वार थपथपाया। सरयू ने काँपते हाथ से दरवाजा खोल दिया।

दरोगाजी चुपचाप आये और चुपचाप चले गये। आधीरात का समय था। चारों ओर वही निस्तब्धता थी। वही शाँति। सब लोग सो रहे थे। सरयू उदासमना चाँद देख रही थी। अभी तक उसके अंगों में एक अतृप्त दाह थी। जैसे ओक लगाकर बैठे प्यासे का गला भी तर नहीं हुआ था। जिस समय गिरिजाकुमार ने प्रवेश किया वह करवट बदल कर उठ बैठी। वह डटकर खा आया था। कपड़े बदल कर पलंग पर लेट गया और थोड़ी ही देर में सो गया। सरयू देर तक जागती रही।

उधर दरोगाजी जब सरयू के घर से निकले लपटें धू धू कर जल रही थीं। यह मात्र वासना थी। वह विलास चाहते थे। हुस्ना का द्वार खट-खटाया। शराब की तृष्णा अभी पूरी नहीं हुई थी। हुस्ना उन्हें ढाल ढाल कर पिलाने लगी। दरोगा नशे में झूमने लगा। उसने मद होश होकर हुस्ना के गले में हाथ डालकर आँखें मींचे हुए कहा—सरयू! तुम बहुत अच्छी हो। आज तक मैंने तुम जैसी स्त्री नहीं देखी।

हुस्ना समझी नहीं। दरोगा बड़बड़ाता रहा—आज की रात कितनी अच्छी है। ऐसे ही आया करूँगा चुप के से, ऐसे ही चला जाया करूंगा। किसी को कान कान खबर नहीं होगी। अगर किसी ने तुम से कुछ कहा तो साले की चमड़ी उधेड़ दूंगा। हरामजादा!

दरोगा जाने क्या कह रहा था। कुछ कुछ समझ में आ रहा था। हुस्ना ने सुना और आश्चर्य से देखती रही। दरोगा उसकी गोदी में सो गया था। वह हँसी। ठीक है।

दूसरे दिन उसने देखा दरोगा और भी ज्याद पीकर आया था। उसके

मुँह से टूटे-फूटे बोल निकल रहे थे। उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। कैसी है यह स्त्री सरयू जिसके पास जाकर इस पशु की तृष्णा भी बुझने के बजाय दिन-दिन अधिक भड़कती जाती है। उसे उसके स्त्रीत्व से ईर्ष्या हुई।

—४—

कई दिन बीत गये थे। दरोगा दिन-दिन बदनाम होता जा रहा था। एक दिन वह नाली में पीकर नशे में पड़ा पाया गया। एक बार एक इक्के में तवायफ़ों के गलों में हाथ डाले बीच बाजार जाते देखा गया। कई आदमी उसने व्यर्थ ही पिटवा दिये थे। दिन रात चौबीसों घंटे नशे में डूबा रहता था।

उस दिन बुढ़िया ने सरयू से चलने को कहा। सुनते ही हृदय काँप गया। वह नहीं गई। दरोगाजी उस समय नशे में चूर बैठे थे। दीवानजी उनके पैरों के पास बैठा गाँव के लोगों की इधर उधर की शिकायत कर रहा था। बुढ़िया की बात सुनते ही उन्हें तीर सा लगा। बोले, 'साली! पारसा बनती है? देखूँ तो इसे।'

बुढ़िया रोकती रह गई। पिस्तौल लगाकर एकदम सरयू के मकान पहुँचे और धड़ाधड़ चढ़ते चले गये। किसी से पूछने की भी आवश्यकता नहीं समझी। उस समय राह पर लोग चल रहे थे। पचास गज दूरी पर पान वाले की दूकान भी खुली थी। सरयू ने देखा तो चिल्ला उठी जैसे घर में कोई चोर घुस आया था। वह इतनी आगे नहीं बढ़ी थी। दरोगा उस समय पशु की तरह उसे घूर रहा था। उसने पिस्तौल तान कर कहा, 'खामोश! गोली मारूँगा।'

सरयू हँसी और उसने हाथ फैला दिये। दरोगा उसके अंक में समा गया। सरयू ने उसके हाथों को बाँध लिया और भयानक स्वर से चिल्लाने लगी।

सरयू की पुकार सुनकर इधर उधर के लोगों का ध्यान आकर्षित होने

लगा। वे सब इधर ही भाग चले। दरोगा उसके आलिगन से छूटने का प्रयत्न कर रहा था। गालियाँ दे रहा था। उस धक्का मुक्की में सरयू गिरी। लेकिन साथ ही दरोगा भी गिरा। पिस्तौल छिटक कर अंधकार में दूर जा गिरी। लोग ऊपर चढ़ने वाले थे। दरोगा ने भय से काँप कर कहा—सरयू मुझे माफ कर बीच में⋯मैं नशे में था⋯⋯, सरयू हँस दी।

दरोगाजी भाग गये थे। सरयू ने उन्हें खिड़की की एक दूसरी छत पर कुदा दिया था। जिस समय लोग कमरे में घुसे वह डर के मारे बेहोश पड़ी थी। गिरिजाकुमार को घर आने के पहले ही पान वाले की दूकान पर सब घटना सुना दी गई।

मुकदमा बनने लगा। इस तानाशाही के विरुद्ध पांडे लोग एकाएक उठने लगे। उन्होंने मकान में घुसना, और बुरी नियत से घुसना, औरत पर हमला करना, उसकी आबरू लेने की चेष्टा करना, न जाने क्या क्या कानून मथ डाला।

दरोगाजी ने सुना तो हुस्ना की ओर देखकर कहा—आबरू? आबरू तो कभी की चली गई। तुम लोगों की कोई आबरू होती है? बुलाने से गया था। जेब में देखो मेरे। खत रखे हैं। उसके हाथ के।

हुस्ना इस कठोर व्यंग्य को सुनकर चिढ़ गई। उसने कुछ नहीं कहा। सिर झुका लिया। गाँव की उड़ती हुई खबरें उस तक आ चुकी थीं। उठी और दरोगा की जेब से खतों का एक मुट्ठा निकाल लिया। फिर आकर चुपचाप वहीं बैठ गई। फिर शराब ढालने लगी।

दरोगाजी जैसे निश्चिंत थे। उन्हें कुछ भी याद नहीं था। हुस्ना के यहाँ से घर आकर उन्होंने और शराब पी। एक बोतल पी जाने के बाद दूसरी बोतल खोल डाली और गिलास में ढालने लगे। कुछ देर के बाद सोडा खत्म हो गया तो पानी मिला कर पीने लगे। आधी रात बीत गई थी। कल

की हलचलों के बारे में मूँढ़े के पास बैठकर चौकीदार गाँव की खबरें सुनाने लगा। वह एक एक पत्ते की नसें गिनने वाला आदमी था। अफसरान की खुशामद करने में उससे बढ़ कर शायद कोई नहीं था। बहुत दिन से गाँव में कोई बात न होने से वह ऊब गया था। मन ही मन उसे दरोगा से घृणा थी क्योंकि उसका एक नाइन से नाजायज ताल्लुक था। दरोगा अक्सर उस सिल-सिले में उस पर वेहूदी फब्तियाँ कसता था। इस समय उसे मौका मिल गया। उसने कहा—हुजूर ! आपकी हुस्ना बीबी हैं न ? कहती थीं, दरोगाजी तो पिस्तौल भूल आये हैं वहाँ, नशे में थे। उन्हें क्या होश था ? भला यह भी भलमनसाहत है कि एक औरत को बदनाम करने की कोशिश करें। खतों का मुद्दा बताते हैं। माना कि उसने खत लिखे थे पर उन्हें दिखाना तो निहायत अदना और कमीनी बात है।

दरोगा को जैसे किसी ने जलती सिगरेट छुला दी। तमक उठे—क्या कहा चौकी दार ? उन्होंने आतुरता से पूछा, 'क्या कहती थी ? मैं नशे में था ? अच्छा ! यह दिमाग है ?' फिर अचानक ही उनका हाथ कोट की जेब पर गया और जेब खाली देखकर वह भयानक स्वर से चिल्ला उठे—अच्छा ! यह मजाल ! दीवान ! जमादार ! बुला सालों को। लगा दो हराम-जादी के घर में आग।

सिपाही इत्यादि सब एकत्र हो गये थे। इस आश्चर्य भरी आज्ञा को सुनकर भी वे कुछ समझ नहीं पाये थे। शायद ज्यादा चढ़ गई थी। ऐसा लगा कि दरोगा जी अब इस विरोध को अधिक नहीं सह पायेंगे।

तभी चौकीदार काँप गया-सा बोला—हुजूर ! यों न कीजिये। इससे तो हाकिमों तक खबर पहुँच जायेगी। बड़ा तूफान उठ खड़ा होगा।

आग में घी पड़ा। दरोगा के आत्मसम्मान को ठेस लगी। वह क्रुद्ध हो उठा। आज्ञा आकाश के सूर्य के समान टँग कर चमकने लगी। चौकीदार मन ही मन मुस्कराया। थाने के बूढ़े पानी भरने वाले ने भय से देखा और पीछे हट गया।

दरोगा ने चिल्ला कर कहा—दीवानजी ! यह हुक्म है। लगादो उसके घर में आग। अभी जाओ। मुझसे दगा ? मेरे नाम से आस-पास के हलके थर्राते हैं।

दीवान ने सुना और पुकार उठा—खानसिंह !

सिपाही ने कहा—हुजूर !

'यह आज्ञा थी।'

—५—

और सचमुच उस रात में अचानक ही सिपाहियों ने हुस्ना का घर उसके सोते समय जाकर घेर लिया। तब धीरे-धीरे सुलग कर अंत में हुस्ना का घर धू धू करके जलने लगा। आग की लपटें थान पर लोटतीं, हवा की चोट से जीभ लंबी करके हाँफतीं और फिर उनके हृदय का गुबार धूँआ धूँआ बनकर कोठे के भीतर बाहर घुटन पैदा करता जिससे आँखें बंद हो जातीं और फिर अर्राती हुई आवाज करके लपटों की रोशनी हवा के पैर पकड़ कर अँधेरे का पीछा करतीं और चारों ओर फैलती चली जातीं।

गाँव वाले इधर से उधर दौड़ रहे थे। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया था। उन्हें भय था कि यदि आग नहीं बुझी तो औरों के घर जलने लगेंगे। बच्चे रोने लगे। औरतें चिल्लाने लगीं। मर्दों का कुँए पर ताँता लग गया। हुस्ना बाहर खड़ी चुपचाप देख रही थी। उसकी आँखे स्थिर और निश्चल थीं। हाथ में एक छोटा सा बक्स था जिसे वह लेकर भाग आई थी।

हुस्ना की माँ रो रो कर चिल्ला रही थी। उसकी तथा बेटी की सारी कमाई आज उसके समाने ही राख हुई जाती थी। देख देख कर उसकी छाती फट रही थी।

इसी समय आग का कारण प्रकट होने लगा। चौकीदार ने चुपचाप

खबर फैला दी। आग लगाने वालों को लोगों में से एक बूढ़े ने जाते देखा था। दरोगा पर सबको क्रोध आ रहा था। क्या वह इतना निरंकुश है?

'क्यों पांडेजी इस पर भी चुप रह जायेंगे? ऐसे कोई लाट साहब का बच्चा नहीं है।'

पांडे रामदीन सिर झुकाकर सोच रहे थे। उन्होंने उस पर राय न देना ही अधिक उचित समझा था। पर अब उन्हें कहना ही पड़ा—तो यह कैसे तय कर लिया कि सरकार ने आग लगवाई है। कोई दुश्मनी थी?

गिरजाकुमार मन ही मन क्रुद्ध थे। उन्होंने कहा—कल इस पर गाँव में पूछताछ करके कुछ निश्चित करना चाहिए। यों तो काम कैसे चलेगा?

गाँव वालों के विभिन्न मत थे। गिरिजाकुमार को आज देख कर लोगों में साहस हुआ। हुस्ना ने आगे बढ़कर कहा—मैं कोई हूँ। पर मेरी सात पुश्तों को गाँव ने पाला है। सारा गाँव गवाह है, मेरे घर में दरोगाजी ने आग लगवाई है।

रात के अँधेरे में जब गिरिजाकुमार घर पहुँचा देखा तो सरयू घर पर नहीं थी। वह हतबुद्धि सा बैठा रहा। इस समय उसका हृदय क्रोध और विक्षोभ से जलने लगा था। एक अज्ञात आशंका ने उसे भीतर ही भीतर बता दिया था कि वह कहाँ गई थी। घर का द्वार ऐसा उड़का दिया था! चाहे भले कोई चोर ही भीतर न आ जाता।

हठात् वह चौंक उठा। सामने ही सरयू खड़ी थी। वह कुछ देर खड़ी रही। दोनों में से कोई भी कुछ नहीं बोला। सरयू छत पर ही बैठ गई जैसे वह थक गई थी। गिरिजाकुमार चुपचाप सोचता रहा।

सुबह की पहली किरन फूटने से पहले उसने देखा सरयू हाथ में स्नान के कपड़े लेकर नदी की ओर जाने की तैयारी कर रही थी। गिरजाकुमार

वेग से उसके सामने जा खड़ा हुआ और धीमे परंतु तीखे स्वर से—कहा जा रही हो ?

'हाँ।' छोटा-सा उत्तर उसके कानों में गूँज उठा।

'मैं आजकल यह सब क्या सुन रहा हूँ ?' उसने फिर पूछा।

सरयू ने धीरे से कहा—मैं जानती हूँ तुम मुझ से नाराज़ हो। पर उनका पिस्तौल छूट गया था। उसे वापिस देने जाना पड़ा।

गिरिजाकुमार को लगा पाँवों के नीचे से छत खिसक जायेगी। सरयू कहती रही—बाकी तुम्हारे जिजमान थे, मेरा एक वही तो था।

गिरिजाकुमार ने बात के वज़न को समझा। वह खिसियाकर सामने से हट गया। सरयू खड़ी रही। उसने अपनी बड़ी बड़ी मदभरी आँखों से उसे घूरते हुए कहा—उनके पास मेरे ख़त थे। वह हुस्ना रंडी ने उड़ा लिये। तभी उसके घर में आग लगवा दी थी। समझे ? इस समय रोता छोड़ आई हूँ। तुम गवाही न देना।

गिरिजाकुमार ने सुना और उसे लगा आकाश और धरती मिलते चले जा रहे हैं। वह चक्कर खाकर बैठ गया। सरयू उसे होश में लाने लगी। गिरिजाकुमार ने आँखें मीचे ही कहा—सब कसूर मेरा है सरयू। सब कसूर मेरा है।

'न तुम्हारा, न मेरा। मौके की बात है। और कुछ नहीं।' सरयू ने फुस फुसाकर उत्तर दिया।

—६—

दूसरे दिन गाँव वालों ने अचरज से सुना कि हुस्ना ने दरोगाजी पर दावा दायर कर दिया। उसने कुछ गवाह भी तैयार कर लिये। शिकायत ऊपर पहुँची। जुर्म काफी बड़ा था। दरोगाजी की जमानत हो गई और मुकद्दमे का फैसला होने की प्रतीक्षा की जाने का हुक्म हो गया और साथ ही तब तक के लिये

दरोगा मुअत्तिल कर दिये गये। हेठी तो उनकी हुई पर दबदबा नहीं गया। लोग कहते—अजी हुस्ना उसका क्या कर लेगी ? वह एक बदमाश है। उस की बड़ी बड़ी ऊँची जगहों पर पहुँच है। देखिये ! वह क्या क्या करता है ?

दोनों ओर से कार्रवाइयाँ चलने लगीं। दोनों ओर से हड्डी चबाकर खाने में उस्ताद कुत्तों के से वकील अपनी-अपनी राय देकर आग को भड़काने लगे।

नये दरोगाजी अधेड़ उम्र के आदमी थे। पुलिस वाला ठीक हो या गलत उसकी इज्जत रखना अपनी शान समझते थे। उन्होंने पुलिस के सब मामलों को जहाँ का तहाँ दबा दिया। कचहरी के अमले मुंशी रुपये की कटारी से ज़ख्मी हो गये और कुछ ही देर में उनका अधमरा ईमान दम तोड़ गया। उनके आने पर गिरिजाकुमार और पुराने दरोगाजी उनके घर पहुँचे। नये दरोगाजी ने सब सुना और फिर हुस्ना के सतित्व को नष्ट करने वाली कुछ भारी भारी गालियाँ दीं जो किसी भी सधवा को आग में परीक्षा दे डालने को विवश कर सकती थीं। उन्होंने मन ही मन बातों को तराशा और असल को अपने दिमाग में नक्श कर लिया। गिरिजाकुमार जब घर पहुँचा सरयू सामने आ बैठी। पूछा—क्या हुआ ?

'ठीक है। मैंने कहा हुस्ना के यारों की नज़र मेरी बीबी पर पड़ गई थी। फुसलाना चाहते थे सो उनसे नहीं हो सका, तभी बदनामी उड़ाने लगे।'

सरयू ने पति को घूरकर देखा। ऐसे कि अनजाने ही वह पुरुष सकपका सा गया।

'मुझे पहले ही से आस थी कि बात बन जायेगी।' सरयू ने दृढ़ता से कहा।

इसी प्रकार चार महीने बीत गये। शहर दौड़ते-दौड़ते दोनों तरफ के लोगों के पाँव छिल गये। हुस्ना के वकील ने मामले को इस प्रकार पेश किया :

दरोगाजी अक्सर हुस्ना तवायफ़ के यहाँ आकर शराब पीते थे। इतनी पीकर आते थे कि बेहोश रहते थे, घर जाकर फिर पीते थे। अक्सर नालियों में पाये गये। हुस्ना उन्हें हमेशा समझाती थी। लेकिन वे अफ़सर थे और वह बेचारी दबती थी। एक रोज नदी में नहाती गिरजाकुमार पांडे की बीबी सरयू को देख कर दरोगाजी ने हुस्ना से कहा कि किसी तरह सरयू उनके हाथ लगे। हुस्ना कोई ऐसा काम करे। हुस्ना ने ऐसा करने से इन्कार किया। दरोगाजी की नाखुशी वहीं से शुरू हुई। लेकिन उनका आना-जाना जारी रहा। उधर किसी तरह से सरयू को उन्होंने फाँस लिया और एक दिन जाग रहते ही रात में उसके घर चढ़ गये जिस पर वह नाराज़ हुई। उसने इज्ज़त बचाने को शोर किया। आप भाग आये। उसी तरह हुस्ना के घर शराब पी और उसे छेड़ा। मगर वह महीने से थी। उसने इन्कार किया। दूसरे दिन और नशा किया और उन्होंने हुस्ना के घर पर उससे जिना बिल जब्र किया और वहीं सरयू के खत गिरा आये। रात को खत मँगाने पर हुस्ना घर नहीं थी। उसकी माँ ने इस विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। दरोगाजी ने सुना तो नशे में क्रुद्ध हो उठे। उसको मार डालने के इरादे से आधी रात को उसके घर में आग लगवा दी और उसका माल फुँकवा दिया।

गवाहों की लम्बी कतार लग गई। हुस्ना का काम सुबह शाम खुशामद हो गया और उसके शरीर पर वह लोग अपना हाथ रखने लगे जो कल तक उसे ऊँचा समझते थे।

लेकिन बहस में ही सफ़ाई के वकील ने ऐसा काटा कि मामला कुछ भी नहीं बन सका। हुस्ना का वेश्या होकर अच्छी नसीहतें देना, गिरिजाकुमार पांडे की पत्नी के हाथ के पत्रों का पेश होना जिसे लिखना छोड़ पढ़ना तक नहीं आता था, जिस की गवाही रामदीन पांडे जैसे गाँव के मुअज्ज़िज़ आदमी ने दी है, तथा हुस्ना वेश्या जो पेशा करती है उसका बलात्कार का हल्ला मचाना, जैसे वह कोई इज्जतदार औरत थी, एक के बाद एक ऐसी बातें थीं

जिन पर उपस्थित भीड़ कई बार हँसी । हुस्ना के गवाहों की हैसियत देखी गई । कोई भी भला आदमी न था । उधर बदमाशों ने एक इज्जतदार पर्दानशीन औरत को बदनाम करने का मौका ढूँढ निकाला । आग खुद लगाई । सिपाही तो पहरा हमेशा हर वक्त घूम कर देते ही हैं । यह तो कोई बड़ी बात नहीं है । वे तो आग लगी देखकर भागे भागे आये थे । बातें सब ठोस थीं । डिप्टी साहब ने मुकद्मा खारिज कर दिया ।

दूसरे ही दिन हुस्ना पर हतक इज्जत, झूठी रिपोर्ट, झूठा मुकदमा, झूठी शहादत पेश करना इत्यादि अनेक जुर्म लगाकर दरोगा ने मुकद्मा दायर कर दिया । उधर गिरिजाकुमार ने भी बदनामी का केस बनाकर उस पर इस्तगासा ठोक दिया ।

हुस्ना ने सुना और उसके होंठ काँप उठे । सरयू का उसने भला करना चाहा था, वही उसके विरुद्ध हो गई थी । पर क्या वह अपनी बदनामी के मोल पर हुस्ना का भला कर सकती थी ? वह पर्दानशीन जो थी । हुस्ना रो पड़ी । उसका सब रुपया समाप्त हो चला था ।

शाम धुँधली हो चली थी । जीत की खुशी में गंगा के पवित्र तीर पर रामदीन और गिरजाकुमार भंग छान रहे थे लेकिन सरयू घर पर नहीं थी । गिरिजाकुमार भंग के नशे में था । खाट पर जाकर घर में पड़ते ही उसका मन उड़ने लगा । आधी रात के समय जब सरयू लौटी उसके पाँव लड़खड़ा-से रहे थे । वह मुखर और प्रसन्न थी । आते ही बिना हिचकिचाये गिरिजाकुमार की खाट पर बैठ गई । पति ने देखा वह झूम रही थी । वह नशे में थी । आज उसके मुख से हल्की हल्की शराब की गंध आ रही थी । ऊँट करवट बदल चुका था........वह दरोगा के पास से आ रही थी........

ब च्चा

—१—

गोविन्द सिंह बच्चे की याद में रो पड़ा। उसका कोई बालक जीवित नहीं रहता था। कई हो चुके थे, पर परमात्मा को एक को भी रहने देना मंजूर नहीं था। भाग्य पर किसी का बस नहीं चलता, पति-पत्नी इसी निर्णय पर पहुँचते। पर जलेबी पर किसी का ध्यान न जाता था, जो हैजे की जड़ थी, और सदैव ही खिला दी जाती थी। अन्त में उसने पत्नी से सलाह करके तय किया कि कुछ दिन के लिए बाहर चला जाय। और जब लौटें, तो अनाथालय से एक बच्चा लेते आयें। बात साफ थी। पत्नी ने सुना और अपने अभाग्य के प्रति उसका जो असन्तोष था वह क्षण भर को मिटता हुआ दिखाई दिया। उसने माथे के घूँघट को पीछे सरकाते हुए, उसके चिंतातुर मुख की ओर देखा और फिर अविश्वास करते हुए पूछा—बात तो ठीक ही-सी लगती है, पर क्या ऐसा बच्चा हमें मिलेगा ?

"मिलेगा क्यों नहीं ?" गोविन्द सिंह ने कहा।

पत्नी की जबान पर बात आकर लौट गई। भला वह अपशकुन की बात कहती भी कैसे ? लेकिन प्रश्न यही था, कि जब परमात्मा को ही मंजूर नहीं, तो क्या मनुष्य का वश चल सकेगा ! पर वह यह कह कर पति का हृदय दुखाना नहीं चाहती थी।

गोविन्द सिंह रोटी खाकर लेट रहा। उसके दिमाग में अनेक प्रकार की आशंकायें आ रही थीं, जैसे चाँद को घेरने वाला कोई काला बादल

कभी बढ़े, फिर फैले, फिर घना होने लगे। किन्तु भविष्य की सुदृढ़ इमारत के लिये जिस नींव की अत्यन्त आवश्यकता थी, वह बालक के रूप में मन में फिर-फिर बैठने लगी।

सुबह जब वह उठा तब उसके पाँवों में शक्ति थी। उसने देखा कि पत्नी बहुत पहले ही जाग कर गृह-कार्य में लग गई थी। इस समय उसका मन आशाओं से भरा हुआ था। किन्तु हठात् कोई काम कर डालने के पक्ष में वह कभी भी नहीं था।

उसने पत्नी को बुला कर कहा—खबर फैलानी होगी।

पत्नी ने आँख उठा कर उसकी ओर देखा। गोविन्द सिंह उसकी ओर बिना देखे ही कहता गया—एकदम तो बच्चा मिल नहीं सकता। उसके लिये पहले से तुझे स्वाँग रचना पड़ेगा कि कुछ होने वाला है, वर्ना बिरादरी उसे सहज नहीं अपनायेगी।

पत्नी कुछ शर्माई। यह काम वास्तव में कठिन था।

गोविन्द सिंह ने कहा—भोला की माँ ही से कह दो। अपने आप सब ठीक हो जायेगा।

भोला की माँ मुहल्ले में एक जीता-जागता और मुँह से बोलता अखबार थी। काम फिर भी कठिन ही लगता था। पत्नी ने गोविन्द सिंह की ओर देखा। उसने सिर झुका लिया। पत्नी के मुख पर असहायता थी।

तब सामंजस्य का पथ निकला—कहीं बाहर न चले चलें कुछ रोज के लिये। यहाँ तो लोग कहेंगे कि कुछ दीखा ही नहीं। भोला की माँ से क्या छिप सकेगा?

गोविन्द सिंह ने रोजगार की नजर से देखा। चारों तरफ़ से ठोंक-पीट कर बात का निरीक्षण किया। पत्नी ने अपनी स्वीकृति की शर्त पेश कर दी थी। उस पर हस्ताक्षर करना आवश्यक था।

आखिर यह भी हुआ, और वे दोनों सामान बाँध कर चल दिये।

चलते वक़ भोला की माँ को समझाया गया और बात की पुष्टि के लिये उसे कुछ पैसा भी दिया गया। पत्नी का मन हल्का हो गया।

गोविन्द सिंह ने रेल में बैठते हुए कहा—कुछ मनौती मानी है ?

'हनुमान जी को पाँच सेर लड्डू चढ़ाने की मैंने सोची है।'

गोविन्द सिंह पत्नी की धर्म-बुद्धि पर प्रसन्न हुआ।...

यह नया कस्बा था।

–२–

गोविन्द सिंह ने इक्के वाले से पूछा और दोनों ने एक धरमशाले में जाकर सामान धर कर शान्ति की साँस ली। स्नान-भोजन के उपरान्त जब वे सुस्थिर हो कर बैठे तब उन्हें हवा में उड़ती आवाजें सुनाई देने लगीं।

हिन्दू-मुस्लिम दंगे की तनातनी थी। शहर में एक पीपल का पेड़ था जिसके नीचे शिवलिंग स्थापित था। मुसलमानों के ताज़िये उधर ही से निकलते थे। इस वर्ष ताज़िया कुछ ऊँचा बन गया था। जब पीपल के नीचे आया तो मुसलमानों ने पीपल कटवा देने की माँग की। हिन्दू पीपल को देवता मानते थे। उन्होंने राह बदल देने की राय दी। झगड़ा बढ़ चला। खून बहने की नौबत आ गई। किन्तु भगवान की कुछ और ही मर्जी थी। डिप्टी कलक्टर ने हल खोज निकाला। सड़क खोदी गई और सतह नीची की गई। दोनों का मान रह गया। न पेड़ कटा, न ताज़िया झुका। किन्तु मन की गाँठ न खुली। दोनों ओर अफवाहें फैलने लगीं। तैयारियाँ होने लगीं।

धर्मशाला में पड़े-पड़े दोनों सोचते यह क्या बला आ गई। परिणामस्वरूप दोनों ही मुसलमानों की निंदा करते, क्योंकि उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता था कि वे भी किसी की जान ले सकते हैं। और धर्मशाला की उस कोठरी में जीवन की निर्भय श्रद्धा पत्नी के नयनों में

जागती रही और पति अपना सर्वस्व उस पर न्यौछावर करता अप्रत्यक्ष रूप से संबल बन कर अभय देता रहा।

पत्नी ने कहा—अगर काम जल्दी हो जाय तो फिर कुछ दिन किसी दूसरी शान्त जगह में चल कर रहेंगे। यहाँ तो वही कमबख्त मार-काट की बातें सुनने में आ रही हैं। जाने क्या होने वाला है?

वह सोचने लगा। उसने सुना था कि यहाँ आग न थी, केवल उसकी गर्मी थी। बड़े-बड़े शहरों में से लपटें उठ रही थीं। जम कर लड़ाई हो रही थी! कल तक सब ठीक था। आज अचानक ज्वालामुखी की भाँति देश को फूटते देख कर वह विचलित हो रहा था।

उसने कहा—कल जरूर जाऊँगा।

पत्नी ने मन-ही-मन भगवान को याद किया। गाँव की लड़की थी। जो पढ़ा था, सो मामा से ऐसे ही कुछ सीख लिया था। पति के तीन अक्षरों में कितना बड़ा इतिहास था यह उससे छिपा नहीं रहा। कुछ देर तक गोविन्द सिंह उसे आश्वासन देता रहा। वह जीवन के प्रति विश्वास रखने वाले आदमियों में था। पत्नी संतुष्ट हुई और वह उठ कर बाहर ड्योढ़ी पर जा बैठा।

उस मध्यकालीन नीरवता में आज सदियों पहले की सनसनाहट गूँज रही थी। गोविन्द सिंह ने देखा कि कई आदमी बातें कर रहे थे। वे सदा उत्तेजित-से दिखाई देते थे। वहीं एक सायकिल वाले की दूकान थी, जहाँ देश-विदेश की बातों पर चर्चा हो रही थी, जिसमें गालियाँ बीच-बीच में वंदनवार के समान टँगी थीं। भीतर घुसने वाले को उन्हीं के नीचे से गुजरना पड़ता था। कभी-कभी कोई छैला औरतों के बारे में भद्दी-भद्दी बात छेड़ देता, जिनसे प्रसन्न होकर सब हँसते और उसे बढ़ावा देते।

इधर-उधर की बातें उसको अधिक देर तक नहीं लुभा सकीं। बार-बार उसे अपने काम की याद आने लगी। सामने ही हलवाई की दुकान

थी। वहाँ उसने लस्सी पीते हुए लोगों से पता लगा लिया कि अमुक स्थान पर एक पुराना बाजार है, जिसके पास ही एक अनाथालय है। यहाँ उसने कहा कि उसका बच्चा खो गया है, और वह उसे ढूँढ़ता फिर रहा है। सबने उससे सहानुभूति प्रकट की।

दूसरे दिन जब दोपहर बीत चली और थकान अनुभव होने लगी तो उसी दूकान से एक कुल्हड़ लस्सी लेकर पी और फिर चल पड़ा। इस समय उसका मन आशंका के वेग से काँप रहा था। आज वह अपने जीवन का एक बहुत अनहोना काम करने जा रहा था। क्या उसकी पत्नी सचमुच किसी दूसरी स्त्री के बालक को अपना समझ कर पाल सकेगी? यह विचार तो उसे नहीं छोड़ सकेगा कि वह उसके अपने पेट का जाया नहीं है। उँह, उसने सोचा अनाथालय से तो हर हालत में वह अच्छा ही व्यवहार पायेगा। घर, घर है। फिर मैं तो हूँ ही। अगर घर लाऊँगा तो क्या उसे तकलीफ होने दूँगा?

जब वह अनाथालय में पहुँचा तो धूप उतरने लगी थी। यह एक पुरानी इमारत थी जिसके एक द्वार से भीतर का आँगन दिखाई देता था। चारों ओर की दीवारों को देख कर जर्जरता का आभास होता था। ऊपर केवल एक रोशनदान था जिसमें से उजाला बहुत कम और धीरे-धीरे आता था। दीवारों में बहुत-से आले थे और प्रायः सब में बहुत-सी धूल जमा थी, जिससे वहाँ की सुव्यवस्था प्रगट होती थी।

खूसट मैनेजर से उसकी बातें होने लगीं। वह ऊपर से नीचे तक खद्दर के कपड़े पहने था। गले में एक रामनामी दुपट्टा था। लंबी-लंबी, खिचड़ी मूँछों ने उसका ऊपरी होंठ ढँक रखा था।

गोविन्दसिंह ने कहा—इधर से लौट रहा था। सोचा, बच्चों को देखता चलूँ। मेरे कई बच्चे हुए, पर सब मर गये। एक बच्चा था सो भी

परमात्मा ने छीन लिया। बाबूजी, खो गया वह। ऐसा सुन्दर बच्चा था, कि आँखें देख कर उलझ जाती थीं।'

मैनेजर ने देखा, गोविन्दसिंह का रूप देख कर कोई उससे ऐसे सुन्दर बालक की आशा नहीं कर सकता था। फिर उसने सोचा कि बच्चा शायद माँ को पड़ा हो। पर 'खो गया' सुनते ही, वह चौंक पड़ा जैसे उसका अपना बच्चा खो गया हो। मुह में से खेद भरा स्वर फूट पड़ा—राम, राम! राम......राम! बड़ा बुरा हुआ। चाँद हाथ में आकर निकल गया! कैसी कड़ी चोट पड़ी आप पर! और अपनी बात का प्रभाव देख कर वह मन-ही-मन मुस्कराया।

गोविन्दसिंह अविचलित था, क्योंकि बच्चा था ही कहाँ, जो जाता। मैनेजर ने बात समाप्त की—पर भाई, परमात्मा की मर्जी के खिलाफ किस की चलती है? वह जैसे सुख देता है, और उसे लेते हो, तैसे ही उसके दिये दुखों में उसे बुरा न कहो। उसकी लीला विचित्र है। वह अनादि है, अपरंपार है। जानता हूँ, कहना आसान है। पर भाई, उसे ही झेलनी पड़ती है जिस पर आ पड़ती है।

गोविंदसिंह ने अनाथालय देखने की इच्छा प्रगट की।

चलो, देख लो! मैनेजर उठ खड़ा हुआ। उसने आवाज दी—हरी! ओ हरी!

हरी ही नहीं, तीन-चार बालक और भी आ गये, और सहमे-सहमे-से आगंतुक की ओर देखने लगे। मैनेजर ने प्रेम से हरी के सिर पर हाथ फेर कर कहा—नमस्ते करो! बाबूजी अनाथालय देखने आये हैं। गाने का प्रबन्ध करो। अच्छा?

नमस्ते करके लड़के चले गये। तब मैनेजर उठ खड़ा हुआ। गोविन्दसिंह देर तक उसके साथ भीतर का दृश्य देखता रहा। खाकी कमीजें-नेकर

तथा खाकी टोपी पहने, करीब पचपन लड़के थे। कुछ लड़के बैंड बजाने का अभ्यास कर रहे थे, कुछ पेंसिल और स्लेटों से लिखा-पढ़ी कर रहे थे। एक बूढ़ा उनकी निगरानी कर रहा था। कुछ पुरानी कुर्सियाँ पड़ी थीं। और कुछ भी नहीं था। मैनेजर ने बताया कि दूसरी तरफ रसोई है। कुयें से पानी खींच कर लड़के अपना सब काम खुद करते थे तथा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा होना सीख रहे थे। इसके बाद आठ लड़के एक पंक्ति बना कर खड़े हो गये। हाथ जोड़ कर उन्होंने प्रार्थना गाई जिसमें परमात्मा की कृपा और मनुष्य की दया पर जोर दिया गया था।

जब वे लोग लौट गये तो गोविन्दसिंह गंभीर हो गया। उसके कानों में अभी तक बालकों की करुण आवाज गूँज रही थी। वह सोच रहा था यदि उसकी पत्नी होती तो वह रो पड़ी होती। एक ओर वह था, जिसके घर बालक न था, और दूसरी ओर यहाँ लावारिस बच्चों की भीड़ थी।

मैनेजर ने देखा कि उसके ग्राहक के चेहरे पर जीवन की परिश्रान्त उदासी छा रही थी। वह सफल हुआ था। यही लड़के बैंड बजा कर घर-घर से अनाथालय के नाम पर भीख माँग लाते थे। कुछ लड़के काफी ट्रेनिंग पा चुके थे, कुछ अभी इस काम में कच्चे थे। उन पर मार पड़ती थी। कभी-कभी उन्हें खाने को भी नहीं दिया जाता था। वह सनातन धर्म-वर्द्धिनी सभा इसी प्रकार अपना जीवन बिता रही थी।

उसने कहा—क्या तय किया भाई? देखा? आदमी के बच्चे को तरसता देख कर किसे दया नहीं आती? किसके सीने में दिल नहीं होता? सो भी हिन्दुओं के बच्चे! आप छोड़ दीजिये तो कल इन्हें मुसलमान कलमा पढ़ा लेंगे। आप ले जाइये न इनमें के एक-आध लड़का। आपका काम खूब करेगा।

गोविन्दसिंह ने कहा—बात यह है कि ये लड़के बड़े हैं। मैं तो एक छोटा-सा बच्चा ले जा सकता हूँ। मेरी पत्नी इतने बड़े लड़के को घर में

नहीं रख सकेगी। उसको तो उसी बच्चे की याद आया करती है। इनमें से कोई भी उसकी जगह नहीं ले सकेगा। गोविन्दसिंह के स्वर में एक विवशता थी। मनुष्य के जीवन को लेकर मोल-तोल करने में जो उसे अपना स्वार्थ देखना पड़ रहा था उससे वह स्वयं संकुचित हो रहा था। उसके हृदय में तो इच्छा हुई थी कि वह उन सब अनाथ बालकों को घर ले जाय। पर यह विचार नितांत निर्बल था। यह उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। उसे मैनेजर के प्रति हृदय में श्रद्धा हुई, जिसने अपना जीवन उन्हीं की सेवा में लगा दिया था। अपनी बात कह कर उसने मैनेजर की ओर देखा।

"अरे तो" मैनेजर ने कहा, "उनको पालना क्या आसान है? पहिले तो छोटे बच्चों का मिलना ही बहुत कठिन है, फिर उसमें कोई फायदा भी नहीं। एक काम हो सकता है। बच्चों को पालेगा कौन? सोचता हूँ कि एक विधवाश्रम खोल दूं। लेकिन विधवायें मिलना आसान होते हुए भी यह काम खतरे से खाली नहीं है। आप तो जानते ही हैं, जहाँ औरत रहती है, उसी द्वार पर चिक डालने की जरूरत पड़ती है। बच्चे पल सकते हैं पर जितना खर्च होगा, उतना उससे मिलेगा नहीं। भाई, इसमें नुकसान का डर है। मैं ऐसे खेल नहीं खेलता।" मैनेजर के होंठ फैल गये। वह चुप हो गया।

गोविन्दसिंह की आँखें फैल गईं। सारी श्रद्धा मिट चली। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से मैनेजर की ओर देखा। उसे लगा कि सामने एक रँगा हुआ स्यार बैठा था, जो ऊपर से कितना महान् और त्यागी दिखाई देता था।

"तो यह आपका रोजगार है?" गोविन्द ने हठात् पूछा।

उसके शब्दों का व्यंग मैनेजर के मुँह पर बजा, फिर उस पुरानी इमारत की ईंटों से टकराया और ऐसे खो गया जैसे उन ईंटों ने उसे जज्ब कर लिया हो।

"नहीं तो क्या कोई मुझे तनख्वाह देता है?" उसने पलट कर कहा, "मुझे किसी चीज की कमी थी? देश के लिये, धर्म के लिये ही मैंने अपनी जिन्दगी लगा दी है। आज इन अनाथों के सिर पर एक छत तो है।

गोविन्द सिंह का मन खट्टा हो गया। संसार कितना बुरा है, कितना कलुषित! वह सोचने लगा—ये बच्चे, जो आज भीख माँग-माँग कर पल रहे हैं, जिन्हें मैनेजर को पैसा लाकर देना पड़ता है, जिनके नाम पर चंदा लोग मुफ्त खाते हैं, ये बड़े होकर धर्म और देश के लिये भीख माँगने के सिवाय क्या कर सकेंगे?

मैनेजर समझ गया कि पंछी उड़ चुका है। अब उसे व्यर्थ बिठा कर बात करना समय नष्ट करना है। उसने कहा—तो कुछ निश्चय किया आपने?

"जी हाँ, कर चुका"! कहते हुए गोविन्द सिंह उठ खड़ा हुआ। उसने हाथ जोड़े।

मैनेजर अबकी बार उठ कर खड़ा नहीं हुआ। उसने बैठे-ही-बैठे उत्तर दिया "हम सदा आपकी सेवा में यहीं बैठे मिलेंगे। जब कभी आवश्यकता हो, तो अवश्य याद कर लें। जय हिंद!"

गोविंदसिंह का मन भीतर-ही-भीतर घुटने लगा। वह पुरानी इमारत जैसे एक भूत थी, जिससे वह पीछा छुड़ाना चाहता था। यह समस्त आदर सम्मान एक खेल था। इस विरक्ति में वह अपने मूल कारण को बिलकुल भूल गया।

जब वह बाहर आ गया तो इससे पहले कि वह होश सँभाल पाता, उसने देखा कि सड़क अब बिलकुल सुनसान पड़ी थी।

तभी सड़क पर हल्ला मचने लगा। जो दिखाई देता था, उसकी भौं खिंची हुई थी, नाक और होंठ फड़क रहे थे। दंगा हो गया था। सब अपने-अपने घरों की ओर भागे चले जा रहे थे।

वह एक ओर हट कर चलने लगा। सड़क के दोनों ओर कहीं-कहीं जो दूकानें थीं, वे बंद हो गई थीं। कभी-कभी उनमें से कोई सिर बाहर कर झाँकता था, और फिर द्वार बंद होने की आवाज आती।

पैर जल्दी-जल्दी उठ रहे थे, उसने एक व्यक्ति से पूछा, "भैया, इधर से किसकी बस्ती है?

सुनने वाले ने उसे घूर कर देखा और कहा, "हिन्दू हैं सब! जल्दी निकल जाओ!"

वह व्यक्ति किसी गली में घुस गया। गोविन्द ने देखा कि सामने से एक स्त्री एक बालक को गोद में लिये एक आदमी के साथ चली जा रही थी। वे मुसलमान थे। स्त्री बेपर्दा थी, और साड़ी पहने थी। वे लोग डरते-डरते चल रहे थे। पुरुष पुकार रहा था, "दुहाई है, हिन्दू भाइयो! हम बेकसूर हैं। हम तुम्हारी गाय हैं!"

कहीं कोई ठहाका लगा कर हँसा। फिर आवाजें गूँजने लगीं, "जय बजरंग बली की!"

"चिड़िया आ रही है!"

"जय बम भोले!"

गोविन्दसिंह स्वयं काँप रहा था। उसे आश्चर्य हुआ कि स्त्री कौन है। उसके साथ क्यों है।

उस सुनसान सड़क पर हठात् कुछ लोग बाहर आ गये। एक ने कहा—क्यों बे, इस औरत को कहाँ ले जा रहा है?

इससे पहले कि पुरुष कुछ कहे स्त्री ने कहा, "मैं मुसलमान हूँ। इसकी बीवी हूँ।"

तड़ाक से उसके गाल पर चाँटा पड़ा। तभी किसी ने पुरुष के छुरा भोंक दिया और वे भाग गये!

स्त्री उस मूर्छित और पृथ्वी पर गिरे पुरुष के पास बैठ कर रोने लगी। वह नीली कुर्ती पहने थी। उसके माथे पर किसी चोट का बड़ा निशान था। उसी समय वे लोग लौटे। स्त्री को उन्होंने जबर्दस्ती उठा लिया और उसी गली में खींच ले चले। उसके मुँह खोलते ही, एकने उस में कपड़ा ठूँस दिया। आवाज घुट गई।

गोविन्द सिंह डर कर काँपने लगा। उसे ऐसी आशा नहीं थी। किन्तु एक विक्षोभ उसे भी हुआ। कैसी औरत थी वह कि हिन्दू होकर भी मुसलमान के साथ जा रही थी और कहने में तनिक भी लज्जित न हुई!

पुरुष पृथ्वी पर कराह उठा। उस घायल की वह अंतिम हल्की आवाज जीवन के न जाने कितने तारों को झंकारने की सामर्थ्य रखती थी। निकट जाकर देखा। उसकी पसलियों से खून बह रहा था। किसी अनाड़ी नहीं, सधे हुए हाथ का भरपूर वार था जो पीछे से किया गया था। उसने भीतर की अँतड़ियों तक को फाड़ दिया था।

बच्चा छीना-झपटी में वहीं पड़ा रह गया था। उसके कहीं भी चोट नहीं आई थी। अधिक नहीं, शायद तीन महीने का ही था। वह चुपचाप पड़ा था। घायल ने गोविन्द की आँखों में झाँका। गोविन्द उस दृष्टि से सिहर उठा। वह उसकी आत्मा के अंधकार में मशालों की तरह उतर गई।

उसका मन नहीं हुआ कि वह हट जाये। घायल मुसलमान ने अपने बच्चे का हाथ ढूँढ़ा। वह पास ही था। उसने उसका हाथ छोड़ कर गोविन्द का हाथ पकड़ लिया, और अपने बच्चे के शरीर पर रख दिया। गोविन्द ने देखा वह पुरुष अब शिथिल हो चला। अंतिम बार उसके होठों पर मुस्कराहट आई। वह मर गया, और साथ ही उसका मुख विकृत हो गया। बालक बिलकुल उसी जैसा था। अब वह शून्य की ओर देख रहा था। गोरा-गोरा, मुलायम-मुलायम, अच्छा-अच्छा-सा। गोविन्द ने उस पर हाथ फेरा। निहायत गुद-गुदा लगा, जैसे गुलाब का फूल। और मन भीतर चिल्लाने लगा। उसने बालक को गोदी में उठा लिया। वह कुछ भी सोच नहीं पा रहा

था। सड़क सुनसान पड़ी थी। द्वार और खिड़कियाँ सब बंद थीं। गोविन्द सिंह ने इधर-उधर देखा, और उस बालक को छाती से चिपका कर वह भाग चला। उस समय वह सब-कुछ भूल चुका था। पाँव उड़ रहे थे। हृदय आशंकाओं से घिरा हुआ था। जीवन की अनन्य साधना जैसे सफल हो गई थी। अब उसे ध्यान आया कि वह एक बच्चे को ले आया है।

जब वह धर्मशाला पहुँचा, तब पत्नी घबराई हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। क्षण-क्षण पानी पीती थी और तुरन्त होंठ सूख जाते थे। पति को देखते ही वह हर्ष से विह्वल हो उठी। उसने गोविन्द सिंह के कंधे पकड़ कर कहा—मैं तो बे तरह डर गई थी। जाने क्या होने वाला है। भगवान ने रक्षा कर ली!

किवाड़ बंद करके गोविन्दसिंह ने अपनी कहानी सुनाई। पत्नी की आँखें फटी-फटी-सी रह गईं। उसने बालक को अपनी गोद में ले लिया और देखा दुधमुँहा आँख मींच कर सो रहा था। छोटी-छोटी मुट्ठियाँ बँधी हुई थीं, और गोल-गोल अंगों पर गोरापन अत्यन्त स्निग्ध दिखाई देता था।

गोविन्दसिंह ने कहानी में बच्चे का मुसलमान होना छिपा लिया था। वह जानता था कि पत्नी को यह सुन कर अरुचि हो जायेगी।

उसने कहा—अब क्या कहती है? भगवान ने आखिर सुन ही ली।

किन्तु पत्नी चिंतित थी। उसने कुछ देर तक बालक को घूरा, और फिर उसने पति को आँका। फिर धीरे से कहा—तुमने मुझसे कुछ छिपाया है?

गोविन्द अत्यंत संकुचित हुआ। उसने कहा—नहीं तो।

"अच्छा बताओ, वे हिन्दू बस्ती में क्यों मारे गये?"

पत्नी का प्रश्न ठोस था। उसे मजबूर होकर पूरी कहानी बतानी पड़ी।

"हाय राम!" पत्नी ने सुन कर कहा—मुझसे छिपाते थे? वे तो मुसलमान थे। जैसे तुम्हें धर्म का कुछ विचार ही नहीं रहा। वे इधर से ही तो गये थे। वे कहते थे कि पड़ोस की रियासत से बचने को औरत साड़ी पहन कर आई थी। वहाँ औरतों को उठा ले जाते हैं। बड़ी आफत है। सुनते हैं कि हिन्दू औरतों को मुसलमान उठा ले जाते हैं। यह कैसी लड़ाई है? पत्नी ने खीझ कर, मन-ही-मन डरते हुए कहा—बच्चों और औरतों से बदला लेना तो जंगलीपन है! बिलकुल हैं राक्षस सब! तो मार दिया उसे? राम-राम! और औरत को उठा लेगये! चिल्लाने तक न दिया!

वह सिहर उठी। फिर उसने बच्चे को देख कर कहा—यह भी तो उसी मुसलमान का बच्चा है। क्या यह हमसे पल सकेगा?

इस नितांत निर्बल प्रश्न का भी गोविन्द उत्तर नहीं दे सका। बहती हुई ममता खून की तरह जम गई थी। उसका स्पंदन नष्ट हो चुका था। बच्चा मुसलमान था। गोविन्द चाह कर भी इस बात को नहीं छिपा पाया। पत्नी के सामने झूठ पकड़ी जाने से वह विक्षुब्ध हो उठा। क्यों उसे स्वयं इतना अधर्म सूझा? यह बालक क्या कभी अच्छा बनेगा? क्या वह हिन्दू बन सकेगा? सोचते-सोचते उसे लगा जैसे सारी दुनिया घूम रही थी। उसके हृदय में उल्टे भाव उठने लगे। अब वह धीरे-धीरे बालक के प्रति कठोर हो चला। दोनों हाथ फैला कर उसने पत्नी से कहा—बच्चा इधर दे दे। ला मैं इसे फेंक आऊँ। यह मुझे पानी देगा? मलेच्छ! उसके होठों पर व्यंग का नीलापन काँप रहा था।

उसने आश्चर्य से सुना। पत्नी कह रही थी—बड़े निठुर हो, तभी तो! दुनिया में औरत न होती तो तुम लोग तो साँपिन की तरह अपने अंडे अपनी भूख मिटाने के लिये आप ही खा गये होते। मैं नहीं दूँगी इसे! भगवान ने इतने दिन में मेरी गोद भरी है! कितना सुन्दर है। इसमें क्या है जो मुसलमान है? बेचारा अबोध, नादान।...चलो, उठो,

नहा लो। इसे भी गंगाजल से नहला दो। शुद्ध हो जायगा। पत्नी के स्वर में आवेश था, ममता थी।

गोविन्द पराजित-सा देख रहा था। स्त्री उस बालक को दोनों हाथों पर झूला झुला रही थी। पति को देख कर वह हँस दी।

गोविन्द सिंह ने देखा——बच्चा बिना दाँत का, फले-फूले गाल, निष्कलंक, पवित्र, अजातशत्रु, निर्मल !

उसने पत्नी की ओर देखा। वह प्रसन्न थी। उसकी आँखों में स्नेह उमड़ रहा था। बच्चा रह-रह कर पिल्ले की तरह आँखें खोल देता और फिर रोशनी की चौंध से उन्हें मिचमिचा कर बंद कर लेता। इस समय वह मुस्करा रहा था।

मिल गया बच्चा !

नई जिन्दगी के लिए

हम नौ लड़कियाँ थी। मेरी उम्र उस समय करीब पन्द्रह साल की थी। मैं समझदार थी। अब जब मैं स्वयं तीन बच्चों की मां हो चुकी हूँ मेरा दृष्टिकोण बहुत बदल गया है, पर तब नई उमर थी। तब क्या मैं इतनी अकल रखती थी कि असलियत को समझ पाती। लेकिन तुम्हें उसी समय की बात सुनाती हूँ। पन्द्रह साल में ही मुझे काफी काम करना पड़ता था। मेरी मां को मुझसे बहुत अधिक स्नेह था।

मां के एक और प्रसव होने वाला था। उनके नौ बार लड़कियाँ हो चुकी थीं। और एक दूसरी बहिन में समय का इतना कम अन्तर होता था कि उन्हें संभालना काफी कठिन हो गया था। कौन जाने घर में अब भी वही चार साल पुरानी हालत चल रही हो।

मुहल्ले में किसी किसी के ही घर में नल था। हम सड़क से पानी भर लाया करती थीं। जब मैं नल पर पानी भरने लगी तो ठकुराइन ने पूछा—क्यों तेरी माँ के कुछ होने वाला है ?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार कर दिया। ठकुराइन भला चुप होती। पूछ बैठी। कितने दिन रहे।

मैंने दबी जबान से कहा जल्दी ही।

ठकुराइन मुस्कारा दी। मैं उससे डरती थी क्योंकि उसको लड़ने का अच्छा अभ्यास था और चिल्ला चिल्ला कर मुहल्ले को उठा लेती थी।

शायद सामने की खिड़की में बैठे हुए लड़के ने मेरी बात सुन ली क्योंकि वह हंस रहा था। मुझे बस लाज लगी हालांकि बात कोई नहीं हुई थी। मैंने झट से दरवाजा बन्द कर लिया और भीतर आ बैठी।

मां खाट पर पड़ी सो रही थी। बच्चियों में कुछ सो रही थीं, कुछ खेल रहीं थीं।

सुखदा मुझसे दो बरस छोटी थी। वह कहीं गई हुई थी। उसके कपड़े आँगन में ही पड़े हुए थे।

बाबू जी दफ्तर में नौकरी कर रहे थे। उनकी तनख्वाह अस्सी रुपये से ज्यादा की नहीं थी। मैंने उन्हें कभी प्रसन्न नहीं देखा। उनके माथे पर गहरी लकीरें पड़ी रहती थीं। मूँछें काली और लम्बी थीं। लोग कहते हैं मैं उन्हीं पर गई हूँ।

जब वे दफ्तर से लौटते तब भी वे थके-मांदे दिखाई देते, जब जाते तब भी उनमें फर्क दिखाई नहीं देता था। उस थकान के कारण उनके होठों पर एक कालापन छाया रहता और उनकी आंखों में एक टिमटिमाती-सी चमक दिखाई देती थी। दफ्तर से आते ही वह हमें एकदम डांटने लगते। मैं रोने लगती।

हृदय भीतर से घुमड़-घुमड़ कर आँखों की राह निकलने लगता, पर उन पर इस सबका कोई असर नहीं होता। छोटी-छोटी बच्चियाँ अपने छोटे-छोटे हाथों से मुझे सहला कर सांत्वना देती। उनका मूक आश्वासन बहुत सहायक होता। सच वे बहुत कठोर थे। मैं सोचती। हे भगवान्! दिन भर काम करती हूँ। सब घर संभालती हूँ पर ये नहीं ठीक रहते। मैं सखी-सहेलियों की ओर देखती, जिनके पिता उन्हें प्रेम करते थे। तब मुझे लगता कि मेरे पिता मनुष्य नहीं थे। शायद उनमें हृदय नहीं था।

कभी-कभी क्रोध बढ़ने पर मार-मार कर वे बेहोश कर देते और बच्चियों की कोमल देहों पर नीले-नीले दाग पड़ जाते। जब उनका उठा हुआ नेह चलता ही जाता और बच्चियों के आह से घर फटने लगता, घर में कुहराम मच जाता तब पड़ोस की बुढ़िया दादी का स्वर सुनाई देता—कन्या पर हाथ उठा रहा है चिरंजी ? यह तो कोई रीत नहीं है। अरे तेरे घर में जनम लिये है निठुर। निर्दई बस कर क्यों हत्या कर रहा है।

उस स्वर को सुन कर पिता जैसे चौंक उठते और लौट पड़ते। उनका सिर झुक जाता और वे सूनी आँखों से देखने लगते।

इधर मां की हालत पहले से भी खराब हो गई थी। वे बाबू जी की मनोव्यथा से पूर्णतया परिचित थीं। आजकल कभी-कभी उन्हें उल्टी हो जाती, कभी मन पितराने लगता। सिर का दर्द बढ़ गया था। हाथ-पाव पीले पड़ चले थे। और मैं जब उन्हें देखती सदैव उनकी आँखों में एक भय ही दिखाई दिया करता था।

बाबू जी दिन भर पूजा करते। दफ्तर में भी मुँह में हनुमान गुटका रखते जो बाबा सांवलदास ने उन्हें पुत्र होने के लिए दी थी। उन्होंने कहा था इस मन्त्र से कुछ भी बढ़ कर नहीं। अगर यह भी काम नहीं देता तो समझ ले तेरे भाग्य में आटे का लड़का भी नहीं लिखा है। पिता जी ने इसे देववाक्य समझ कर मन में धारण कर लिया था।

शाम को जब पीतल की खड़खड़ाहट सुनाई देती जब अंधेरे में मन्दिर का गंध भरा धूँआ गली में लोटने लगता और घर के बाहर के उस तिकोने चबूतरे पर छा जाता। एक छोटे-से निवाड़ के खटोले पर मैं बैठी अपनी आठवीं और नवीं बहिन को पुचकारती हुई खिलाया करती। कभी-कभी तो मुझे फुर्सत मिलती थी। बस उन्हें बुलाया नहीं कि एक छोटे-छोटे पैरों चलती हुई आती और दूसरी घुटनों बल सरकने लगती। मुझे दोनों

अत्यन्त प्रिय मालूम देतीं। बेचारी! उन्हें कोई स्नेह तक देने वाला न था।

नींद मुझे इतनी गहरी आती कि जरा-सा लेटते ही सारी सुधबुध खो जाती, फिर कोई कितनी ही आवाजें दे सहज में नहीं उठती थी। ठकुरानी मुझसे कहती थी क्यों पैदा हो गई हो कमबखतो! क्या बाबू जी को जिन्दा ही मार डालोगी?

जब मैं यह सुनती तनमन रुआ-सा होने लगता। इसमें हमारा क्या दोष था। पर जब मैं मां को देखती तो लगता वह सब झूठ था। मां की आँखों में दुख ही दुख था, पर जब मुझे देखतीं तब उनमें एक याचना होती। मैं उस दृष्टि की दयनीयता को देखकर मां की गोद में सिर रख कर उन्हें हंसाने लगती थी। मैं समझती तो थी, पर बात की असलियत को मुझे अभी तक तोलना नहीं आता था।

ठकुरानी कहती थी मारता है? अरे मारेगा नहीं। नौ-नौ बाब जिसे पालने पड़े उसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हो जायगी? एक नहीं रहोगी। उमर आने पर कम्बल से झाड़-झाड़ कर चल दोगी। बेचारे बूढ़े को कंगाल कर जाओगी और उसकी देख रेख करने वाला तक कोई न रहेगा। कहीं किसी ने उसका मुंह ही काला कर दिया तो बेचारे को डूबने तक की ठौर नहीं मिलेगी। राम राम! एक हो दो हो। पूरी फौज है। बाप रे, कन्यादान करते-करते ही बेचारे के घुटने टूट जायेंगे।

जब ठाकुरानी मुझसे ये बातें करती तो घर में आकर चुपचाप खाट पर पड़ जाती। तब क्या हमें मर जाना चाहिए?

सदा की भाँति इस बार भी बुआ के घर से पहले ही से कुर्त्ता, टोपी आगये जिन्हें देख कर मैं समझी निश्चय ही अब की बार मेरे एक भाई पैदा होगा। मैंने माँ को दिखाये। शाम को जब पिता जी घर आये तो मैंने खुशी-खुशी जाकर कहा—बाबू जी!

उन्होंने गरज कर कहा—क्या है ? सब सुना है ।

माँ से बाबू जी की एक दिन रात की बात मैंने सुन ली ।

बाबू जी कह रहे थे—अगर तुझ जैसी अभागिन मेरे घर न आती तो क्यों मेरी जिन्दगी हराम होती । अब वह बुढ़िया तो जिन्दा नहीं है, जिसने पहली दो बहुएँ मरने पर हाय हाय करके खा डाला था कि बेटा ! ब्याह कर । वर्ना घर का दीप बुझ जाता है । अब जल रहे हैं न चिराग । दिन में भी नहीं बुझते ।

उनके स्वर में क्रोध था । मां ने धीरे से कहा यह तो किसी के बस की बात नहीं । जो भगवान् देता है वह तो सब लेना ही पड़ता है । अगर ऐसा ही है तो दो चार का गला घोंट कर अपने को आजाद कर लो । उनकी जिन्दगी भी हराम करने से क्या मिल जायगा ?

बाबूजी कभी यहाँ दौड़ते, कभी वहाँ । वे हांफ रहे थे । उनका माल विकृति हो रहा था । मुझे उनको देख कर एक भय होने लगा । ऐसा लग रहा था कि आज वे किसी के चंग पर चढ़े हुए थे । क्या होने वाला था, मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया । तभी पिता जी का स्वर सुनाई दिया । उन्होंने पुकार कर कहा—दाई आ गई है ।

एक बूढ़ी ने भीतर प्रवेश किया मैं उसे जानती थी । वह हमारे घर अक्सर आती थी और हमारे परिवार की अच्छाइयों और बुराइयों से परिचित थी । बिना मेरी सहायता के ही उसने अपनी राह ढूँढ़ ली और भीतर के अँधेरे कमरे में चली गई जहाँ टिमटिमाता दीपक जल रहा था ।

मैं कभी भीतर जाती, कभी बाहर । मेरा दिमाग बिल्कुल बेकार-सा हो गया था । दाई ने मुझे देखा तो कहा—जा बेटी ! थोड़ी देर जाकर सो रह । तुझे इतनी मेहनत की क्या जरूरत है । जब जरूरत होगी तुझे जगा लूँगी ।

मैंने उसमें देवी का अंश देखा । वह मुझे अत्यन्त करुणामयी दिखाई

दी। डरती-डरती मैं अपनी कोठरी में आकर खाट पर पड़ी रही। थकान से शरीर चूर-चूर हो रहा था। पड़ते ही मुझे नींद आगई।

एकाएक घर में बड़े जोर का शोर हुआ। नींद में पहले तो मैं समझ नहीं सकी। पर जब कोई आकर मेरी खाट से टकराया और गिर पड़ा, हठात् मैं जाग उठी। एकदम आंख खोलने से पहले तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पर धीरे-धीरे मैंने पहचाना। वह सुखदा थी। एक-एक करके सब बच्चियाँ मेरे पास इकट्ठी हो गई थीं।

मैंने फटी हुई आंखों से देखा। जैसे अभी अभी उन पर हमला हुआ था। सुखदा फूट-फूट कर रो रही थी। बाकी बच्चियों में से कोई सिसक रही थीं। कोई डर से चुप हो गई थीं। मेरे सिर में दर्द होने लगा। बड़ी कठिनता से मैंने उनको धीरज बंधाया। जब वे चुप हुईं तब मैं उठ कर कमरे के बाहर आई। जो देखा उससे जैसे मुझ पर भयानक चोट हुई। हृदय टूक-टूक हो गया।

बाबू जी देहलीज पर सिर तोड़ रहे थे। मुझे लगा कि काटने पर भी अब मेरे शरीर से लहू नहीं निकलेगा। घर में एक भयानकता छा गई थी। मैंने माँ के कमरे की ओर पग उठाया। दाई ने मुझे हेरा और दया से मेरी ओर देखा। मैं कुछ भी नहीं समझी। मैंने पूछा—क्या हुआ?

सुना, मेरी एक और बहिन हुई थी।

दया के ठिकाने

उन दिनों मैं प्रेस में नौकर था। जब फुर्सत मिलती तो हम सब लोग बीड़ियां पीते। कुछ देर तक गप्पे होतीं जिनमें हम अपने भाग्य को रोते हालाँकि हमें कोई राह नहीं दिखाई देती। जमाने की रफ्तार ने इतना जरूर बता दिया था कि जो कुछ हो रहा है वही ठीक है, ऐसा कहना अपनी निर्बलता का निशान है।

मंसूर नया मशीन मैन था। उससे हरीकिशन अक्सर नाराज रहता। कारण केवल इतना था कि वह मुसलमान था और हरीकिशन को इस बात से एतराज था कि उससे कुछ खाया पिया नहीं जा सकता। लिहाजा वह बेकार है। हम सब हरीकिशन को पंडित जी कहा करते थे क्योंकि वह धुला पुँछा आदमी था। नीची धोती पहनता था। माथे पर चंदन लगाता था। सिर के बाल माँग निकाल कर कढे होने पर भी छोटे थे और उसे देखकर यह निश्चय हो जाता था कि आदमी है पुराने ढर्रे का जिसे हर नई चीज़ पर अविश्वास होना स्वभाविक है।

सामने लाला के बड़े बड़े गोदाम थे। और उधर पास ही जमुना बहती थी। लाला के गोदामों के आगे की मिट्टी में एक कालापन था जिसमें एक तरह की गदंगी बारहों महीने बनी रहती। ढेलों का तांता बधाँ रहता।

अपने साथ एक और आदमी था । उसे हम सब बादशाह कहते थे, यहाँ तक कि उसका असली नाम सिर्फ एक या दो आदमी ही जानते थे। उसे देखकर यह बताना भी मुश्किल था कि वह हिन्दू था या मुसलमान या इसाई। हाँ सिक्ख वह नहीं था।

हमारा मालिक कालेज से एक नया छूटा हुआ रंगरुट था। रंग गोरा। आँखें चुंदी थीं पर जब काला हरा चश्मा लगा लेता था तब समझता था कि उससे सुंदर आदमी शायद सारी दुनिया में नहीं है।

कल तक क्या, वह अभी तक दिल्लगी करता था विशषेकर उसे इस बात की बड़ी फिक्र थी कि जवानी में आदमी औरतों के बारे में जरूर कुछ न कुछ बात कर लिया करे, वर्ना उसकी राय में आदमी बुड्ढा था, यानी अधमुर्दा था। मुझे देख देख कर उसकी जवानी पर तरस आता था। जब वह सीना निकाल कर खड़ा होता था, पीठ खोखली हो जाती थी और कूल्हे बिखर जाते थे।

और हम सब लोग खुश थे। निहायत खुश इसलिये। कि वह अपने आपको हमारा दोस्त कहता था। कभी कभी जब वह सिगरेट सुलगाता तो हमें भी पिलाता और फिर धूँआ छोड़ कर दिलचस्प बातें करता।

लेकिन हमारा यह सुपना ज्यादा दिन नहीं चला। छापेखाने में कुछ राजनैतिक कार्यकर्ता आने लगे। वे अपने को मजदूरों का हितैषी कहते थे। उनमें से कुछ हमारे मालिक के साथ पढ़े थे। पहले वह छपाई कराते थे, । अब हमें मेम्बर बनाने लगे। बातें समझाने लगे। अब दिलों में फर्क बढ़ने लगा। हमने देखा कि हमारा मालिक अब कुछ सतर्क रहने लगा था जैसे हम सब उसके खिलाफ कोई साजिश कर रहे थे। जब हम लोग इकट्ठे बैठते तो वह गंभीर हो जाता, फिर किसी एक को आवाज देता, और हम सब धीरे-धीरे उठने लगते।

मैने देखा अब वह असल में मालिक था। वह 'कहता था कि मज-

दूों का राज्य होना आवश्यक है। वह तो होना ही है। उसे क्या कोई रोक सकता है? बस यूनियन मत बनाओ। तुम मुझे अपने से अलग क्यों समझते हो? जब क्रान्ति होगी तब मैं भी मुनाफा लेना छोड़ दूँगा। भाई आखिर तुम यह तो नहीं चाहते कि मुझे भूखा मार दो। अपनी सोचते हो मेरी भी तो कुछ सोचो।

तब हम सोचते ठीक है। जब क्रान्ति होगी तब बिचारा अपने आप छोड़ देगा। पर क्रान्ति होगी यह हमने अपने आप मान लिया था। क्रान्ति क्यों होगी, कौन करेगा, कहाँ होगी, जब हम यह सोचते तो फिर हमें अपना संगठन बनाने की अत्यंत आवश्यकता दिखाई देती।

तब मंसूर ने ही कहा—वे चाहते हैं कि हमें इसी तरह लूटा करें।

बादशाह ने मेरी ओर देख कर आँख मारी। मैं समझ गया। हरी किशन ने तड़प कर कहा—जिसमें खाये उसीमें छेद करे?

लेकिन वह मुखबिर था। हम सब उससे डरते थे। अगर बादशाह की बात सच थी तो मंसूर भी यही काम करता था ताकि निकाल न दिया जाये।

बादशाह को इन बातों से कोई मतलब नहीं था। वह मस्त रहता। मौके बेमौके मालिक से जो सिगरेट मिल जाती उसे ही फूंक लेता और ठहाके लगाता।

वह जाकर बाहर छज्जे पर बैठा था। मैं उसके समीप जाकर बैठ गया। उसने सिगरेट मेरी ओर बढ़ाई जिसे मैंने चिलम की तरह हाथ बाँध कर थाम लिया और देखने लगे। सामने ही लाला के छज्जे से दान हो रहा था। अनेक झाँसी की तरफ़ के भिखारी वहाँ भीड़ जमाये हुए थे। हफ्ते में एक बार इसी स्थान पर चने बँटा करते थे जहाँ अनेक अनेक भिखारी दिन रात पड़े रहते। उफ़! वे कितने गंदे थे।

हठात् बादशाह ने मुझे कुहनी मारी और मैंने देखा कुछ दूर एक लड़की खड़ी थी। बड़ी बड़ी आँखों से भीड़ देख देख कर सहम रही थी।

बादशाह ने एक बार बन कर खाँसा और फिर सिगरेट छीन कर दम मारा। जवान लड़की करीब आकर खड़ी हो गई। अभी तक वह जैसे मुर्दा थी। इस खाँसी को सुन कर जैसे वह जिन्दा हो गई। उसके होठों पर मुस्कराहट छागई और उसकी आँखें नाचने लगी जैसे उसका शरीर फड़क रहा था।

बादशाह उससे बातें करने लगा। मैं लाज से भीतर उठ आया। मेरी इस आदत के कारण बादशाह मुझे अनेक नाम दे कर पुकारता है जिनके सुनते ही मुझे क्रोध चढ़ आता है। पर मैं जिसे हया और शर्म कहता हूँ वह बादशाह के छू तक नहीं गया। उसे मेरी बातों का मखौल उड़ाने में थकते हुए कम से कम मैंने तो कभी नहीं देखा। औरत देख कर वह खुश हो जाता था। मालिक की तबियत पाई थी उसने।

अभी ज्यादा वक्त नहीं बीता था कि सामने से एक साइकिल आती दिखाई दी।

मैंने बादशाह का अंतिम वाक्य सुना—भीड़ से डरती हो तो मैं ले आऊँ तेरे लिये?

लड़की मुस्कारने लगी थी।

बाबू जी के आते ही सब फिर काम में लग गये। जिस 'केस' पर मैं खड़ा रहता हूँ वह बादशाह के पास ही है। वह अब भी दबी नज़रों से उसे घूर रहा था। लड़की इसे जानती थी।

लड़की अब दूकान के छज्जे पर बैठी अपने गंदे शरीर को खुजलाती रही और फिर अपने कपड़े हटा हटा कर जुँए बीनती रही। लड़की काफी उम्र की थी और इस तरह उसका सड़क पर उघाड़े उघाड़े बैठना निस्संदेह अच्छा लच्छन नहीं था। पर वह निश्चिंत थी जैसे उसे कोई परवाह नहीं थी। किंतु मुझे बहुत गंदा मालूम दिया।

उधर दान का हाथ पीछे खिंचने लगा था। चने खत्म हो चले थे पर भिखारियों की लाइन बढ़ती जा रही थी।

तभी आवाजों की कर्कशता कानों को भेदने लगी। अब आसीस और दुआ देने की जगह भिखारी चिल्लाने लगे क्योंकि दरवाज़े बंद होने लगे थे। लाला को भी शायद इतने आशीर्वाद की जरूरत नहीं थी, क्योंकि यदि वे सब सत्य होते तो लाला को बिरला सेठ बना देने के लिये काफी थे।

शाम हो गई थी। जब हम प्रेस से निकले धुँधलासा छागया था। अभी सड़क की बिजली की बत्तियाँ नहीं जली थीं। बड़ी बड़ी मोटरों से बचते हुए जब हम गली की तरफ मुड़े तो बादशाह चौंक उठा। उसको देख कर मैं आश्चर्य से डोल गया।

हठात् बादशाह ने मेरा हाथ पकड़ लिया और आगे की ओर कुछ इशारा करने लगा। मैंने देखा और जो देखा वह अत्यंत कुतूहल-जनक था।

विश्वास शायद नहीं किया जा सके लेकिन यह एक सत्य था। और कठोर सत्य था। बाँसों के दरवाजे के पीछे जहाँ किसी लाला का अहाता था वही भिखारिन लड़की चुपचाप बैठी थी। कोई उस पर ध्यान नहीं दे रहा था लेकिन वह शायद किसी के इंतजार में बैठी थी क्योंकि कभी-कभी सिर उठाकर देख लेती थी।

नदी से नहा कर उसी समय एक पंडित जी आये जिनको देख कर वह लड़की चुपचाप उठ कर चली आई और सड़क के किनारे-किनारे जाने लगी। पंडित ने क्षण भर उसे देखा और फिर आवाज दी—समझ गई न?

लड़की ने मुड़ कर सिर हिलाया और आगे बढ़ गई। बादशाह ने फिर वही नकली खाँसी खाँसकर उसका ध्यान अपनी ओर खींचा। उत्तर में वह केवल मुस्करा कर चली गई।

मेरा मन बहुत भारी हो गया। अब मैं घर लौटना चाहता था! इसलिये मैंने कहा—यार सड़क पर निकल चल।

'क्यों आगई याद घर की?' बादशाह ने उपेक्षा से कहा और मेरे साथ मुड़ चला।

सामने हड़ताल करने वाले मजदूरों की भीड़ जमा थी। मिल में कोई झगड़ा था। कई दिन से यह हड़ताल चल रही थी। मजदूरों में अटूट एका हो गया था। उनमें फूट डालने की चालें बेकार होगई थीं लिहाजा अब हड़ताल को बढ़ाया जा रहा था।

हम देखने लगे। झुंड के झुंड मजदूर खड़े थे। उनके मुँखों पर एक उद्विग्नता छा रही थी, जैसे वे कुछ करना चाहते थे, पर बेबस थे, लाचार थे। उनके घुटते हुए अरमानों का अपमान उनकी आँखों में क्रोध बन कर छलक रहा था। एक हलचल सी हो रही थी। तभी पुलिस आगई। बड़ी बड़ी गाड़ियों से बंदूक और डंडे लिये नौजवान कूदने लगे। उन्होंने मिल के फाटक पर घेरा डाल दिया। मेरा हृदय काँप उठा। बादशाह ने व्यंग से उन खाकी वर्दियों को देखा और मुस्कराया। इधर उधर के अनेक दर्शकों की वह व्यर्थ भीड़ अपने आप तितर बितर हो गई। मुझे लग रहा था। कोई गड़बड़ होने वाली थी। पर कुछ नहीं हुआ।

धीरे धीरे सब मजदूर बिखर गये। पुलिस खड़ी रह गई। तभी बादशाह को उसके गाँव का कोई आदमी मिल गया। वह दूध वाला था। मामा की लड़की के गौने से लेकर चंपा छिनाल तक का विशद वर्णन होने लगा। दोनों अत्यन्त मग्न थे। मुझे देर हो रही थी। अब सड़क की एक आद बत्ती भी जलने लगी थी जिसकी रोशनी अभी धुंधली और निस्पद दिखाई देती थी। दूध वाला दो आने की नई भजनावली की चर्चा कर रहा था जिसमें तर्ज राधेश्याम के गीतों के अलावा कुछ सिनेमा की लैय के भी गाने थे।

मैं क्या करता। ऊब चला। मैंने चेत कर कहा : 'मैं जा रहा हूँ बादशाह...'

बादशाह ने हँस कर कहा—'यार तुम भी आदमी हो। ढाई मन के लुगाई के गुलाम।'

'आगे पीछे कोई होता तो बत्तीसी चटख जाती।'

किंतु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने उसी तरह हँस कर कहा—तो तुम चलो भाई। मेरा घर ही क्या है? जहाँ छत वहाँ घर।

उस समय धुँधला और छा गया था, बल्कि अंधेरा बढ़ चुका था। मैं लौट चला। बड़ी सड़क पार करके फिर छोटी सड़क पर आना पड़ा और तब मैं घर की ओर राह बना सका।

चलते चलते एकदम मेरे पाँव रुक गये। मैंने देखा और पहचाना। गली में फुसफुसाहट सुन कर मैं चौंक उठा।

कोई कह रहा था—कल आयेगी?

उत्तर मिला—हाँ। अपना वादा भूलोगे तो नहीं? अक्सर लोग झूठ बोल जाते हैं।

'अरी कभी ऐसा हो सकै है?' उत्तर में कुछ स्नेह प्रदर्शन था।

देखा वही लड़की गोदाम में से निकल रही थी। उसके निकलते ही पीछे से द्वार बन्द हो गया। लड़की मुझे देख कर सहम सी गई। निश्चय ही उस समय मेरी आँखों में कुछ ऐसा था जिसे देख कर वह मुस्कराई।

मुझे कुछ कुछ जिज्ञासा हुई। मैंने पूछा—यहाँ क्यों आई थी लाला के गोदाम में?

'यों ही तुम्हें मतलब!'

उसके स्वर में एक निर्भयता थी। मैं वहीं खड़ा रह गया किंतु लड़की बढ़ चली। जब वह गली के मोड़ पर पहुँची मुझे एक उत्सुकता ने ग्रस लिया। मन ही मन मैंने सोचा। गोदाम में तो इस वक्त पंडित रहता है।

और लड़की अब ओझल हो चली थी, दूर हो चली थी। मैं अब पीछे हो लिया। लड़की ने एक भी बार मुड़ कर नहीं देखा। उसका सिर झुका हुआ था, जैसे वह किसी गंभीर चिंता में मग्न थी।

मैं नहीं जानता था कि क्यों जा रहा हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, पर वह स्त्री मुझे खींचे लिये जा रही थी।

उस गंदी बस्ती में जाकर देखा वह लड़की अत्यंत परिचित पथों पर बढ़ने लगी। हमारे छोटे छोटे घरों में भी इतनी गंदगी नहीं होती जितनी उस जगह थी। लड़की एक झोपड़ी में घुस गई। मैं कुछ देर खड़ा रहा, फिर दरवाजे की संधि में से झांकने लगा। एक मद्धिम दीपक जल रहा था। खाट पर एक आदमी बैठा था। उसके निकट ही लड़की भी बैठ गई।

एक अधेड़ स्त्री कह रही थी—वहाँ बड़ी भीड़ रहती है। मैं तो घुस गई, पर इसे तो कुछ नहीं मिला।

लड़की मुस्करा दी। अधेड़ स्त्री ने कहा—अच्छा? फिर मिला था?

'तभी तो देर लग गई!' फिर मुड़ कर पुरुष से कहा—भैया! पुरुष ने देखा।

वह कहने लगी—मुझे चार कंबल देने की कही है।

'किसने?' अधेड़ स्त्री ने टोक कर पूछा।

'पंडित जी ने।'

'कब तक मिल जायेंगे?' उनसे 'क्यों' नहीं पूछा।

लड़की ने उत्तर नहीं दिया—शायद उसे स्वयं निश्चय न था।

'एक आज ही ले आती, अधेड़ स्त्री ने फिर कहा।

'कहा है तो देंगे नहीं?' लड़की ने सिर उठा कर पूछा।

'अभी तू नादान है!' अधेड़ स्त्री ने मुस्करा कर कहा—इन्हें तू अभी नहीं समझती। उसने कुछ ऐसा मुँह बनाया जैसे जिसका वह वर्णन कर रही

थी वह कोई अत्यन्त घृणित समाज था, जिस पर विश्वास करना अत्यन्त मूर्खता थी। उसने फिर पूछा—न देगा तो क्या कर लेगी ?

उसका मजदूर भाई चुपचाप देख रहा था। लड़की ने हठात् कहा—बाजार में हाथ पकड़ लूँगी।

'जूते लगवा देगा।' अधेड़ स्त्री ने सिर हिला कर कहा! जवान लड़की का सिर नीचा होगया। उसने अधीर होकर पूछा—तुम्हारी हड़ताल का क्या हुआ ?

भाई ने निराशा से सिर हिलाया जैसे कुछ नहीं, और शायद कुछ होगा भी नहीं। लड़की कुछ सोचने लगी। अधेड़ स्त्री बड़बड़ाने लगी थी।

मैं लौट पड़ा।

दूसरे दिन मैंने देखा मालिक कल से भी अधिक डाँट रहा था, क्योंकि मिल पर गोली चली थी। लेकिन उस भिखारिन लड़की को दोबार चने मिल रहे थे...लाला की ओर से नहीं, लाला के मुनीम और पंडित की ओर से......आज दान नहीं था......दया थी...

आ क र्ष ण

—१—

आज पन्द्रह बरस बाद उसको अपने सामने देखकर वकील साहब चौंक उठे।

उसको कस्बे में प्रायः सभी पहचानते। उसका नाम था सुखदास और वह अधेड़प्राय होकर भी अपने आधुनिक विचारों के कारण समाज में अपना यह महत्त्व प्रदर्शित करने में अनजाने ही समर्थ हो गया था। सुखदास का दोहरा बदन, काला सा रंग और मुँह, गाल, होंठ सभी कुछ चौड़े चौड़े से थे। मूंछे, नाक तथा कान कुछ कुछ चपटे-चपटे से लगते थे। पर छाती से नीचे उतरते ही गोलाइयाँ शुरू हो जातीं, जो उसके फटे तलुवों तक भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न आकृतियाँ ग्रहण करते हुए देखने वाले के दिमाग में यह विचार छोड़ जातीं कि यह व्यक्ति अपनी उम्र के लिए अभी काफी मजबूत है, जब कि सचाई कुछ और ही थी। वह अभी चालीस के करीब ही होगा, पर सिर पर जो आगे की तरफ के बाल उड़ गये थे वे न केवल उसके सिर की ऊलजलूल पैदावार को पीछे फेंक गये थे, वरन् उसकी उम्र को भी पीछे ठेल चले थे।

बारह पन्द्रह हजार-आदमियों का कस्बा, जिसकी सीमा में ही खेत शुरू हो जाते थे और गाँवपन उसमें छाया हुआ था, वहाँ सुखदास की प्रसिद्धि वास्तव में कोई बड़ी बात नहीं थी। कस्बे का हलवाई भी उतना ही ज्ञात

था जितने सुखदास, लेकिन सुखदास की याद में जो लौहभार था वह और किसी के साथ न था।

कुछ बीघे जमीन, अपना रहने का घर तथा दो अन्य मकान—अपनी इस संपत्ति के कारण सुखदास अपने को सदैव संसार में रहने योग्य पाता। पर उसी ने उसका संतुलन जमाने की बहती हवा में डगमगा दिया। कुछ की राय में वह फिसल कर गिरा, औरों ने कहा कि वह संभलकर चला, जब कि हुआ सिर्फ यह कि वह अपना व्याह कर लाया।

व्याह संसार में एक बहुत बड़ी बात नहीं है, मगर उसका विवाह था। चंपा एक बाईस बरस की विधवा थी, गोरी थी, सुन्दर थी, बड़ी-बड़ी आंखें थीं, कुछ कुछ बदनाम भी थी, और गरीब होकर भी गरीबों की तरह नहीं रहती थी। जाने कैसे, बिना मेहनत मजदूरी के उसे यों ही दो साल बीत गये थे। उसका पहला पति श्यामाचरन था जो मुँह से झाग पटक कर मरा था। उस मृत्यु के प्रति लगभग पूरे कस्बे में ही एक रहस्य की भावना व्याप्त हो गई थी। नये-नये दरोगा जी ने तफतीश के सिलसिले में उस घर के कुछ दिन चक्कर भी लगाये। फिर भी कुछ ज्ञात नहीं हुआ। कुछ लोगों ने इसकी भी दबी जबान से चर्चा की पर मामला दब गया, क्योंकि दरोगा जी का तबादला हो गया।

उस समय कस्बे की घिस-घिस जिन्दगी पर एक हलचल हुई जैसे घोड़ों के टापों की आवाज से वह नीरवता गूंज उठी। चंपा ने सुखदास को देखा, फिर उसकी आँखों में चमक, लाज, वेदना और आत्म-समर्पण सप्ताह के एक-एक दिन आकर घूम गये। इधर सुखदास पर उसका अनजाना प्रभाव हुआ। सौतेला भाई बकता रह गया, उसकी 'गिरस्ती' अर्थात् स्त्री देखती रह गई, पर चंपा सुखदास के घर आर्य्यसमाजी विवाह के द्वार से आ घुसी। उसने उन्हीं कजरारी आँखों से देख-कर 'भाभी' को, (हालांकि लालदास की पत्नी जानकी उससे रिश्ते में छोटी थी) प्रणाम

किया। विधवा फिर सुहागिन हो गई, हाथों में चूड़ियाँ पड़ गई, जैसे खेत की मेंढ़ बांध दी गई हो। जानकी को लगा जैसे घर के टूटे कमरे में कोई जहरीला सांप आ घुसा, क्योंकि वह सुखदास को एक टूटा कमरा ही समझती थी।

घर अलग हो गये, यह शादी का पहला फायदा हुआ। स्त्री को पुरुष से अधिक जगह चाहिए, अधिक विभाजन की रेखायें चाहिए। दूसरा फायदा बोलचाल बंद होने का हुआ। सौतेले भाइयों का पड़ोसियों की तरह रहना हुआ। इस सबके लिए सुखदास बुरा कहलाया, क्योंकि बड़ी बड़ी आँखों की पनियाली दृष्टि वाली उसकी स्त्री तो परदेसिनी थी ही और कस्बा हँसा कि बुढ़ऊ पर रंग छाया है।

इधर सुखदास के बाल एक एक करके दिमाग के भीतर चलती आंधियों से उखड़ कर बाहर गिर रहे थे, उधर चंपा के यौवन की रात अब गहरी होती जा रही थी और फूलों में दुगनी महक भर रही थी। कटीली झाड़ी पर उगा फूल हवा के झोंकों में जब झूमता है तब हवा इस रुख से बहती है कि फल कांटों से छिदे नहीं। सुखदास समाज सुधार के गर्व में भूला हुआ आदमी था, उसे इस हवा की कुछ भी खबर न थी जिसका ठोस रूप लालदास की 'घर से' जानकी ने लेकर अपने पंख पसार दिये थे।

शाम को जब सुखदास अपने खेतों की देखरेख से लौटा तब उसने चंपा को घूर कर देखा जो रोटी बना कर चारपाई पर थकी मांदी सी लेटी थी। सुखदास कुछ भयानक बातें सुनकर आया था। किन्तु चंपा बेफिक्र थी। उसने धीरे से कहा—किसी वैद्य से दवा ला देना।

सुखदास ने सुना। जीवन के एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ था। वह अपनी शंकाएँ भूल गया। चंपा की बड़ी बड़ी कजरारी आँखें देखकर उसे अच्छा लगा। उसने मन ही मन कहा—भगवान! बच्च इसी पर जाये, कहीं मुझ पर न जाये! गोरा गोरा कितना सुन्दर होगा!

सौंदर्य की यह भूख व्यक्ति की पिपासा बनकर सिमटी और जब फैली तो शायद भगवान ने उसकी फरियाद सुन ली। बच्चा हुआ और हूबहू माँ पर गया। सुखदास प्रसन्न हो गया, किन्तु लालदास की बहू ने चौंक कर देखा और उसकी चुंदी आँखों में पपीते के बीज सी पुतलियां स्थिर हो गईं। बदनामी का एक नया मौका मिल गया था। उसने घर जाकर अपने 'ऐ जी' लालदास से फड़कते हुए कहा—सुना तुमने ?

लालदास सौतेले भाई से नाराज थे। पहले उनका ख्याल था कि सब जायदाद आखिर में उनके लड़के को मिलेगी, लेकिन अब वह आशा मिट्टी में मिल गई।

उन्होंनें कहा—सच ? और बुलाया तक नहीं ?

"तुम न जाना" जानकी ने कहा—मैं देख आई हूँ। 'भाभी' पर ही गया है। भाभी शब्द का प्रयोग वह व्यंग से करती, क्योंकि वह उम्र में बड़ी थी। रिश्ते का छोटापन उसने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह सुखदास का विवाह कायदे का नहीं मानती थी।

लालदास खाट पर लेट गये। तब जानकी ने उन्हें एक कड़वी दवा भी पिला दी।—कुर्ता टोपी न दोगे ? तुम्हारी भाभी ने घर में उजाला किया है। बूढ़े जेठ के घर बरखा हुई है !

लालदास ने व्यंग समझा और फिर उसके पीछे की निहित गंदगी समझी। क्या सचमुच ऐसा हो सकता है ? किन्तु वह जायदाद के पीछे इन हथकंडों पर उतरने के विरुद्ध था। उसने बिगड़कर कहा—तुझे तो सदा ऐसी ही सूझती है। तेरा दिमाग बिगड़ गया है।

जानकी पति पर क्रुद्ध रहती। कितनी बड़ी सामाजिक स्वीकृति की पृष्ठभूमि थी उसके विवाह में, गृहस्थी में ! लेकिन उसे लालदास ने आज तक वह स्नेह, आदर, श्रद्धा, विश्वास तथा आत्मीयता नहीं दी, जो

सुखदास अपनी चंपा को देता है। वह चिढ़कर कह उठी—तो क्या कह दिया है मैंने ? तुम्हें तो खुश होना चाहिए। भैया का नाम चल गया !

वह व्यंग से मुस्कराई। होठों पर फैला हुआ वह विष पहले लालदास के दिमाग में उतरा, फिर बातों के रूप में अपने झाग उसके मुँह से उगल कर कान रूपी लहरों पर बहा और बदनामी की छाया डोल गई यहाँ तक कि सुखदास व्याकुल हो गया।

जानकी चंपा के घर पर आँख रखने लगी। आँख गड़ाकर देखने पर जहां कुछ नहीं होता वहाँ भी कुछ न कुछ दिखाई देने लगता है। फिर वहाँ जो था, वह क्यों न दिखाई देता। चंपा ने भी देखा। जानकी तुली बैठी थी कि शाम को आज आसमान फाड़ देगी, जरा सुखदास और लालदास आयें तो सही ! आज उसने चंपा का यार देखा है !

लेकिन जब लालदास आया और सुनकर सुखदास को सुनाने चला, तो उसने देखा सुखदास पागल सा घर में पुकार रहा है और चंपा अपने बच्चे को लिए उड़ गई है। जानकी आसमान फाड़ने चली थी, पर कजरारी आँखों वाली चंपा ऊपर से थेगली लगाकर चली गई थी।

लालदास ने क्रोध से फूत्कार की—छिनाल ! उसके लिए तुमने इतना किया, पर उसने एक भी अहसान नहीं माना........

सुखदास खाट पर बैठकर फूट फूट कर रो उठा। न जाने कितनी ममता; स्नेह, भाई के प्रति की गई उपेक्षा का स्मरण और जग हंसाई, अपमान, पुरुष की सबसे बड़ी लांछना उसको गर्म शलाकों से दागने लगीं। वह विह्वल हो कर पुकार उठा—लाला !

लालदास ने आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया। जानकी की आँखों में जेठ के प्रति आदर उमड़ा।

वह बोली—अगर ऐसे ही रह लेतीं, तो बड़े बूढ़ों ने सोच ही कर नेम बनाये थे, ब्याह बरात की क्या जरूरत थी !

यही बात कस्बे में फैल गई। तीसरे ही दिन सुखदास ने आत्म समर्पण किया और अपने को उसने संसार से दूर करना चाहा। सारी जायदाद भतीजे के नाम लिखा दी, संन्यास लेना चाहा, किन्तु उस समय लालदास बीच में आ गया।

जानकी ने रो-रोकर कहा—वह चली गई, पर हम तो नहीं मर गये ! ऐसी कौन थी वह ? भाग था उसका, कुछ दिन का कर्जा चुकवाने आई थी। कौन जाने पुरबिले जन्म में क्या क्या किया था !

आखिर घर के लोग निकट आये। कैसे भी आपस में लड़े, पर अब कस्बा एक मुँह होकर हँस रहा है। सुखदास अपनी किस्मत को रोता। घर ठुकरा दिया, समाज की लांछना सही। किसलिए ? समाज का सुधार करने ! पर बात बुजुर्गों की साबित हुई !

लालदास कहते—औरत की जात का क्या भरोसा ? आज रही कल नहीं रही !

जानकी तर्क करती—सब एक सी नहीं होतीं। घर गिरस्ती की बात और है, बाजार अपना कभी नहीं होता।

ममता और विक्षोभ के बीच में प्रताड़ित सुखदास आत्मा के अचेतन में वासना की अतृप्त कचोट से भीतर ही भीतर हुँकार उठता, जिसे पौरुष का अपमान खंड खंड कर देता। वह सचमुच अपने को शीशे में देखकर खीझ उठता। वह बूढ़ा था—चालीस बरस का और वह सिर्फ बाइस बरस की अल्हड़ छोकरी थी !

जिस दिमाग में समाज सुधार का कीड़ा घुस चुका था वह ठोकर खाकर रूढ़ियों से शीघ्र ही पराजित नहीं हुआ। क्या उसने सुधार के नाम पर स्वयं एक गलत काम नहीं किया था ? वह खुद कहता था कि औरत जान-

वर नहीं है, उसे रोटी पानी के अतिरिक्त कुछ और भी चाहिए। किन्तु आज वही कुछ और कितना भयानक था जिसके कारण उसे कहीं मुँह छिपाने को भी ठौर न था!

–२–

वकील साहब ने आश्चर्य से पूछा—कहो न सुखदास? अब तो बहुत दिन बाद आये?

सुखदास एक पास रखी रंग उड़ी कुर्सी खींच कर बैठ गया। वह अब बिल्कुल गंजा था। देह में और भारी हो गया था। उम्र ने उसे और गहरा कर दिया था। क्षण भर वह चुपचाप कुछ सोचता रहा, फिर निर्भय बनने के रूप में बोल उठा—क्या बताऊँ, मेरा दिमाग ही खराब हो गया था।

दिमाग खराब होने के कारण को वकील साहब आज से पन्द्रह बरस पहले ही जान गये थे जब उन्होंने उसके भतीजे के नाम उसकी जायदाद की रजिस्ट्री की थी। सुखदास से सहानुभूति जताते हुए बोले—अजी छोड़ो भी उसे। गई गुजरी बात हुई, वह औरत ही खराब थी......।

सुखदास ने अविश्वास से सिर हिलाकर कहा—औरत तो खराब नहीं थी। वह तो भाई और उसकी बहू की चाल थी। अब मैं ताड़ गया हूँ।

वकील साहब चौंक उठे। उन्होंने कहा—क्या मतलब?

"जी हाँ" निडर होकर सुखदास कहता रहा—क्या बताऊँ! मुझे तो बिल्कुल उल्लू बना दिया।

"आखिर?" वकील साहब ने पूछा—आपको यह मालूम कैसे हुआ?

"आ गई है न वह!" सुखदास ने फड़क कर कहा!

"कौन?" वकील साहब ने चश्मे से घूरा।

"लाला की भाभी।" उसने आराम से उत्तर दिया। जैसे कुछ नहीं हुआ।

वकील साहब आश्चर्य में डूब गये।

"लौट आई है," सुखदास कहता रहा—मैं सचमुच चाल में आ गया था, वकील साहब! अब एक ही गुन चाहता हूँ। मेरी जायदाद, जो मैंने पागलपन में भतीजे के नाम लिख दी थी, वह मेरे लड़के के नाम करा दीजिए। मैं नहीं देख सकता कि मेरा लड़का दर दर की भीख मांगे और दूसरों की औलाद गुलछर्रे उड़ाये......उसके शब्दों में असूया थी। वह कहता गया—जिन्दगी में मैंने अपनी बहू पर भरोसा न करके सबसे बड़ा नुकसान उठाया है, इन्होंने मुझे पागल बना दिया...

वकील साहब के मन में आया कि वह पूछें कि वह पन्द्रह बरस कहाँ रही? क्या उस स्त्री में इतनी शक्ति है जो बूढ़े को चाहे जैसे नचा सकती है? किन्तु उन्हें अपनी फीस से था। मतलब अगर वे इसे छोड़ देते हैं तो यह किसी दूसरे वकील के पास चला जायगा, जो भाइयों को लड़ाकर खूब छीछालेदर करायेगा।

सुखदास कह रहा था—स्वार्थ के लिए इन्होंने मेरी भी भरी गिरस्ती को उजाड़ दिया, मैं भी कितना बेवकूफ था...।

एक बात थी, एक ही आवाज थी। वही रट,—वही शिकवे, वही पागलपन।...वह कह रहा था और वकील साहब मुँह बाए सुन रहे थे।

धर्म संकट

एक छोटी सी जगह के पीछे दिन रात झगड़ा बना रहता । सामने एक बड़ा शीशा लगा था जिसमें शकल जब हिलती हुई दिखाई देती तो देखने वाले को अपनी सूरत के बारे में जितने विचार होते वे सब मुगालते में बदलते हुए नजर आते ।

उसे वे लोग दूकान कहते, इसलिए एक बड़ा लाल पत्थर बिछा रहता जिस पर पान—लगे हुए बीड़े—रखे रहते और लकड़ी के खानों में खाली सिगरेट के पाकेट ऐसे जमे रहते जैसे वे सब भरे हुए थे । इनके अतिरिक्त कुछ बीड़ियों के बंडल झलका करते ।

एक ज़माना था जब बड़ी दूकान बाजार में ठाठ से खुलती थी । उसके रहते जब मुहल्ले में भगत का रतजगा हुआ हरदेव सदा चाँदी की प्राड के निकट बैठा करता ।

पर अब सब कहाँ था ? वह एक सुपना था जो अचानक ही मिला था और अचानक ही खो गया । शराब के नशे ने जब अपने जहरीले पंजों का फैलाव समेट लिया और दिमाग को खाने लगा, तब आँख खुली । देखा, सब लुट चुका था ।

बाप की दुनियाँ संकुचित थी । वह अब करीब पचास साल का था । दो एक शायद ऊपर ही होगा । उसका मुख गंभीर था जिसे देख कर

भिखारी महज ही उससे भीख माँगने की हिम्मत नहीं कर सकता था। वह अधिकांश चुप रहता। उसके गालों पर एक खुरदुरापन था और सिर के छोटे-छोटे बाल उसकी गंभीरता को अधिक बढ़ाते। कभी-कभी जब वह हँसता तो उसमें भी एक बड़प्पन होता। धोती और कुर्ता पहन कर जब वह खड़ा होता उसके कंधे तनिक आगे को झुके हुए दिखाई देते। जब दूकान पर कोई चीज नहीं होती और गाहक उसकी माँग करता वह गाहक की ओर देखे बिना ऐसे मना करता कि गाहक फिर दूसरी बार उसके यहाँ कभी नहीं आता।

और लड़का दूसरी तबियत का आदमी था—हँसमुख, मस्त सा दिखने वाला। शकल में बेटा बाप से मिलता-जुलता था। जैसे पहले मोम में बाप का साँचा लेकर फिर उसमें ढाल दिया गया हो। उसके दाँत जरूर कुछ बड़े थे। सुती हुई देह थी। और जब वह शाम को थका-माँदा भाँग पीकर बैठता और जोर-जोर से आवाजें लगाता हुआ हँसता, तब उसकी अध-खुली नशीली आँखों में जिन्दगी की रोशनी चमकती हुई दिखाई देती, उस समय वह बहुत प्यारा दिखाई देता। उसके कपड़े अजीब होते। नंगे बदन से लेकर कुर्ता, फितूरी, मिर्जई, वास्कट, कोट, सब ही उसके ऊपर फबते दिखाई देते और ऐसे अदलते-बदलते रहते जैसे जमीन पर अलग-अलग ऋतु में अलग-अलग फल निकलते हैं।

लेकिन बेबात की बात-बात में दोनों में झड़प हो जाती और वे दोनों नाखुश होकर एक दूसरे को गालियां देते।

इन दोनों के बीच का प्राणी एक स्त्री थी। वह एक की पत्नी थी, दूसरे की माँ। अर्थात् हरदेव की स्त्री और भगवानदास की माता। वह दोनों के झगड़े में मध्यस्त बनती। पिता और पुत्र में वही भेद था जो शराब और भाँग में होता है। शराब में दिमाग घूमता है, उसका नशा शोर कर-वाता है, दंगा मचवाता है, किन्तु भंग में तरंग होता है, दिमाग ऊपर उठता है और आदमी बोदा हो जाता है।

अक्सर वह इन दोनों के झगड़ों से तंग आकर कहती—अब नहीं रहूँगी मैं यहाँ! मैं तो अपनी बेटी को लेकर अपने भैया के घर चली जाऊँगी। एक दिन की हो तो कोई बात है। यह तो रोज-रोज की बजती ढोल है। कोई कहाँ तक सँभाले। जब हिये में समुवाई नहीं रही तब क्या फ़ायदा।

किंतु कोई परिणाम नहीं निकलता। हरदेव बड़बड़ाता रहा, वह कभी उसे रोकती, कभी उसके अदब में चुप रहती और भगवानदास बगावत करता रहा, उसकी आवाज उठती रही। न उसने अपनी बहू की सुनी, न बहिन की, न माँ ही बेटी को लेकर भैया के घर चली।

शाम होते ही दूकान पर दोनों में तनातनी शुरू हो जाती। दोनों अपने को ज्यादा परिश्रमी साबित करते। एक दूसरे पर अपनी थकान का प्रदर्शन करते। शिकवा होता कि एक दूसरे की यही कोशिश है कि बस दूसरा कोल्हू में बैल की तरह जुता करे, टूटा करे।

रात होते-होते दोनों आपस में जोर-जोर से बातें करने लगते। हरदेव शीघ्र ही गर्म हो उठता। उसे पड़ोस के मुंशीजी जिस दिन देशी अद्धा पिला देते, उस दिन वह शहंशाह हो जाता। बेटा भांग से आगे न बढ़ता। दोनों एक दूसरे को नशेबाज समझते।

और जब भगवानदास क्रुद्ध हो उठा उसने चिल्ला कर एक दिन सुना-सुना कर कहा: शराब पिलाने को मेरे पास पैसे नहीं हैं; न ही कोई कमा-कमा के रख गया है मेरे पास।

माँ ने सुना और पूछा, "वह तेरा कौन है!"

भगवानदास चुप रहा। वह जानता है पर आज उसकी आत्मा स्वीकार नहीं करना चाहती। मां उसकी द्विविधा को समझ गई। उसने स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ रख कर कहा,—क्यों ऐसे कुबोल कहता है बेटा! घर

की शांति आपस में मिल कर रहने में मिलती है। यों नहीं होता कुछ। आखिर है तो तेरा बाप ही न!"

मां का तर्क कुछ ठोस था। आवेश पर धैर्य ने विजय पा ली थी। और तब भगवानदास ने पराजित स्वर में कहा,—"होगा कोई। जब अपने की चिंता ही नहीं की तो कौन किसका है अम्मा?"

ऐसे नहीं कहते बेटा। जो भाग है मिल बाँट कर खालो। झगड़ने से सब नीचे ही फैलता है...।'

'पड़ोसी को कौन रखवाली करता है अम्मा,' भगवानदास अचानक ही कह उठा। उसके स्वर में कोई आत्मीयता नहीं थी। मानों भगवानदास बहुत आगे बढ़ आया था।

मां को दुःख हुआ। वह यह न सुनना चाहती थी। जैसे आज उसका हृदय दो टूक हो जायेगा। यह वह क्या सुन रही है! घर की पुरानी दीवार आज उसके देखते-देखते चटक रही है। मन में संसा का विस सबसे बुरा है।

रात को वह अकेली पड़ी-पड़ी सोचती रही।

एक ओर मरद है, दूसरी तरफ बेटा। वह किधर जाये! कब तक यह तनातनी बनी रहेगी! एक दिन तो लेज को टूटना ही पड़ेगा। अब भगवान दास और उसका बाप दोनों उसकी आँखों के सामने आने लगे। एक बालक, जिसे वह दूध पिला रही है, वह बच्चा जिस पर उसका पूरा अधिकार था, जिसे उसने आदमी बनाया है। एक वह सदैव ही पुरुष था, सशक्त था, उसे लगा हरदेव के सामने भगवानदास एक बच्चा था, उसके सामने वह बहुत कमजोर था।

उस समय दूकान में भगवानदास जाग कर उठ बैठा। उसने एक अंगड़ाई ली और दो बार अपनी झुंझलाहट मिटाने को बमभोले का नारा लगाया जो नीम के पत्तों में जाकर लटका फिर उड़ गया।

गाँव वाले हुशियार हो गये हैं। शहर के लोगों को देखकर हँसते हैं। पाँच के माल की कीमत पच्चीस रुपये बताते हैं। सीधा देखा तो साफ बना दिया। ककड़ी लेने तभी भगवानदास अलस्सुबह, बल्कि दो बजे रात को रात ही कहना चाहिये, सिर पर खाली डलिया रख कर चल देता है। जब लौटता है तब आसमान में सफेदी फैलने लगती है। उसके शोर से दूकान में एक जगार सी आ गई।

हरदेव ने देखा। उस वक्त उसका सिर भारी था। अभी नशा उतरा नहीं था। खुमारी का कसैलापन उसके मन को अब एक बुरा-बुरा सा खट्टापन दे रहा था। भगवानदास चला गया। क्या सो पाया! कुछ नहीं। अब दिन भर फल ककड़ी बेचेगा., लू में, धूल में पर हरदेव को इसकी एक भी बात याद नहीं आई। वह सोच रहा था, दिन भर बाद जरा पलक लगी थी। उजड्ड ने हाहा हूहू करके जगा दिया। आया बड़ा भगत का......

जब हरदेव उठा तो उसके पाँव टूट रहे थे। धूप चढ़ने लगी थी। उसने दूकान खोल दी और अपने नित्यकर्म में लग गया। भगवानदास दस बजे के करीब डलिया लेकर घर आया, इसी मुहल्ले में ककड़ी बेच रहा था, सो डलिया धर कर रोटी खाने बैठ गया। माँ खिलाती रही।

हरदेव धूप की कड़ी गर्मी से अब कुछ खुश्की महसूस करने लगा था। दिन में जब उसने देखा कि अभी तक भगवानदास की अम्मा ने रोटी नहीं भेजी और वह वहाँ उपेक्षित भुलाया हुआ सा बैठा है, तब उसे एक कमी अनुभव हुई और आत्महीनता की तीव्रता पर वह झल्ला उठा। उसने सोचा—क्यों मैं इनके हाथ पर निर्भर रहूँ! क्यों न अलग यहीं दो रोटी थाप लूँ!

किन्तु यह विचार अधिक देर तक नहीं चला। उसकी पत्नी ने लाकर कटोरदान सामने रख दिया।

'ले जाओ', हरदेव ने गंभीरता से कहा—मैं नहीं खाऊंगा, पहले उसे चरादो। लाड़ला है न ? मुझसे क्या ? मैं भूखा मर जाऊंगा, ले जाओ ।' उसकी आवाज में एक हठ था। स्त्री मुस्कराई। उसने परिस्थति को समझा। कहने लगी, तुम्हारा ही बेटा है ढीला। एक दिन तो झक्क दुपहरिया में उसे आने का संयोग हुआ, उसी दिन तुम बैठे गुस्सा हो रहे हो। बाल बच्चों का पहला हक है कि हमारा-तुम्हारा ? भली कही। नहीं खाऊंगा। ले जाओ। खेल है सो ? वह कोई खेलता है कि आवारागर्दी में घूमता है ? न सोता है, न बैठता है, दिन भर तुम्हारी ही खातिर में लगा रहता है, अखिर उसकी तो बहन है......।"

हरदेव सुनता रहा, सुनता रहा। अब वह टूटा, "ले जा सब, मुझे तू याद मत दिलाया कर...।"

परन्तु स्त्री उसे जानती थी। कटोरदान खोल दिया। पकी पकाई दिखाई देने लगी। स्त्री का यह पेट पर चलने वाला हथियार उसके आंसू इत्यादि हथियारों से कहीं ज्यादा आसानी से कारगर होता है।

हरदेव पिघला। रोटी का कौर तोड़ कर कहा, "मैं नहीं कहता कुछ। पर तू तो उसे ही सह देती है। मेरी बात सुनता है वह ? इस कान से सुनी, उससे उड़ादी, जैसे बात नहीं हुई मक्खी हो गई। अंधेर है यह। तुम दोनों का अंधेर है। सब समझ रहा हूँ मैं, हाँ।"

वह परेशान सी देखती रही। यह समस्या अत्यन्त जटिल थी।

'कौन ? मैं ! उसकी तरफ बोलती हूँ।' उसने एक वाक्य को तीन प्रश्नों में तोड़ कर कहा, जैसे समष्टि से अष्टि में होता हुआ अहंभाव अंत में अपनी नकारात्मकता में स्वयं सिद्ध हो गया। वह कहने लगी, 'तुम इस घर से अलग हो। मैं पूछती हूँ तुम अपने को घर का मालिक क्यों नहीं समझते ? बेटी का ब्याह तुम्हें नहीं करना है ? वह सिर्फ मां-बेटे की जिम्मेदारी है ? बेटी तुम्हारी नहीं है ? कह दो। मैं पूछती हूँ आज कह दो !'

हरदेव भुनभुनाया, 'अब तो बेटा भी जिम्मेदार हो गया, ठीक है। जो जिम्मेदार है वही मालिक है। फिर मेरी क्या जरूरत? इस लौंडे का ब्याह कराके ही मुझे क्या सुख मिल गया है?'

स्त्री मुस्कराई। उसने कहा, "क्या कहते हो? बेटा-बेटी का ब्याह करके नेग चुकाई जाती है कि सुख की आशा की जाती है?"

किंतु बात यहीं समाप्त नहीं हुई। वह जब चली गई हरदेव दूकान पर बैठा-बैठा ऊबने लगा। मुंशीजी का लड़का दो बार बुला कर चला गया। शाम को भगवानदास लौटा। हरदेव सुना बैठा था।

दिन में सख्त गर्मी थी। लूओं की चपेट से देह झुलस-झुलस जाती थी। वह आड़ में लेटा रहा। आकाश से आग बरसती रही। इस समय वह वहाँ से उठना चाहता था।

भगवानदास समझ गया। उसे खीझ हुई। दिन भर यहाँ लूओं में चक्कर लगाते-लगाते शरीर फुंक रहा है और राजा साहब हैं कि आड़ में भी दूकान पर नहीं बैठ सकते। इन्हें तो नींद चाहिये, नींद।

कुछ न कह कर चुपचाप वह मन्दिर के नल पर नहाने चला गया। शरीर पर नल का पानी कुछ-कुछ सीठा-सीठा सा लगा, और एक हल्की फुरफुरी आई। वह शिथिल सा पानी की धार के नीचे बैठा रहा। मजा आ रहा था, जैसे इस ठंडक से धूल के साथ सारी हरारत, सारी थकान बह-बह कर निकल रही हो। उसे काफी देर हो गई।

जब वह नहा कर लौटा तो सीधा रोटी खाने घर चला गया क्योंकि भूख तेज हो गई थी।

हरदेव ने देखा। वह क्रोध से कांप उठा। नवाब का बच्चा, क्या कहने हैं, अब मुन्शीजी क्या रात भर बैठे रहेंगे? एक तो बिचारे बुला-कर पिलाते हैं तिस पर कब तक इन्तजारी करेंगे? आया था, खैर नहा ले भाई। अभी लड़का है, तेरा वख्त है, पर यह क्या कि अब चल दिये बदन फटकार कर।

हरदेव सोचता रहा। विचार एक रूप होकर घिरने लगे। बस इसे क्या ? भांग पाली और सो रहा। एक बार न सोचा होगा इसने कि बुड्ढ़ा क्या कर रहा है, क्या करना चाहता है। उसे दुकान से मतलब ? वह तो एक काम करेगा। बस, जैसे इसके बाप ने मुझे नौकर रख लिया है कि, बैठ, सौदा बेच, जो गुल्लक में आये सो इधर दे इधर···।

हरदेव को गुस्सा घेरने लगा जैसे शिकारी जानवर को घेरता है, जैसे चारों तरफ बाजे बजाती हुई भीड़ बढ़ी आ रही है और वह लाचार बाहर निकलता चला आ रहा है। उसे लगा उसके विरुद्ध सारा घर मिलकर एक हो गया है। वह क्यों उन्हें अपना समझता है। वे सब उसे उल्लू बनाकर रखना चाहते हैं जैसे वह उन सबका गुलाम है।

इस विचार की जुगप्सा ने जैसे उसका एकदम दम घोंट दिया। उसे लगा वह मंझधार में डूब रहा है।

अब वह फुफकराने लगा जैसे मुहल्ले के सब कुत्तों ने मिल कर एक कुत्ते को घेर लिया और उसकी निर्बल आत्मा पिछली टाँगों में दुम दबाये, दांत निकाल कर चिल्ला रही है, वह प्राण पण से अपने को मुक्त करने की चेष्टा कर रहा है। बुड्ढा ! वह बुड्ढा हो चला है। वे चाहते हैं कि वह अपाहिज सा उनका हुक्म बजाता रहे। अब जैसे उसकी कोई मर्जी नहीं रही। कल तक वह जहाँ मालिक था, आज वह वहाँ गुलाम बनकर रहेगा ?

उसने दूकान बढ़ा दी। असह्य दुख से उसकी आत्मा छटपटाने लगी। क्यों करे वह किसी की परवाह ? ऐसे रहने में उसे क्या सुख मिलता है ?

घर पहुँचते ही वह चिल्लाने लगा, "कहाँ है तेरा सपूत कुलच्छनी ? मैं कोई आदमी थोड़े ही हूँ ? जब देखो, जुता रहूँ। क्यों खाता हूँ, क्यों पीता हूँ ? फूटी आँखों अब मैं नहीं सुहाता इस घर में। इस तरह रहने से तो मर जाना अच्छा है। चौबीसों घंटे मैं तो दूकान में मक्खियाँ मारूँ।"

स्त्री ने देखा। और शांत रही। हरदेव कहता रहा, "और नवाब के बच्चे हैं कि सड़कों पर टहल रहे हैं...।"

हरदेव गरज रहा था। उसका क्रोध भगवानदास के चुप रहने से बढ़ता जा रहा था। उसे लगा वह जन्म जिन्दगी से ऐसे ही उपेक्षित रहा है, मूर्ख समझा जाता रहा है। इस घर से उसे वह सम्मान नहीं मिल रहा जो उसके योग्य था।

भगवानदास ने कौर भरे मुँह से कहा, "सुहाये वह जो सुहाने लायक काम करे। अपना है तो क्या साँप भी पास सुलाने को है? नहीं हम बैठे रहते हैं जो पांव मखमली हों। ठेक पड़ गई हैं चलते-चलते; दहूँ ठेक पड़ गई हैं।"

बाखर में शायद लोग सुन रहे होंगे। क्या सोचते होंगे कि आज बाप बेटे में तू-तू मैं-मैं हो रही है। यह विचार अधिक देर तक नहीं रहा। किसके घर के चूल्हे के पीछे राख का ढेर नहीं है, घर-घर वही मट्टी के चूल्हे हैं।

माँ ने बेटे को डांटा, "क्यों रे। बाप के मुँह लगता है। जानता है उसकी इज्जत से तेरी जीभ घिस जायेगी।"

'आहा', हरदेव ने सिर हिला कर व्यंग से कहा, "एक यही सपूत तो मेरी इज्जत करने को रह गया है। मेरी पांव की जूती मेरे सिर की इज्जत करेगी? मुझे नहीं चाहिये ऐसी इज्जत।"

भगवानदास ने खाना छोड़ दिया। वह उठ बैठा और द्वार की ओर चलते हुए कहने लगा, "अब नहीं रहना है मुझे इस घर में। समझी अम्मा? तू रह, वह रहे, मैं नहीं एक मिनट रह सकता। कोई बात है। दिन क्लेश, रात क्लेश, चौबीसों घंटे की झिकझिक। इससे तो संखिया खाकर सो जाना भला है।"

माँ ने दौड़कर पकड़ लिया।

'क्या कर रहा है बेटा', फिर पति से मुड़ कर कहा, "आग लगे तुम्हारे फूटे बोलों को। थाली पर से मेरा बेटा उठा दिया।"

'अरे तू जाने दे इसे। ब्याह के मैं लाया था तुझे। तूने ही इसे इतना मुँह चढ़ा बना दिया है। वह दिन भूल गया जब पिल्लों की तरह नाली में खेलता था, हम भी बच्चे थे, हमारा भी कोई बाप था, पर हमने कभी सामने खड़े होकर जवाब नहीं दिया। और तू है कि आ बेटा, ले बेटा। निकाल इसे, बेईमान, बदजात। मैं पहले ही कहता था यह किसी भंगी की औलाद है, हरामजादा, छोड़दे इसे···।"

'और वह दिन तुम भूल गये, भगवानदास ने चिल्ला कर कहा—"जब कुत्तों की तरह नाली में पड़े थे शराब पीकर, जब मैंने उठाया था तुम्हें, जब दुनिया का गन्दा चाट रहे थे।"

उसकी चोट से हरदेव तड़प गया। उसने बढ़ कर कहा, "अब तो कह। हाँ अबके कह तो देखूँ। सूअर! हलक में हाथ डाल के जीभ खींच लूंगा···।"

वह चिल्ला उठी, "भगवानदास! कपूत! बाप से सामना करता है? उसकी तुझसे एक बात नहीं सुनी जाती?"

भगवानदास ने मां को पीछे धकेल कर कहा, "आज यह नहीं मानेगा। कहूँगा, कहूँगा, फिर कहूँगा। क्या कर लेगा, हाँ, ले मैं कहता हूँ, सारी बाखर सुने। आया बड़ा डराने वाला, जैसे मै कोई बच्चा होऊँ, शराबी···।"

हरदेव का हाथ उठ गया। माँ बीच में जूझ पड़ी किन्तु दोनों क्रोध से मतवाले हो रहे थे। एक हाथ घूमा। वह छिटक कर दूर जा पड़ी। दोनों लड़ रहे थे।

आखिर बेटा जवान था। हरदेव के दो चार हाथ कसके पड़ गये। हरदेव क्रोध से कांपने लगा। उसका मुख भयानक हो उठा। दांतों की नोकें दिखाई देने लगीं। हरदेव ने फूत्कार किया, "आज तेरी माँ न होती तो

हरामजादे, छाती फाड़कर खून पी लेता, पर इसकी वजह से तुझ पर मेरा हाथ नहीं उठता···।"

मां भगवानदास को कोसती हुई चिल्लाने लगी, 'अरे तेरा नास जाये कपूत। बाप पर हाथ उठाते तुझे लाज न आई। वह क्या इसी दिन के लिये बूढ़ा हुआ है? कमबख्त। तुझ में हया का लेस भी नहीं रहा। इसका तो मैंने पैदा होते ही गला घोंट दिया होता भगवान!' स्त्री की ललकार सुन कर उसी समय हरदेव ने सारी ताकत लगाकर भगवानदास को कस के धक्का दिया। गुत्थमगुत्थी फिर शुरू हो गई। मां चुपचाप खड़ी देख रही थी। उसे लग रहा था जैसे सारी दुनिया अब घूमने लगी है। लड़के के प्रति उसे अत्यन्त विक्षोभ था, घृणा थी। वह देख रही है उसका जाया आज घर में आग लगा रहा है। वह चिल्लाना भी भूल गई। हठात् हरदेव ने भगवानदास को फेंक दिया। वह कातर स्वर से चिल्ला उठी। दौड़ कर अपने बेटे को संभाल लिया। उसने देखा। दीवार से टकरा जाने से भगवानदास के सिर से खून निकल रहा था। पास बैठ गई। सिर गोद में ले लिया। बेटे पर बेहोशी सी छाई थी।

हरदेव हाँफ रहा था जैसे उसने एक बहुत बड़ा काम कर दिया है। अब भी वह इतना दम रखता है कि अपनी इज्जत अपने आप बचा ले।

भगवानदास ने अध खुली आँखों से माँ को देखा। माँ उसके सिर से बहते खून को देख रही थी। उसने क्रोध से जलती हुई आँखों से देखकर कहा, "तुम चले जाओ, । अभी घर से निकल जाओ। तुम मेरी गोद में आग लगाना चाहते थे? जिसे मैंने इतने दिन तक अपनी कोख में रखा, उसे तुम मार डालना चाहते थे?"

हरदेव हतबुद्धि खड़ा रहा। स्त्री कहती रही, 'जिनावर! जंगली। हाथ न टूट गया तुम्हारा जो इस फूल को मसलने चले थे।' और उसने पुचकार कर कहा—'उठो बेटा, अब हम इस घर में नहीं रहेंगे। वह दुकान इसी की रहे, देखें कैसे चला लेता है। हम तुम मेहनत करके पेट पाल लेंगे·····।'

फूल का जीवन

—१—

मेरे बगीचे के सब फूल सुबह खिलते हैं, शाम को मुरझा जाने के पहिले तोड़ कर काम में लाये जाते हैं। काम क्या, कभी नीना ने अपने जूड़े में खोंस लिये, कभी जीवन ने खेलते खेलते गुलदस्ता बना लिया। बस इससे बढ़ कर कुछ नहीं।

आया बच्चों को घुटनों पर बिठाये शाम को उन्हें परियों की कहानियाँ सुनाया करती है। मैंने भी कभी कभी खेमे की आड़ में खड़े हो कर उन्हें सुना है। सचमुच उनकी रंगीनियों को सुन कर मेरा हृदय भी हठात् ही सुख से भर गया था। किन्तु...दुर्भाग्य है कि वह सब सत्य नहीं होतीं। और बच्चों का प्यारा विस्मय देख कर न जाने मुझे क्यों इतनी वेदना कचोट उठी थी कि कल यह सब अपने आप भक् से उड़ जायगा......

और रात की काली छायाओं में जब पड़ौस के बंगलों की बत्तियाँ जल उठती हैं, जब रेडियो की बजती हुई रागिनियाँ उस खामोशी पर लोटने लगती हैं, जब आसमान में दूर-दूर तक छिटके हुए तारों का वैभव खिल खिलाने लगता है तब मेरे हृदय के सूनेपन पर बरबस कोई छाने लगता है। मैं नहीं जानता कि मैं इन्जीनियर होते हुए भी इतना भावुक क्यों हूँ?

मैं सिगरेट पीता हुआ उस अँधेरे में बंगले के बाहर टहलने लगा। सड़क पर सन्नाटा होने लगा था। कभी-कभी एक मोटर जुन्न करती हुई गुजर जाती थी।

मैं एकाएक ठिठक गया। कला का कोई रूप नहीं जो मेरे मन को ग्रस नहीं लेता। दीवार पर ही यदि चूना झड़ कर आकार बन जाये तो मुझे उसमें भी मनुष्य की आकृति दिखाई देती है।

एक ओर एक लड़का बैठा था। मैंने उस निर्बुद्धि उपेक्षा को देखा जो विवशता बन कर उस जीवन के प्राणों में समा गई थी। भविष्य के आलोक की प्रतीक्षा में ही जिसका सब कुछ रात के अँधेरे की तरह गल रहा है। किन्तु वह शक्ल कुछ मुझे और ही मालूम दी। केवल एक भिखारी। इसके चारों ओर भी ममता का घृणित ताण्डव होगा जो अपनी सत्ता को बचा रखने के लिये यह भी चिन्ता नहीं करता कि वह हमारे समाज पर एक धब्बा है। क्यों नहीं ऐसी निर्बलता अपने आप ही आत्म हत्या कर लेती जैसे राष्ट्र के सम्मान के लिये जापानी हाराकिरी कर लेते हैं...

और आसमान में घटाएँ छाती रहीं। उस अंधकार में एक सनसनाहट है जैसे कोई डर रहा है और उसकी सांस जोर जोर से चल रही है। धीरे-धीरे आसमान के तारों को घटाएँ निगलती जली आ रही हैं। जैसे वैधव्य की बाढ़ सुहाग के कुंकुम का अभिमान एक हुंकार के साथ ग्रस लेती हैं। फिर वेदना का तार बजता है जिसे हम पवित्रता कहते हैं......मैं लौट आया।

पीछे के टोले से रात भर इन्कलाब जिन्दाबाद की पुकारें गूँजती आ रही थीं। हम लोगों की नींद में अक्सर खलल पड़ जाता था। चुनावों का ऊधम था। न जाने क्यों आदमी कुछ अधिकारों के लिये

इतना पागल हो जाता है। कैसा फूल है जो काँटा बन कर अपने को किसी काम का नहीं रखना चाहता।

मैं हँस दिया। मुझे लगा जैसे मैंने जीवन का एक बहुत बड़ा सत्य पा लिया था।

पानी बरसने लगा था। एकाएक पड़ौस के घर में बड़ी जोर से शोर हुआ। हम लोग चौंक उठे। मज़दूरों की बस्ती है। बेवकूफ़ नहीं जानते कि किस वक्त क्या काम करना चाहिये।

मैंने मुँह के ऊपर रज़ाई ढँक ली लेकिन पानी की बूँदें तेजी से गिरने लगी थीं। एक जमाना था जब यह ओछे लोग बड़े लोगों से इतना दबते थे कि हम में से कोई अकेला भी वहाँ चला जाये तो सब शोर अपने आप ही दब जाता। लेकिन अब? कोई कुछ नहीं रहा। सब ही राजा हैं...

विक्षोभ से मेरा मन भर गया। समझ नहीं सका कि यह संसार किधर जा रहा है। क्यों नहीं हम उन्हीं शाश्वत भावनाओं को अपना सब कुछ मान लेते?

किन्तु मज़दूरों की ललकारें अंन्धेरे के सीने पर बार बार हथौड़ों की तरह चोट करती थी जैसे आज वह उन नियमों को कभी नहीं मानेंगे।

बादल आसमान में निरंतर गरजते रहे। उन्हें कोई मतलब नहीं; और भोर में जब फूलों के होठों पर ओस की बूँदों की तरह रात के यह आँसू झलमला उठेंगे तब...

शायद वह गलीज भिखारी लड़का इस वक्त भीग रहा होगा। उस भयानक रात में मुझे नींद नहीं आ रही थी।

उठ कर नीना के कमरे में गया। लाइट जला कर देखा। कितनी सुन्दर थी। उसके चेहरे से गुलाबी फूट रही थी। कोमल बाल फैल गये थे जैसे घटाओं के बीच में चाँद झलक रहा था। कितना सुखद था वह सब। रेशमी रज़ाई पर चमकता हुआ प्रकाश। और एकाएक नींद में ही अनजानी सी नीना हँस दी। कितनी मीठी होगी वह नींद जिसमें इतने मादक सुपने होंगे। जब से घर में आई है तब से कितना भरा सा लगता है सब कुछ।

मन नहीं किया कि जगा कर उसे अपनी बेचैनी की हालत सुनाऊँ। क्यों मैं किसी को दुख दूं, कष्ट पहुँचाऊँ? यह तो बिचारी किसी का कुछ बुरा नहीं करती। लगता है जैसे डालों की नई पत्तियों पर गुलाब का फूल सो रहा हो, रात के हलके झोंके से उठती सिहर उसके बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेर कर उसे दुलार देती हो।

और वे दूसरों की शान्ति भंग करने वाले मजदूर......मुझे डर हुआ कहीं नीना जाग न जाय, कहीं इसकी आँखों का यह मीठा सुपना टूट न जाय...

—२—

पड़ौस के गायक की प्रभाती की मधुर तान सुन कर आँख खुल गई।

भोर का सुहावन आकाश में बजने लगा। कचनार की डाल पर बैठे तोतों की पाँत मेरे हृदय के कोने कोने को छू गई और गायक के करुण स्वर का सन्धान एक लय बन कर गूँज रहा था जैसे धरती का सारा कलुष आज स्वर्ण के आलोक में धुल जायगा।

फूलों के होठों पर हँसी फूट रही थी। रात का तूफान भी थम चुका था। बादल फट कर क्षितिजों पर झुक गये थे। उनके किनारों पर सुनहरी किरनें चमक रही थीं जैसे आकाश में एक स्वर्णहार उषा के

स्पर्श से झनझना उठा हो जिसकी ध्वनि भी आलोक के चेतन स्वरूप में मुखरित हो उठी हो।

एक गुनगुनाहट। सिर उठा कर देखा। बेलों की आड़ में फ़र का हल्का ओवरकोट ओढ़े नीना खिड़की पर दिखाई दी।

एक मादकता ही जिसकी सत्ता की पूर्णता हो वही तो ब्रह्मा की सर्वोत्कृष्ट रचना है।

'कहिये।' मैंने कहा—नींद तो अच्छी आई न ?

नीना हँस दी। कितनी तृप्ति है इस एक तरल उफ़ान में जैसे बहाव में निर्मल जल कल कल कर उठा हो।

बच्चे बाहर निकल कर खड़े थे। उनके शरीर पर ऊनी कपड़े थे। आभा में यह कमाल की सिफ़त है। मजाल है जरा भी उसकी नज़र चूक जाये और बच्चों के शीशों से चमकते हुए शरीरों पर भाप की सी मलिनता भी शेष रह जाये।

और उस सुन्दर समय में वह गलीज़ चेहरे वाला बच्चा मेरे सामने खड़ा फूलों की तरफ़ देख रहा था। उफ़, कह नहीं सकता कितनी वेदना से मेरे मन ने अपने आप भीतर ही भीतर एक मरोड़, एक ऐंठन सी अनुभव की। लगा जैसे सब कुछ अपने आप गिर जायेगा। रोटियों के लिये झगड़ने वाले यह कुत्ते! क्या जानेंगे कि हमारी संस्कृति का वरदान हमें आज भी मर जाने से बचाये हुये है।

कितनी तृष्णा है उसकी उन कीचड़ भरी आँखों में जैसे सब कुछ खा जायगा। एक क्षण चैन से नहीं बैठ सकते। ज्ञान की बात आते ही पेट कूटने लगते हैं...असुन्दर का यह भीषण प्रतीक ही हमारी शांति की जड़ों में आग लगाकर इन सुन्दर गीतों में आग लगा देना चाहता है।

'तेरी माँ कहाँ है ?' घृणा से पूछा।

किन्तु कठोर स्वर से कोई प्रभाव नहीं पड़ा । मूर्ख डाँट खाने के आदी हैं । इनसे कोई प्रेम से बात करे तो अविश्वास से इधर उधर देखने लगते हैं । जैसे हम तो उनका कुछ खा जायेंगे । कंगाल ? है ही क्या इनके पास जो इतना अभिमान करने की स्पर्द्धा है इनमें ? कल तक भूखों मरते थे, आज दो पैसे की मजदूरी तो भी मिल जाती है । यह तो नहीं कि अपनी किस्मत का रूखा सूखा खाकर चुप रहें···इन्हें तो अधिकार चाहिये...दिया जाये तो संभाल सकेंगे ? रोज तो पीकर लड़ते हैं···

बच्चे ने जवाब दिया—रात को आई नहीं । जाने कहाँ रह गई ? आरक्त हो गया मेरा मुख । अगर हमारे यहाँ बच्चों की माँ रात किसी और जगह काट दे तो क्या बच्चे उसे इतनी निर्लज्जता से कह सकेंगे ? घोंट न देगी संस्कृति उनका गला ?

दूर कहीं फिर पुकार उठी—इन्कलाब ज़िन्दाबाद ।

कितनी कशमकश है इस जिन्दगी में । इतना भी धीरज नहीं कि भोर की इस मनोहर बेला में तो यह व्यर्थ की हाहाकार रोक दें ? जैसे कहीं विश्राम का कोई किनारा नहीं है ।

आवाज़ की छींटें मेरे मन की तपिश पर आकर जल रही हैं जैसे मुरदा चराँध फैलाता हुआ जल रहा हो, भस्म हो जाने के लिये, क्योंकि रूप के कगारों को तोड़ने वाले यह पशु मेरे मन के व्यक्तित्व पर प्रहार कर रहे हैं ।

सामने खड़े बच्चे की वह भूखी आँखें । क्या फाड़ फाड़ कर देख रहा है सब कुछ । भूखा ? नजर लगा दे तो खाते के पेट में दर्द होने लगे । कमीना ! निस्संकोच ?

मन विक्षुब्ध हो गया । कितना सुन्दर होता यदि मैं प्राचीन काल में पैदा होता जब यह शूद्र केवल सेवा से सन्तुष्ट थे, आज वह सेवा का

औचित्य चाहते हैं। आज वह अपने कर्त्तव्यों को तोड़कर हमारे समाज में उच्छृङ्खलता अव्यवस्था फैलाना चाहते हैं ।

नीना खिड़की पर से हट गई थी। बच्चे नीचे लॉन पर उतर आये थे। सुधा फूल तोड़ रही थी। और मंगू मस्त होकर भाग रहा था। मुड़कर देखा। वह गलीज़ आँखों वाला गन्दा मजदूर बच्चा चला गया था।

उसके पैरों से धरती गंदी हो रही है। अब भी ऐसा लगता है जैसे नाली की कीचड़ में से निकल कर कोई कुत्ता निकल आया हो और धुले पुँछे पवित्र आदमी के पास खड़े होकर जोर से शरीर को फड़फड़ा उठा हो कि कीचड़ के छींटों से स्वच्छ वस्त्र बिगड़ जायें। कितनी जलन है इन लोगों में ? कितनी ईर्ष्या है, किसी को सुखी तो देख ही नहीं सकते।

मुझे लगा जैसे उन फूलों में भी पराग की जगह उस बच्चे की आँखों में कीचड़ छा गई थी और वे फूल मिचमिचाती आँखों से मुझे घूर रहे थे। कितना भयानक था यह विचार ! कितना घृणित ! लगा जैसे मैं परंपरा के संस्कारों को खोये दे रहा हूँ। भोर की पवित्र शांति पर यह आज कैसे अंगार दहक उठे हैं ?

दिन भर इसी उदासी में रहा।

नीना मोटर में कहीं चली गई थी। खाने के वक्त मेज पर भी नहीं आई। आया बच्चों को खिला-पिला कर पड़ोस के डिप्टी साहब के बच्चों के पास तो गई थी। अकेला तो कभी बच्चों को छोड़ना ही नहीं चाहिये''''''

लेकिन वह बच्चा अकेला रात भर सड़क पर पड़ा रहा, क्योंकि उसकी माँ''माँ''उसे छोड़कर किसी दूसरे के साथ चली गई थी''

पाप है यह-! मन न जाने आज चिल्ला उठना चाहता है !!

साँझ के समय जब मैं बैठा बैठा रवि ठाकुर के गीत की कड़ियाँ दुहरा रहा था''

मेरा जीवन तुम्हारा परिचय है--
मेरी मृत्यु तुम्हारी विजय.....

देखा मज़दूरों की एक टोली दहाड़ती हुई गुजर रही थी..पूँजी-पतियों का नाश हो, सरमायदारों को जड़ से मिटा दो...

मुझे इन लोगों की गरीबी से पूरी सहानुभूति है, पर यह लोग हिंसा का रास्ता क्यों अख्तियार करते हैं ? क्या हमारी संस्कृति का आध्यात्मवाद इन तक नहीं पहुँचा है ? जब आत्मा की बात होती है तब इन्हें रोटी की याद आती है। इन मजदूरों के सिर पर एक पागलपन है। क्या पूँजीपति इनका कोई लाभ नहीं करता ? क्या वह मनुष्य नहीं है ? मालिक मालिक है। यह लोग नौकरों की तरह तो रहते नहीं। मुर्खों का हौसला तो देखो, बराबरी करने चले हैं।

फिर एकाएक मुझे संतोष हुआ। जब तक पुलिस है तब तक तो इन गुंडों को सरलता से दबाया जा सकता है। लेकिन पुलिस अंगरेजों की गुलामी करती है !! यह न सही, इनके बच्चों के बच्चे कहीं अच्छे हो जायेंगे..

किन्तु बच्चा खड़ा था सड़क पर। तब तक यह इसी तरह जानवर की तरह घूमा करेगा और घुन की तरह घिसता रहेगा। रात भर भीगा है कम्बख्त, न जाने कौन सी हड्डियाँ हैं कि सुबह उठकर एक छींक भी नहीं आती...

फूलों के गालों को अँधेरा अपनी छाया में डग रहा था जैसे भूत की भयानक सूरत देख कर वह सहम गये थे।

—३—

हवा के ठंडे झोकों में एक सिहरन था। आस्मान नीला सा बिल्कुल

अशान्त, चारों ओर वही निस्तब्धता; सुनहली सी धूप की हल्की गर्मी में हम लोग कुर्सियों पर चारों तरफ बैठे चाय पी रहे थे।

इसी समय बाहर सेठ जी की गाड़ी रुकी। मैंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया नीना ने नमस्ते किया। सेठ जी हाल ही में जेल से छूटकर आये थे। बीच बीच में कई बार जमानत पर छूट छूट आये थे और अपना काम कारोबार चलाते रहे थे। मुझ पर उनकी विशेष कृपा थी। वास्तव में वे यदि ऐसा नहीं करते तो शायद मैं संसार में उनसे बढ़कर कृतघ्न किसी और को नहीं समझता। लड़ाई के दौरान में मेरे कारण उन्हें जितना फायदा हुआ उसे मनुष्य का हृदय रख शीघ्र भुला देना सहज नहीं और यही कारण है कि इतनी मिलों और कम्पनियों का मालिक स्वयं ही अपने नौकर के द्वार पर आता है। वैसे सेठ जी मिलनसार हैं। आते ही जीवन और मंगू को छेड़ा और हँस कर कहा—कहिये नीना देवी, आज कल आपकी चित्रकला चल रही है या नहीं?

नीना ने सिर हिलाया। सेठ जी ने फिर कहा आप की कला से आत्मा पवित्र होती है, राजनीति के झगड़ों से दूर। ठीक ही तो है, कला और राजनीति का क्या संबंध? कला तो शाश्वत वस्तु है।

नीना की गूँजती आवाज चक्कर लगाती हुई चारों ओर फैल गई—राम चरन!

भीतर से आवाज आई! हुजूर—और जब तक स्वर छूट कर इनके कान तक पहुँचा पीछे ही रामचरन भी था।

'जाओ!' नीना ने कहा—ज़रा चीनी तो ले आओ।

राम चरन ने देखा और चुपचाप सिर झुका लिया।

'क्यों? क्या बात है।' मैंने पूछा।

जीवन बीच ही में बोल उठा—राशन हो गया है न? तो चीनी कहाँ रही?

उफ़ ! यह नादान बच्चे ? नीना ने मेरी ओर देखा । सेठ जी ने अचानक ही कहा—तो इसमें फ़िक्र करने की क्या बात है ! वाह मिस्टर ठगानी आप तो तकल्लुफ़ करते हैं । फिर राम चरन से मुड़ कर कहा—बूरा डाल लाओ ।

राम चरन चला गया । सेठ जी ने हँस कर कहा—मँगा क्यों न ली आपने ? कैसे पीते होंगे यह बच्चे बिना चीनी की चाय ? आप तो बिलकुल कुछ चिन्ता ही नहीं करते । अरे घर ही तो है वह भी । जब जी चाहे नौकर को भिजवा दें !

मैं बैठा बैठा मुग्ध हो रहा था । क्या आदमी है, घमंड तो छू कर नहीं गया । अपनों की तो दिल खोलकर मदद करता है ।

राम चरन बूरा रख गया । नीना चाय बनाने लगी । सेठ जी ने कहा—जब राष्ट्रीय सरकार होगी तब यह तकलीफ़ें नहीं होंगी । और एक भारी हास्य प्यालों की चाय पर झनझना उठा ।

'क्योंकि तब कन्ट्रोल नहीं रहेगा । अंगरेजी सरकार हमें व्यापार तक नहीं करने देती । हमसे तिगुने टैक्स लेती है, लेकिन जब हम देश की दौलत बढ़ाने को जरा भी दाम बढ़ाते हैं तब हम पर रोक लगाई जाती है......'

नीना ने रोक कर कहा—चाय ठंडी हो जायगी ।

'ओह !' सेठ जी ने कहा—हाँ मिस्टर ठगानी ! आप से मुझे कुछ काम भी था ।

मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया—हाज़िर हूँ ख़िदमत में ।

जब चाय पी चुके तब ड्राइंग रूम में गद्देदार कोच पर बैठते हुए सेठ जी ने कहा—आज कल चुनाव हो रहे हैं, जानते ही होंगे ?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार किया । सिगरेट पेश की । उन्होंने एक

जला कर धन्यवाद देते हुए कहा—तो मैं चाहता हूँ कि कुछ देश और दरिद्र की सेवा करता ही रहूँ।

मैंने उत्सुकता से आँखें उठायी। सेठ जी को जैसे कहीं कुछ हिचक हो रही थी। वह कुछ सोच रहे थे। एकाएक कहा—तो मजदूरों की सीटों पर कब्जा जमाना होगा। जानते हैं क्यों? क्योंकि जो अपना भला करना चाहता है उसे दूसरों का भी भला करना चाहिये। मजदूर हैं, गरीब हैं, लेकिन हैं तो अपने ही। खाते तो हमारा ही नमक हैं?

परम्परा की यह सौगात मेरी सांस्कृतिक जगह को भर रही थी। मैंने नहीं सोचा कि मैं सेठ जी की बात पर अविश्वास करूँ भी तो आखिर क्यों?

मैंने कहा—कहिये तो क्या करना होगा?

'यही' सेठ जी ने कहा—मजदूरों में कुछ रुपया बाँटना है। मैं चाहता हूँ आप से ही यह काम कराया जाये। आप तो जानते ही हैं कि मुझे पलक मारने की भी फुरसत नहीं। कितनी छोटी सी बात थी। मैंने राय दी—उस दिन कारखानों में छुट्टी न दीजिये वरना बेचारों की तनख्वाह कट जायगी। इससे बेहतर तो यही हो कि अपना खर्चा ही सही, लारियाँ तय कर दी जायँ, आयेंगी और वोट डलवादी जायेंगी। उनको भी फायदा होगा और आपके काम में अड़चन भी नहीं पड़ेगी।

सेठ जी हँसे। कहा—वाह ठगानो साहब! वाह! भगवान किसी किसी के दिमाग पर खुद अपनी अक्ल बेच देता है। आप तो कमाल करते हैं।

फिर मोटर चली गई। मैंने नीना से कहा—नीना! उस फूलों के चित्र का क्या हुआ? प्रारम्भ तो उसका बहुत सुन्दर हुआ था किन्तु······

नीना ने रोक कर कहा—लेकिन वह बिगड़ गया। मैंने उसे अपने ही हाथों से फाड़ कर फेंक दिया।

मैंने सुना। कितनी निष्काम साधना !! विस्मय ने सोते हुए आनंद को जगा दिया।

—८—

सेठ जी ने प्रसन्न होकर मुझे अपने एक रुपये नफे में दो पैसे का साझीदार बना दिया। आज मैं उनका नौकर ही नहीं साझीदार भी हूँ। मिल में दूर ही से चौकीदार मेरी मोटर देख कर उठ खड़ा होता है।

दोपहर को एकाएक मजदूरों के दो मेट भीतर घुस आये। उनके चेहरों पर बदहवासी छा रही थी। एक ने घबराये हुए स्वर से कहा—हुजूर !

मैंने आँखें उठाईं। देखा। सुना।

'मजदूरों ने हड़ताल कर दी है।'

मुन्शी जी ने चौंक कर देखा। मैं उठकर खड़ा हो गया। इधर उधर टहलने लगा। मुँह से निकला—'स्ट्राइक !' उपेक्षा और उपहास ने घृणा से फिर कहा—'स्ट्राइक'।

एकाएक मैं हँस दिया। मुंशीजी उठकर खड़े हो गये। धीरे से कहा—हुजूर ! यह चुनाव के खेल हैं। इस वक्त मजदूरों में आग भड़का कर अपनी तरफ कर लेना खेल हो रहा है।

मैंने उनकी ओर देखा। पतला दुबला व्यक्ति। आँखों पर चश्मा। गाल कुछ बैठे हुए। तनख्वाह शायद सत्तर या अस्सी। इतना तो लड़ाई के दिनों में हर मजदूर कमा लेता है।

मुंशी जी ने फिर कहा—हुजूर ! बात तो कुछ नहीं। यह तो बहती हवा है। इनको तो कुछ बदमाशी करनी चाहिए। शाम को बाजार न गये, मिल में हड़ताल कर दी। यह तो जानते ही हैं कि मिल में उनके बिना काम चलाना मुश्किल है।

'नहीं !' मैंने गम्भीरता से कहा—इन सब को निकाल कर इतने ही नये मिल सकते हैं। अभी हिन्दुस्तान में ऐसे लोगों की कमी नहीं।

हुजूर यह मजदूरों की अकल नहीं, कुछ पढ़े लिखे···

'शोहदे !' मैंने कहा, 'नौकरी करना चाहें हम आज दे सकते हैं, मगर इनका मतलब है कि ये हमारे सिर पर मूंग दलेंगे। यह नहीं हो सकता, मुंशीजी।' फिर रुक कर कहा—लड़ाई खत्म हो गई है लेकिन लड़ाई का ही बोनस माँगते हैं ?'

मुंशीजी ने धीरे से कहा—हुजूर वे कहते हैं कि लड़ाई तो खत्म हो गई है लेकिन लड़ाई की महँगाई तो खत्म नहीं हुई। और अभी तक मालिकों को तो लड़ाई के आर्डरों का ही नफा मिल रहा है। वे चोर बाजारी करते हैं···

'मुंशी जी'—मैंने काट कर कहा।

मुंशी जी सहम गये। हिचकते हुए उत्तर दिया—ऐसा उन लोगों को बहकाया गया है हुजूर।

मैं फिर घूमने लगा। रुक कर कहा—मुंशीजी ! चुनाव कब है ?

'परसों की तारीख है हुजूर।'

'अच्छा तो देखो एक काम करो। देश को इस समय सब की मदद की जरूरत है। वैसे तो इन जाहिलों की कोई जरुरत नहीं, मगर भीड़ बढ़ाने के लिये इनकी सख्त जरूरत है। कैसे भी हो, मजदूरों को बहकाने वालों का खात्मा करना ही होगा। बदमाशों ने कहा था लड़ाई में मदद दो और अब कहते हैं कि हम चोर हैं। क्या जमाना है ! हाँ, मुंशीजी।

'हुजूर, सेठ जी को फोन कर दीजिये।'

मुझे क्रोध हुआ। मूर्ख यह भी नहीं जानता कि अब मैं भी उस लाभ हानि से बँध गया हूँ।

मैंने हँस कर कहा—आप अभी बच्चे हैं। ऐसी मामूली बातें तो क्या, इनसे बड़ी परेशानियाँ हों तो भी मैं अकेला उनके लिये काफी हूँ।

मुंशीजी फिर किंकर्त्तव्यविमूढ़ होने लगे थे। मैंने धीरे से कहा—सुनिये। मजदूरों को खरीद लीजिये। जितने रुपयों की जरुरत हो मुझसे ले जाइये। लेकिन एक भी हाथ से न निकलने पाये।

न जाने क्यों मुंशीजी मुझे देख कर सहम गये। वे कमरे के बाहर निकल गये। मैं बैठ कर सिगरेट पीने लगा।

शाम को जब मैं घर लौटा उस समय अत्यन्त प्रसन्न था। काम पूरा हो चुका था। नीना से हँस कर पूरी कहानी सुनी और कहा—भला बताइये न यह वक्त अंगरेजों से लड़ने का है या इन बातों का? दुनिया में सभी तो अमीर नहीं होते। फिर दूसरों को देखकर जलने से क्या फायदा? अब हमसे और कोई क्या अधिक धनी ही नहीं? पर हम तो जो परमात्मा ने दिया है उसी में सब्र करते हैं। इसके लिये क्या किया जाये यदि परमात्मा ने उन्हें वह भी नहीं दिया। गरीब तो हैं ही उस पर दुगुने पाप करते हैं, फिर अगले जन्म में यही हाल होगा। सेठ जी हैं, दान दान करते हैं''क्यों न परमात्मा उन्हें सब कुछ दे।

कितनी दार्शनिकता है! संस्कृति बोल रही है। 'चलो, घूम आयें, मैंने कहा।

बाहर सड़क पर धुँधले अंधेरे में एकाएक मेरे पाँव में किसी चीज की ठोकर लगी। नीना के मुँह से एक चीख अनायास ही निकल गई। मैंने कहा, "नीना घबराओ नहीं।"

झुक कर देखा। कोई पड़ा हुआ था। मन में आया चमड़ी उधेड़ दूँ मार मार कर। इतनी भी तमीज नहीं कि कहाँ सोना चाहिये!

"क्यों बे! बीचोंबीच सो रहा है? कोई जवाब नहीं।"

मैंने क्रोध में पैर से एक हल्की सी ठोकर दी।

लेकिन फिर भी कोई उत्तर नहीं मिला। झुक कर देखा।

ठोकर लगने पर भी जो आदमी उत्तर नहीं देता वह कभी जिन्दा नहीं होता, मर चुका होता है।

नीना चीख कर पीछे हट गई, किन्तु मैं वहीं खड़ा रहा। न जाने क्यों मेरे दिमाग में एक चोट सी हुई।

सैकड़ों फौजी लौट कर आ रहे हैं, लाखों मजदूर, करोड़ों किसान अकाल का इंतजार कर रहे हैं। आज वे सब गुलाम हैं।

यह बच्चा मर चुका है, वही भिखारी का गलीज भयानक बच्चा...

मर चुका है यह इन्सान का नुमायशी जानवर...

मर चुका है यह, जिस पर दुनिया ने कभी अनाथ तक कह कर दया नहीं दिखाई।

लगा जैसे मैं पागल हो उठूँगा। एक दिन जब महिषमर्दिनी काली ने रक्त पीकर मृत्यु के सामान नृत्य किया था तब महारुद्र भी शिव बन कर पैरों के नीचे उसका गुस्सा ठंडा करने आकर लेट गये थे, लेकिन आज यह शिव मुर्दा पड़ा है। क्या, लाश जाग कर रुद्र बन कर कभी नहीं चिल्ला सकती?...और न जाने मेरे दिल में कब का बचा इन्सान पुकार उठा:

भौंरे अपनी गूँज से छलकर भौंरों का शहद चुराते हैं और फूल?...

मेरे पैरों के पास वह गलीज लाश जो या तो भूख से मरी है, या अत्याचार से...क्योंकि भयानक लू ने फूल को झुलसा दिया है...

चिड़ी के गुलाम

-१-

उसका नाम प्रताप था।

जब वह कचहरी से लौटता तो थक जाता। दुबला-पतला आदमी। आँखों पर मोटा चश्मा। पतले-पतले होठों पर कटी हुई मूँछ ऐसी लगती थी जैसे किसी पुराने ठाकुर की पुरानी गढ़ी की दीवार पर वंशपरंपरा की इज्जत की निशानी—दो तलवारें टँगी हों। उसका मुँह ऐसा लगता जैसे उनके नीचे की ढाल हो।

सचमुच वह मुँह एक ढाल ही था। वही उसकी रोजी का जरिया था। पहले जब शादी नहीं हुई थी तब वह बड़े-बड़े रईसों की मोटरों में घूमता था, उनकी खुशामद से खर्च चलता था। उसकी अच्छी खातिर होती थी। वह सदैव इसे अपनी इज्जत समझता रहा। लेकिन वह यह नहीं समझ पाता था कि रईसों के लड़के सिर्फ उसको अपना वक्त काटने के लिए पालते हैं। यह सब तब तक रहा जब तक वह अविवाहित था। कुँवर चन्द्रभान बोतल खोलकर बैठ जाते और अब जब वह विवाहित था, पीने में हिचकिचाने लगा।

उसकी पत्नी उसके मुँह से शराब की गंध सूँघ कर रोती। कभी कुछ नहीं कहती। इससे उसका हृदय भीतर-ही-भीतर फटने लगता। वह प्रत्येक रात प्रतिज्ञा करता कि अब वह नहीं पियेगा। कभी भी नहीं पियेगा।

और अन्त में हुआ भी यही। रईसों के लड़के उसे चाट खिला सकते थे, खाना देना उनकी क्रीड़ा का विषय. नहीं था। लिहाजा जब काफी नौकरियों के लिए भटक चुका, तब अंत में उसने कचहरी में नौकरी कर ली। साहब मजिस्ट्रेट के यहाँ अंगरेजी से हिंदी में तर्जुमा करने लगा।

अब जिंदगी ने एक नई करवट बदली। ऊपर की जिस चमक-दमक पर वह आशिक था, उसके भीतर ही इतनी गलाजत, इतना कूड़ा-करकट था, यह देखकर उसका मन भीतर-ही-भीतर उबकाई लेने लगा। पहले कोई फाइल मांगने आया, दे दी। नकल लेने आया, उतार दी। पढ़े-लिखे आदमी का आत्म-सम्मान था। इसी काम के लिए वह नियुक्त किया गया था। उसे तनख्वाह दी जाती थी, पर इससे दफ्तर में हलचल मच गई।

लंबी मूंछ वाले मुन्शी जी ने कहा—बाबू साहब आदमी की तो पहिचान रखिये।

'हाँ' जरा बड़े बाबू ने समझाया, 'देखकर, आप तो झाड़ू लगाने पर तुले हुए हैं।'

उसने सुना। समझा। घर आकर जब वह उदास दिखाई दिया तब पत्नी ने पूछा—क्यों? आज क्या साहब नाराज था?

'नहीं, मैं कुछ और सोच रहा था।'

'वह क्या?'

'यही कि यह नौकरी छोड़कर कोई और काम शुरू कर दूँ।'

'क्यों?' पत्नी चौंक उठी। जैसे उसे इस बात पर विश्वास ही नहीं होता था कि उसका पति किसी और काम के योग्य भी है।

'बात यह है' उसने कहा, 'जहाँ मैं काम करता हूँ वहाँ ईमानदारी का नाम भी नहीं है। निहायत कमीने किस्म के आदमी हैं। बात-बात पर रिश्वत।'

पत्नी कुछ दार्शनिक थी। उसने उत्तर दिया, "यह भी कोई बात है? लेते हैं तो लेने दो। तुम्हारा उससे नुकशान? जब बहुत-सी औरतें वेश्या हो जाती हैं तो उससे और औरतों का क्या होता है?"

'लेकिन' उसने कहा, 'वे तुम्हें तो मजबूर नहीं करतीं। यहाँ तो बात ही और है। कमबख्त कहते हैं कि यहाँ भलमनसाहत ही बुराई की जड़ है।'

'तुमसे भी रिश्वत लेने को कहते हैं?"

'यही तो परेशानी है।'

'तो छोड़ दो। मगर फिर करोगे क्या।'

अनन्त आकाश और उलझे मुहल्ले का स्वर अब बुझ गया था। प्रश्न रात के अंधियारे के पत्तों की तरह घना था। एकदम दमघोट।

उसने सिर झुका कर उत्तर दिया, "तो क्या मैं छोड़ थोड़े ही दूँगा।"

पत्नी को आश्वासन मिला।

—२—

दूसरे दिन कागज के ढेरों में बैठे हुए उसे संशोधन करते हुए किसी ने कहा, "हमारा कागज—नकल दे दीजिये।"

वह बिगड़ उठा। इतने कागजों का ढेर था, इतना ढेर था कि कुछ भी नहीं संभल पाता था। बड़े बाबू ने उसे सजा दी थी, ज्यादा काम देकर। जब कांटा घुस जाता है तब उसको नाखूनों से बाहर खींच लिया जाता है। यही उनका सिद्धांत था। उसने सिर उठा कर देखा।

एक देहाती आदमी। अधमैले कपड़े पहने सामने खड़ा था। देहाती परेशान-सा था जैसे बड़ी दूकान में घुस आया हो जहाँ हर चीज बहुत कीमती थी, उससे बहुत अच्छी थी।

प्रताप ने उसे टेढ़ी दृष्टि से देख कर कहा, 'क्या चाहिये?'

'नकल।'

'बैठ जाओ। अभी देते हैं।'

'अभी दे दीजिये बाबू जी, जल्दी है' देहाती ने एक रुपये का नोट उसकी मेज पर सरका दिया।

प्रताप कुढ़ गया। उस ने कहा, 'नहीं, नहीं। थोड़ी देर में आना। मुझे आज बहुत काम है।'

देहाती अविचलित रहा। उसने एक रुपया और पहले वाले की बगल में सरका दिया। यह भी एक नोट ही था।

प्रताप की आंखें चौंधियाने लगीं। कैसा गँवार है। मना करता जाता हूँ पर मानता नहीं। दूर से मुन्शी जी ने चश्मा नाक पर सरका कर आँख गड़ा रखी थी।

'अच्छा बैठ जाओ, एक मिनट,' प्रताप ने हार कर कहा, 'अभी देता हूँ।'

देहाती बाहर जाकर बैठ गया। प्रताप बैठ कर उसकी नकल उतारने लगा। उसी समय बड़े बाबू ने आवाज दी, 'प्रताप बाबू।'

'जी आया।'

इधर-उधर देखा। अगर रुपये यहाँ छोड़ दे तो कोई उठा ले जायगा। उठा कर जेब में धर लिये और सामने पहुँच कर कहा—जी हां।

'देखो भाई।' बड़े बाबू ने कहा, 'आपका काम पहले करो।'

प्रताप ने आंख उठा कर देखा।

सांवला रंग। पर चिकनापन सफेद कपड़े—गांधी टोपी, कुर्ता, धोती। सफेद चप्पल, चेहरा साफ। आँखें जरा ऊपर उठी हुई। होठों पर एक भभक-सी और तनी हुई भँवों में दुनिया को नाचीज समझने का दुरभिमान। ऐसा कि प्रताप को देख कर नफरत हुई।

यह कांग्रेसी है, प्रताप ने मन-ही-मन कहा। फिर उसे उस देहाती की याद आई। यह उसका प्रतिनिधि कहलाता है। केस है कि लाला जी कहीं ब्लैक में पकड़े गये हैं। और अब रिश्वत देकर छूट जा रहे हैं। कांग्रेस में हैं। कलक्टर पर दबाव डलवा दिया गया है। सारी दुनिया में न्याय की डौंडी पीटने वाला वह शहर का राजा ऐसे ही दुबक गया जैसे शेर के सामने गीदड़। और काम हो गया।

प्रताप ने सिर झुका कर कहा, 'जी हाँ, अभी लीजिये।' और उसने तिरछी दृष्टि से लाला जी की ओर देखा जो कीर्तन के अखण्ड प्रेमी बताये जाते थे पर हाल में ही उनकी बदचलनी का कोई किस्सा फैला चुका था।

जब प्रताप चला आया, तब लाला जी ने कहा। 'बड़े बाबू!'

'हाँ, सेठ जी! हुकुम?'

'यह कोई कालेज का नया छोकरा है?'

'जी हाँ हुजूर, अभी नादान है।'

'हूँ।' सेठ जी ने ध्वनि की। 'तभी इतना दिमाग है।'

'मुझे तो हुजूर लगता है,' बड़े बाबू ने कहा, 'इसके दिमाग ही नहीं है।'

'क्यों आखिर?'

'न खाता है, न खाने देता है। अब आप से क्या छिपा है। इतने आदमी हैं। इतना खर्चा है, और मँहगाई से तो आप वाकिफ हैं ही...'

'क्यों नहीं,' लाला जी ने मँहगाई सुनकर पैंतरा बदला, 'बहुत है, पर लड़ाई के असर हैं। विदेशी सरकार की बद-अमलियों का नतीजा है। और उधर मजदूरों को भड़काया जा रहा है, पैदावार कम की जा रही है...'

बड़े बाबू को इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी उन्होंने

हाथ उठाकर कहा, 'ओफ्फो! हड़ताल ! उफ! जिधर देखिये, यही हालत है। दबाते हैं इस तरह ?'

'तो कौन दबता है ?' सेठ जी ने गर्व से कहा, 'तुम पन्द्रह दिन की हड़ताल करो, हम महीने भर पहले से ताला डाल देंगे। सरकार को जरूरत होगी सौ दफे उन्हें अकल सिखायेगी। क्या जमाना है। मजदूर चाहता है कि मेहनत न करे, छुट्टियाँ ले, मौज करे, पर काम न करे और मुफ्त की तनख्वाह पाये। और हम जो पूँजी लगाते हैं वह किसके बाप की होती है ?'

बड़े बाबू ने कुछ नहीं कहा। प्रताप अपनी मेज पर बैठा सुन रहा था। उसकी कालेज की किताबें बोल उठीं। और वह पूंजी यह कहाँ से लाता है ? मजदूरों की मेहनत पर उठाया हुआ नफा ही न ?

लेकिन उसका ध्यान टूट गया। सामने वही देहाती खड़ा था।

'हुजूर, सात मील से आया हूँ। आज का दिन नहीं निकलना चाहिए। वही मुकदमा है, वही, जमीदार ने चलाया है, हमने चरागाह पर उसका कब्जा नहीं होने दिया। उसने फौजदारी की...'

प्रताप ने चश्मे में से आँखें फाड़कर देखा, किसका काम करे ? सेठ जी का कि देहाती का। उसने रोब से कहा, ''बैठो बाहर।' 'क्या कहा ?' बाहर, बाहर...'

देहाती देखता रहा।

—३—

प्रताप फिर अपने काम में लग गया। इस गड़बड़ में न सेठ जी का काम जल्दी हो सका, न देहाती का। लिहाजा दोनों क्रोधित हो गये। बड़े बाबू ने झल्लाकर कहा' 'प्रताप बाबू !'

'जी हाँ।'

'आपका हाथ बहुत धीरे चलता है।'

प्रताप के मन में आया कि पलट कर जवाब दे। मगर जो थूक मुँह में इकट्ठा हो गया था, वह अब गले के नीचे उतर गया। उसने कहा—जी अब देर नहीं होगी।

बड़े बाबू का दिमाग ठण्डा हुआ। इसी समय एक आदमी सामने आ गया।

'बाबू जी।'

प्रताप कलम चला रहा है।

'बाबू जी,' स्वर में आजिज़ी है।

'क्या है ?' उसने ऊब कर पूछा।

'हमारे कागज ?' और एक पाँच का नोट धीरे से खिसक आया। प्रताप ने आँख उठा कर देखा और कहा, 'अभी लो।'

आदमी बाहर चला गया। प्रताप ने नोट जेब में रख लिया।

इसी समय एक मैजिस्ट्रेट दो सिपाहियों के साथ घुस आया। सब खड़े हो गये।

मैजिस्ट्रेट ने पीछे मुड़ कर पूछा, 'कौन है ?'

अभी-अभी जो पाँच रुपये का नोट देकर गया था वही आदमी आगे बढ़ आया। उसने हाथ से इशारा कर के कहा, 'यही हैं सरकार।'

'प्रताप !' बड़े बाबू पुकार उठे, 'तुम ! रिश्वत लेते हो ?'.

प्रताप सुन्न पड़ गया था। सिपाही उसकी तलाशी ले रहे थे। नोट मिल गया था। मैजिस्ट्रेट ने कहा, 'और वैसे आपकी तारीफ है कि आप रिश्वत से चिढ़ते हैं ? देखिये नोट पर मैंने दस्तखत किये थे।'

उसका सिर झुक गया। वह इस समय गिरफ्तार हो चुका था।

जब मैजिस्ट्रेट चला गया, बड़े बाबू ने बढ़ कर कहा—वाह म्याँ ! तुम तो बड़े रंगीन निकले। मुंशी जी ! चुपके-चुपके। आज तक नहीं पची ऐसी।

लेकिन उसका सिर झुक गया था।

सिपाही उसे ले चले।

लालाजी मुस्कराये। कहा, 'बड़े बाबू! यह रिश्वत की बीमारी नहीं जायगी।'

उसके बाद सब भीतर-ही-भीतर मुस्कराये।

'नया है।' बड़े बाबू ने दया से कहा।

'अब सीधा हो जायगा।' मुंशी जी ने राय दी। लाला जी ने कहा—हटाइये भी।

सौ रुपये बड़ेबाबू खा गये। मामला दब गया। प्रताप छूट गया। जब वह घर गया उसकी आँखें जल रही थीं।

—४—

दूसरे दिन जब सेठ जी ने प्रवेश किया प्रताप राय ने मुस्करा कर सलाम किया—सरकार!

'कहिये मिजाज तो ठीक है?' सेठ जी ने बड़े बाबू की तरफ कदम बढ़ाते हुए कहा।

'मेहरबानी है हुजूर......'

सेठ जी बढ़ गये थे।

देहाती फिर खड़ा था। उसने फिर एक नोट बढ़ाया। प्रताप ने चिल्ला कर कहा—अबे यह क्या करता है? मुंशी जी यह एक रुपया देता है।

'नहीं भई' मुंशी जी ने मुसकरा कर कहा, 'यहाँ रिश्वत नहीं चलती।'

देहाती सकपका गया। उसने चार रुपये और सरकाये। यह नोट नहीं थे।

'नहीं भाई, नहीं' प्रताप ने कहा, 'बाहर बैठो। चपरासी!'

'हुजूर' भारी आवाज में उस मोटे चपरासी ने प्रवेश किया जो देखने में खतरनाक लगता था।

प्रताप ने इशारा किया। चपरासी देहाती को लेकर बाहर चला गया। बाहर जाकर उसने कहा—क्या बात है?

'नकल नहीं मिलती।'

'मैं दिलाऊँ।'

'तुम्हारी दया होगी जमादार।'

'ला पाँच रुपये। बेवकूफ सीधे देने गया था। जानता नहीं आजकल नजर तेज हो गई है।'

पाँच रुपये लेकर वह भीतर गया और जब वह लौटा उसके हाथ में नकल थी। देहाती प्रसन्न-सा चला गया।

'प्रताप बाबू।' बड़े बाबू ने आवाज दी—सेठ जी के कागज...

'तैयार हैं' प्रताप का स्वर फूट निकला।

आज सब काम ठीक था।

शाम को जब वह घर पहुँचा, पत्नी खाना पका कर उसका इन्तजार कर रही थी। देखकर उठ खड़ी हुई। प्रताप ने जूता उतार दिया और पुरानी कुर्सी पर बैठ गया। पत्नी नीचे गई और एक प्याला चाय बना लाई। प्रताप थक गया था। चश्मा उतार देने के कारण उसकी शक्ल बड़ी उजड़ी हुई लग रही थी, जैसे जूते पर से पालिश उड़ गई हो। वह खुरदरा-खुरदरा लग रहा हो।

पत्नी आकर खाट पर बैठ गई।

चाय पीते हुए प्रताप ने कहा, 'अब सब ठीक हो गया है।'

'कैसे?'

'अब चपरासी ले लेता है।'

पत्नी ने सिर हिलाया—तो ठीक है।

'वह आदमी सेठ जी का था। बड़े बाबू ने भेजा था।'

'अरे मरा!' स्त्री ने कहा। 'सो ही तो मैं कहूँ।'

इस प्रकार दूसरी समस्या भी सुलझ गई। जिंदगी की थकान फिर उन खामोश छतों पर मँडराने लगी जिनके नीचे पिसे हुए अरमान थे। जिनके ऊपर चमक थी, लेकिन भीतर सड़ाँध ने घर कर लिया था। दाँतों में ताक़त न थी कि वे काट सकें, इतनी ताक़त होठों में थी कि वे खून चूस सकें, पर वे अभी उसी तरफ थे, जिधर कोई अपने दाँत तेज कर रहा था, बेगुनाहों को, बेक़सूरों को चबा जाने के लिए; अविश्वास...घृणा...

'अब' प्रताप ने कहा, 'मेरी तरक्की हो जायगी।'

'अच्छा' पत्नी ने कहा—तनख्वाह बढ़ेगी ? कब तक ?

'तनख्वाह नहीं।' प्रताप ने बीड़ी सुलगाकर कहा, 'लेकिन ओहदा बढ़ जायगा।'

पत्नी देखती रही। उसे आश्चर्य हो रहा था।

'मैं कलक्टर के यहाँ से कमिश्नर के यहाँ पहुँच जाऊँगा। और यह लोग जो मुझसे अकड़ते हैं सब दब जायेंगे।'

पत्नी सुनती रही। प्रताप कह रहा था—वहाँ बड़ी खुशामद होती है। बड़े-बड़े जमींदार, सेठ सब आकर बातें करते हैं। और कोई मामूली आदमी हुआ तो...उँह...बाहर...बाहर...

पत्नी को पति के गौरव का अनुभव हुआ।

'लेकिन' प्रताप ने कहा—उसका पाना क्या सहज है ? वहाँ आदमी दोनों हाथ से जेब भर सकता है। इसीलिए उसके लिए पहले बाबू को कम-से-कम पाँच सौ रुपये देने पड़ेंगे।

'पाँच सौ ?' पत्नी ने चौंक कर पूछा।

'पाँच सौ दो। चार दिन में ड्योढ़ा वापिस ले लो।'

और उसकी दृष्टि पत्नी के गले की सोने की जंजीर और हाथ की चूड़ियों पर डोलने लगी, वह मशीन की तरह कह रहा था—बड़े बाबू ने

साले के नाम से बंगला बनवाया है...छब्बीस हजार तो उसमें लग चुके हैं...कहाँ से आये...

पत्नी अवाक थी। प्रताप के हाथ उठ गये; उसने कहा—ब्लैक भी तब होती है जब पहले माल इकट्ठा किया जाता है...पाँच सौ...पाँच सौ हैं क्या चीज...

उसकी आवाज काँप रही थी। वह विभोर-सा दिख रहा था...

चौथा तरीका

मैंने जब मिडिल पास किया तब मैं कुछ-कुछ दुनिया को समझने लगा। उन दिनों मुझे लगता था कि सारा संसार मेरे लिये ही बना हुआ है। प्रत्येक विषय में मेरी दिलचस्पी थी। घर से स्कूल तक जाने में करीब-करीब गाँव का काफी हिस्सा मेरे रास्ते में पड़ता। मुझे उस रास्ते की हर चीज अभी तक ऐसे याद हैं जैसे अभी-अभी मैं वहीं से चला आ रहा हूँ।

हमारे पंडित जी पढ़ाया करते थे कि संसार में तीन तरह के दंड साधारण रूप से हर आदमी काम में ला सकता है। पहला तरीका था बुद्धि सुधार का प्रयोग, दूसरा दुष्टदलन का, तीसरा मस्तकभंजन का। बुद्धि सुधार के छड़ी को कहते थे, दुष्टदलन का अर्थ था डंडा तथा मस्तकभंजन स्पष्ट ही वह तेल पीकर लोहा हो चुकनेवाला कान तक ऊँचा लट्ठा था, जिसके दोनों ओर पीतल ठुका होता है। पंडितजी यह भी कहा करते थे कि जिसकी जितनी अधिक शक्ति होती है वह उतनी ही बड़ी चीज का प्रयोग करता है। मैं बुद्धिसुधार से घबड़ानेवाला प्राणी, जब कभी यह सोचता कि दूसरे और तीसरे तरीके से पिटनेवाला प्राणी कैसे होंगे, मेरे प्राण कंठ में आ जाते और आँखें मींच कर मन ही मन हनुमान चालीसा दुहरा लेता, बल्कि कभी-कभी शाम को जाकर भैरो के मंदिर के सिराने दीपक भी जलाता कि भगवान इन दो चीजों से अवश्य मेरी रक्षा करते रहें।

इन्हीं दिनों गाँव में नये थानेदार आये। वे ठाकुर थे। उनकी मूँछें बिच्छू के डंक की तरह तनी रहती, आँखों में एक सुर्खी छाई रहती। आँखें

थीं बड़ी और जैसे झल-मलाती रहतीं। देह के भारी-भरकम, जब वे वर्दी से लैस होकर चलते तब सिपाही उनके पीछे उनके गधों की तरह चलते। उनकी आवाज में वह कड़क थी कि सुनकर गाँव के दबंग आदमी भी सिहर उठते। उनको जमीदार साहब की एक छोटी हवेली रहने को मिली थी, क्योंकि केवल थाने में वे रह नहीं पाते थे। उनकी स्त्री अलग रहती थी और वे घर उसे ही मानते जहाँ उनकी पत्नी थी। किन्तु दूसरा अड्डा नाच-गाने से दिल बहलाव के लिये था जहाँ हमारे जमीदार साहब भी जाते। और वहाँ घर की खींची शराब भी पी जाती। जाने क्यों दरोगाजी को देखते ही हम सब स्कूल के लड़के मन-ही-मन डरते और तुलसीदासजी की रामायण जब रात को सुनते तब मेघनाद की कल्पना सरल हो जाती और दरोगाजी रावण के पुत्र के रूप में उतर आते बड़ा। हमें संतोष होता।

आप शायद नहीं जानते हो, मैं गाँव के एक गरीब किसान का लड़का हूँ। मेरी जाति अहीर है। यह जो कुछ पढ़ा-लिखा है, आपकी दुआ से, शहरों में आकर अपनी ही किस्मत से, और आप जैसे दोस्तों की कृपा से। खैर साहब! तो मैं आपको अपनी आँखों देखा वह हाल सुनाता हूँ जो मुझे उन दिनों अत्यन्त अजीबोगरीब दिखाई दिया। अब जब याद करता हूँ तो सब मेरी अक्ल में साफ उतर आता है। पर वे दिन बचपन के दिन थे। दरोगाजी के राज्य में मैंने एक चौथा तरीका सीखा, जिससे उनकी ऐसी धाक जमी कि सात-सात गाँव तक किसी ने भी सिर उठाने की फिर उनके रहने तक हिम्मत नहीं की।

गाँव से साइकिल पर टंकी बाँधकर कुछ लोग अँधेरे ही दूध पहुँचाने शहर की ओर चल पड़ते और संध्या के समय लौट आते। उनमें और गाँववालों में थोड़ा-सा फर्क था। वे सिर पर बाल रखते, उन्हें तेल लगाकर काढ़ते और कमीजें पहनते तथा उनकी चाल-ढाल, बातचीत में एक ऐसा नया-पन आ गया था जो बस्ते लेकर स्कूल जाते वक्त हम देखते तो ऐसा हमें के

आदर्श प्रतीत होते। तब हम यह नहीं जानते थे कि ये लोग शहर में फिर भी देहाती समझे जाते थे और उनका वह शहरी अधकचरापन केवल गाँव-वालों के लिये आधुनिक था। उन्हीं में श्यामा था जो सिर के बालों को खूब तेल डालकर चिकना रखता, शहर के नये ढंग के गीत गाता जिन्हें सुनने का हमें बहुत चाव था। उसकी देह सुती हुई थी और पाँव में वह अँगरेजी बूट पहनता था।

हमें यह देखकर अत्यंत प्रसन्नता होती कि गाँव के ज्यादातर जवान लोग उससे ठिठोली करते और हम यह भी देखते कि गाँव की छोरियाँ जब सिर पर मटके धर कर, चलतीं और वह अपना गीत गाता रहता, वे उसके विषय में बातें करती रहतीं।

पर यह सब भी हमें अधिक याद नहीं रहा। हमें कोयल की बोली की नकल करने तथा निबौली बीन कर खाने या पुराने जमाने की बड़ी बावड़ियों में नहाने से ही फुर्सत नहीं थी।

अब जब सोचता हूँ, किस्सा कुछ यों जुड़ता है कि मुंशी दीनदयाल बूढ़े हो चले थे। उनकी नयी तीसरी शादी हुई थी, जिसके कारण एक दिन दरोगाजी और श्यामा में कुछ कहा-सुनी हो गई। गाँववालों ने कहा कि दरोगा था ही बुरा आदमी, पर कहा सबने दबी जुबान से। मुंशी दीनदयाल का पेशा झूठी गवाहियाँ देना था। पृथ्वीराज चौहान शब्द सुनकर बाण मारता था, पर मुंशी दीनदयाल बिना किसी तरह की भी जानकारी के मुद्दई को पार करा देते थे।

हमने देखा, कुछ दिन वे झेंपे-झेंपे से चले। एक दिन काका घर पर बातें कर रहे थे कि दीनदयलवा दरोगा के पास गया और कहा, मेरी बदनामी हो रही है, उसे किसी तरह रुकवा दीजिये। देखें, क्या होता है!

इसके बाद हम जब घूमने चले तब सोचा, आज जमीदार की बगीची में से पानी पियेंगे। इसमें कोई विशेषता नहीं थी, पर अब भी लोग शहरों

शहरों में यह खब्त रखते हैं कि हम तो बनारस वाले का ही 'पवित्र' पान खायेंगे।

वहाँ हम पानी तो नहीं पी सके, क्योंकि जमीदार साहब जो किसी भी तरह दरोगाजी से डील-डौल और रोब-दाब में कम न थे, दरोगाजी सेठ हाके लगाते हुए बातें कर रहे थे। जमीन पर मुंशी दीनदयाल रूबरू बैठे थे तथा कुछ हट कर तीन सिपाही आपस में बातें कर रहे थे। हमें डराने को इतना काफी था।

तभी जमीदार साहब ने हमें आवाज दी और कहा कि एक लड़का हवेली के भीतर जाकर पान लगवा लाये। सबने एक दूसरे को तरफ देखा। अंत में मैं ही गया। ठकुरानी ने धीरे-धीरे पान लगाया, धीरे से फुस-फुसाकर कहा—इलायची तो ले आ बेटा! ले...

उन्होंने मुझे पैसे दिये। मैं दौड़कर गया बाजार में श्यामा बैठे गीत गा रहे थे। इलायची ले भीतर गया और पान लाकर पेश किये।

दरोगाजी पान उठाया और दाँये हाथ से तंबाखू की चुटकी उठाते हुए कहा—ठाकुर साहब, जमाने को आग लग गई है। पर आप अगर मेरे साथ हों तो मैं अभी मजा चखा दूँ।

कैसी बात करते हैं हुजूर! मैं छोटा-सा आदमी—जमीदार साहब ने कहा—आपके खिलाफ जा सकता हूँ। फिर दीनदयाल तो मेरा अपना आदमी है। आपकी बदनामी मेरी बदनामी है। मैं तो उस साले श्यामा को दस जूते खड़े-खड़े लगवा देता, पर, आप ही फिर तकलीफ करते।

दरोगा जी हँसे। कहा—तो फिर आप देखिये।

उन्होंने पान मुँह में धर लिया। मैं इस समय अच्छा लड़का था। बूढ़ों के पास ही बैठ गया। यहाँ मैंने बड़े-बूढ़ों को इस तरह बैठते देखा था। सो इन बड़े आदमियों के निकट जब मैं बैठ गया, मुझे बिल्कुल याद नहीं

रही कि मेरे और साथियों का क्या हुआ ? वे कुछ देर शायद मुझे ईर्ष्या से देखते रहे और फिर चले गये।

उसके बाद दरोगाजी ने सिपाहियों को कुछ हुक्म दिया और जब सिपाही चले गये, जमींदार साहब और दरोगाजी ठठाकर हँसे। जमींदार साहब ने मुझसे कहा—जरा मलकुआ को तो बुला।

मलकुआ बैलों की सानी करने गया था। लिहाजा मुझे हुक्का भरवा कर लाने का काम सुपुर्द हुआ। जब मैं हुक्का भरवा कर लौटा, गाँव के तीन-चार नामी आदमी आकर एक खाट पर बैठ गये थे और मुंशी दीन-दयाल कह रहे थे—मैं इस गाँव में नहीं रहूँगा। गाँव के दो आदमी राजा होते हैं। जमींदार और दरोगा। जब इनमें जोर नहीं और...

जमींदार साहब ने डाँटा—क्या बक रहे हो मुंशीजी ?

गाँव के प्रतिष्ठित आदमी जिनमें बौरहे, तथा अन्य खाते पीते लोग थे। सब मूछों में मुस्करा रहे थे। मुंशीजी ने रुआंसे स्वर में कहा—मालिक, मेरी इज्जत का सवाल है। इस गाँव के शोहदे और लफंगे......

श्यामा ने क्रोध से चिल्ला कर कहा—खबरदार मुंशी जी, जमाना जानता है कि असल बात क्या है। पंच बैठे हैं। आप बोलें। साँच को आँच नहीं।

उसे दो सिपाहियों ने पकड़ रखा था। वह उनसे छूटने का प्रयत्न कर रहा था, पर, हरचरण हलवाई के यहाँ का मुफ्त का अधसेरा कुल्लहड़ रोज चढ़ा जाने वाले सिपाहियों से छूट जाना कोई खेल न था। वह तो सिर्फ दूध बेंचता था। गुस्से से उसका मुंह तमतमा रहा था।

मुंशीजी ने काँपते हाथ हिला-हिलाकर गिड़गिड़ाते हुए कहा—देखा सरकार, देखा आपने, कैसा टूटता है......

गाँव के नामी आदमी खामोश बैठे रहे। उसी समय चंदन नाई आया।

शायद वह बुलवाया गया था। पेटी उसके साथ थी। आते ही उसने पालागन कर और ठाकुर साहबों की पाँवचप्पी करने लगा। उसने एक बार पंगत की जूठी पत्तल उठाने के इंकार किया था उस दिन उस पर बुद्धि सुधार का प्रयोग हुआ था।

जब कुछ देर यह तू-तू मैं-मैं होती रही और बन्द नहीं हुई तब जमीदार-साहब ने कड़ककर कहा—क्यों बे श्यामा तेरी यह मजाल साले! हुक्मरान के खिलाफ़ बगावत करता है? अबे, सात पुश्तों से इस हवेली ने जवाब नहीं सुना आज तेरी चमड़ी उधेर कर धर दूँगा।

और सचमुच ही श्यामा की आवाज बंद सी हो गई। कुछ देर उसके होंठ फड़कते रहे, उसने सब तरफ देखा, सब लोग चुप थे। मुझे लगा अब वह रो देगा। किन्तु वह रोया नहीं। केवल जमीन पर बैठ गया जैसे चक्कर आ गया था उसने रिरिया कर कहा—मालिक, ऐसा अन्याय......

पर उसकी आवाज अधिक नहीं चली। जमाना कैसा भी नया हो। यहाँ तो वही हाल था। मैंने देखा, श्यामा की तरफ कोई न था।

जमीदार साहब को उठते देखकर दरोगाजी ने उनका हाथ पकड़ कर बिठाते हुए कहा आप भी क्यों नाराज होते हैं, छोड़िये, वह बदजात है। आप बदमाशी करेगा नतीजा पायेगा। हमें उसी आखिरी दिन के लिये तनख्वाह मिलती है, क्यों बौहरे जी?

बौहरेजी ने सिर हिलाकर मंजूर किया। उनके सिर का भारी पग्गड़ हिला। स्कूल के मास्टर साहब ने कहा—श्यामा! पागल हो रहा है?

श्यामा इस समय हार चुका था। उसने कातर नयनों से देखा। मुझे उस पर बड़ी दया आई।

तभी दरोगाजी ने कहा—जमाना ही बिगड़ गया साहब। पहले छोटे आदमी औक़ात से रहते थे। अब ये साइकिल पर चढ़ कर शहर क्या जाने

लहू और लोहा

आस्मान में रात का घना अंधियारा अब हल्का होकर धीरे-धीरे आते उजाले में घुलने लगा था। सुबह की ठंडी हवा भी इस घिचर-पिचर में कुछ नम-सी, कुछ-कुछ ना ठंडी-सी देह में लग रही थी। आस्मान का आखिरी तारा भी अब चलने लगा था।

चारों ओर निस्तब्धता छा रही थी। कभी-कभी कोई अपने बिस्तर पर से खाँस उठता था, और फिर झिल्ली जैसा सन्नाटा हवा पर तनने लगता था।

मजदूर बस्ती में लोग सो रहे थे। वे छोटे-छोटे घर, वह कोठरियों की बेबस जिन्दगी, इस समय आराम की आखिरी साँसें खींच रही थीं—जिसके बाद, जागते ही, परेशानियों का झोंका लगनेवाला था।

कुछ जो जाग गये थे उनमें कटोरी भी थी, जिसको जल्दी उठ जाने की आदत थी। कुछ आदत, कुछ खाँसी का रोग जिससे फेफड़े उसे मजबूर करते थे कि वह उठे। कुदरत ने आराम उसकी ज़िन्दगी से छीन-सा लिया था। वह खाँसती थी, कफ थूकती थी।

वह बूढ़ी हो चली थी, लेकिन आँखों में एक तीक्ष्ण चमक थी। प्रेमलता तथा अनेक मज़दूरों में काम करने वाले बाबुओं को मजदूर क्वाटरों में छिपाने में उसने बड़ा हिस्सा लिया था। वे नेता छिप कर ही रह सकते थे, क्योंकि अन्यथा उन्हें बिना वारंट गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया जाता।

आँखों के चारों ओर गड्ढे पर गये थे, जिनमें फंदा डाले बहुत-सी झुर्रियाँ लटकी हुई थीं। लेकिन उसका माथा कुछ चौड़ा था जिससे कभी-कभी उसे देखकर भ्रम हो जाता कि वह कोई मर्द है। उसकी मोटी आवाज जिसमें एक तीखापन था, चुभीली-सी सुनाई देती और फिर हवा में गूँज छोड़ जाती। वह चार बच्चों की मां थी।

एक बार जब बाबुओं की मीटिंग हुई थी, उसमें उसे भी बुलाया गया था। और भी कई मजदूरों के चुने हुए आदमी गये थे। वहाँ उनसे कहा गया था कि वे अपनी शिकायतें पेश करें ताकि लोग स्वयं उन्हें सुनें। वे बतायें कि शांति के नाम पर उन्हें कैसे ठगा जा रहा है।

उस मीटिंग में उसने 'माइक' पर भाषण दिया था, 'प्यारे भाइयों और बहिनों, हमारी तकलीफ़ बहुत बड़ी तकलीफ है जी। सो भाइयो और बहिनों सुनो और हमारी बिथा को समझो। अगर हम झूँठ-मूँठ कहते हैं सो आप फैसला ना करना जी। हम गरीब आदमी हैं रोटी की बात करते हैं...'

एक अधमैली साड़ी और हरा सस्ता खुरदुरा दुशाला-सा उसके बदन ढँके थे, माथा उठ गया था, हाथ की काँच की चूड़ी बज उठी थी।

वह कह रही थी—

'हम तनखा की बात करते हैं, तो हमारी शिकायतों पर मालिक लोग गुस्सा होते हैं। और तुम मोटे होते हो तो क्या हमारे बच्चों को भूखा मरना पड़ेगा......'

निहायत साफ बात थी। कोई बड़ा शब्द नहीं आया। न्याय और नीति को नीचे खींचकर इंसान की कचहरी में लाया गया था।

लेकिन एकाएक वह चौंक उठी। भारी-भारी बूटों की आवाज़ आ रही थी। उसने देखा और काँप गई।

फिर प्रेमलता के शब्द कानों में गूँजे, 'जब तुम्हरा संगठन ये लोग

झूठ बोलकर नहीं तोड़ सकते, तब फौजें भेजकर तुम्हारी हिम्मत तोड़ते हैं। वे इस निजाम को तलवार के बल पर कायम रखते हैं।'

और फिर चारों ओर से बस्ती को सिपाहियों ने घेर लिया था। प्रेमलता की आवाज कानों में गूँज रही थी। पहले कटोरी इसे नहीं समझी थी, पर आज समझ में आ गया है—साफ साफ समझ में आ रहा है।

मिल का भौंपू बजकर शान्त हो चुका था। कोई भी काम पर नहीं गया। वह लाइन में इधर-उधर देखने लगी।

एक जमाने में यहाँ आदमी चुपचाप घिसा जाता था और वह यह भी नहीं जानता था कि यह उसके ऊपर होता हुआ अत्याचार था, क्योंकि इस दुनिया में यह अत्याचार रोजमर्रा का हिसाब हो गया था। नीति और न्याय की कोठी इसी बेईमानी पर कायम की गई थी।

कटोरी ने देखा और समझा। अभी कुछ दिन पहले सात आठ सिपाहियों को मज़दूरों ने भगा दिया था, क्योंकि वे किसी मजदूर नेता को गिरफ्तार करने के लिये तलाश करने आये थे। जब वह नहीं मिला तो सिपाही खिसियाकर गालियाँ देने लगे।

कुछ देर तो वे सुनते रहे, किंतु जब सिपाहियों का हौसला सीमा पार करने लगा तो उन्होंने उनको पकड़ लिया और धक्का देकर लाइन के बाहर कर दिया।

कटोरी की समझ में उजाला छाने लगा। यह हड़ताल का जवाब था। पहले मजदूरों में भीतरी जासूस पैदा होते थे, पैसा पाकर भाइयों के सर तोड़ते थे, सभाओं में ईंटे फेंकते थे, अब उन सब की पोल खुल गई थी और जान-बूझकर फूट डालनेवाले सबकी घृणा के पात्र बन गये थे।

'पुलिस न आती तो मालिक क्या करते?' प्रेमलता ने ठीक कहा था, 'हुकूमत उनकी है, फौज उनकी है, पुलिस उनकी है······'

कटोरी का हृदय उस कीड़े की तरह छटपटाने लगा जो उड़ते-उड़ते किसी चीज से टकरा कर उल्टा गिर जाता है और सीधा होने के लिये जी तोड़ कोशिश करता है।

अब न कोई अन्दर से बाहर से बाहर जा सकता था, न कोई बाहर से भीतर आ सकता था। चारों तरफ से सिपाही ऐसे खड़े थे जैसे जानवरों को घेर कर कटीले तार लगा दिये गये हों—जैसे वे गाय, या भेड़ें हों, जिनको खो जाने का डर हो।

सिपाही मजूरों में से उन लोगों को चुन कर ले जाना चाहते थे जिनमें इतनी अक्ल थी कि वे लुटेरे की असली शक्ल पहचान कर सकें। उन्हें मिटा देना ही ठीक था।

मजदूरों में जाग पड़ गई। वे घरों से निकल-निकल कर बाहर आने लगे। कुछ स्त्रियाँ चीखने-चिल्लाने लगीं। पर कुछ ही देर में वह आवाज सिसकियों में बदल गयी। कैसे भी रहते थे, भूखे नंगे, पर जिंदा तो थे। आज वह हक भी छीना जा रहा है क्योंकि वे अपने आपको इंसान बनाना चाहते हैं।

कुछ लोग बीच में इकट्ठा हो गये। वे सहमे-सहमे-से आपस में फुसफुसाते हुए बातें करने लगे। रोज ही सिपाही आते हैं। कहीं न कहीं रोज ही तलाशी होती है, रोज ही तकरार होती है। दिन-रात मुसीबत लगी रहती है।

राम भरोसे अधेड़ आदमी था। उसके बदन पर इस समय एक कुर्ता था। पाँव नंगे थे। सिर पर अँगोछा लपेटा हुआ था। सुदृढ़ देह थी। उसको देख कर लगता था कि वह एक महत्वपूर्ण आदमी है, जो आन के लिये मर सकता है।

वह क्षण भर घूरता रहा। फिर उसके होंठ उसकी मूछों में काँपने लगे जैसे जिसकी आशा थी वही होकर रहेगा। उसने धीरे से पास खड़े सुक्खन से कहा, 'डराने आये हैं।'

सुक्खन समझा। उसने आँखों की तेरेर से उसकी बात को स्वीकार किया।

धूप की पहली किरणों में बंदूकों की नलियाँ चमकने लगी थीं। अब सिपाही करीब आ रहे थे। उनकी बन्दूकों के मुँह जैसे कोई कातलि आँख थी जो घूर रही थी। मौत का-सा भीषण भय अब उनकी चमक से आँखों में उतरने लगा था। भारी बूट जमीन पर गूँज रहे थे।

रामभरोसे की चुनौती भरी आँखों में गुस्से की झलक थी। सुक्खन ने देखा, उसका सीना विक्षोभ से फूल कर दुगुना हो गया है।

—२—

निकट आकर सिपाही रुक गये।

कठोर चेहरे का एक दरोगा आगे बढ़ा। उसकी तनी हुई मूछों ने उसके होटों पर एक घनापन ऐसे छा दिया था कि उसके भीतर का मनुष्य जैसे खो गया हो। वह हट्टा-कट्टा आदमी था। सिर पर चमकता सुनहला झब्बा लटक रहा था और उस पगड़ी में से ऐसे दिखता था जैसे लाल चिलम में से अंगारों की झड़ी लग गयी हो। दरोगा निकट आ गया और सुक्खन को घूरने लगा। उस दृष्टि की शक्ति से शहर के बहुत से लोग काँप उठते थे।

सुक्खन निर्भय खड़ा रहा। उसने उसे ऐसे देखा जैसे वह एक खूनी परिन्दे को देख रहा हो। उसे विश्वास था। वे लोग जो यहाँ छिपे हुए थे, भाग चुके थे।

उसे अब भय नहीं था। केवल प्रेमलता शेष थी। पर क्या कर लेंगे यह लोग। देख-दाख कर चले जायेंगे। कुछ नहीं मिलेगा इन्हें।

दरोगा उस दृष्टि से चिढ़ गया। सुक्खन ने देखा—दरोगा के हाथ में एक छपा हुआ पर्चा जिसे उसने खोल कर पढ़ा, 'तनखा में कटौती न की जाय। पिछली हड़ताल में जो मजदूर गिरफ्तार किये गये थे, उन सबको काम पर रखा जाय। रूई अच्छी दी जाय। हमारे नेताओं को जेल से रिहा किया जाय...'

पढ़ते-पढ़ते वह हँस उठा। उस हँसी में घृणा थी, अपमान था, और सबके ऊपर एक तिक्त व्यंग था जैसे तुम और यह हौसला?

उसने गंभीर स्वर में पूछा, 'इसीलिए हड़ताल की गयी है? पैदावार कम की गई है?'

सुक्खन के होंठों पर मुस्कराहट छा गयी। उसने कहना चाहा, "आपको कम तनखा मिलती है। 'आप हमसे पूरी वसूल करके अपना काम चलाते हैं, हम किससे करें। हमारे पास भूख और गुलामी के सिवा है ही क्या?'

सीखे हुए मजदूर निडर थे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जो मन ही मन काँप रहे थे। उनके दिलों में दहशत छाने लगी थी। सदा के अत्याचारी दुश्मनों को देखकर उनके दिल पर साँप लोटने लगा था।

चारों तरफ पुलिस के सैकड़ों जवान खड़े थे। उनके हाथों में डंडे, लाठी, बन्दूकें, चमक रहे थे—इंसान का भेजा फाड़ देने वाले डंडे!

बूढ़े और बुढ़ियों ने देखा और डर से थर्रा उठीं। बच्चे फटी आँखों से देख रहे थे। उनके दिल में दहशत का भूत अब चिल्लाने लगा था; लेकिन बीच में खड़े मजदूर अभी भी डटे खड़े थे।

हिरादेई ने बुड़-बुड़ाकर कहा, 'मैं तो पहले ही कहती थी कि वे बड़े आदमी हैं। उनसे हम लड़ कर नहीं जीत सकते। मैया-मैया, बाप-बाप

करके ही जो मिल जाये, वही हमारे भाग का सही। पर तुम तो लड़ के लेनेवाले हो। कहीं ऐसे कुछ होता है...'

वह अपने बच्चे को छाती से चिपका कर भय से काँप उठी। उसकी आखों में डर हुमक रहा था।

किंतु मजीद ने उसे घुड़का, 'चुप रह। डरती है। जान ही तो लेंगे। प्रेमलता को क्या कोई कमी थी जो घर छोड़कर इस गंदगी में हमारे लिये मरती है?'

बात ठोस थी। हीरादेई चुप हो गई। मजीद आगे बढ़कर भीड़ में मिल गया। हीरादेई का कलेजा मुँह को आने लगा, 'यह नास पीटे पुलिस वाले। यह क्या किसी को देखते हैं? इनके भीतर क्या मानुस का हिया होता है? जिसको देखा उसी पर टूट पड़े!'

तभी दरोगा ने कड़क कर कहा, 'कहाँ है वह लड़की,—बोलो। एक एक का घर खुदवा दूँगा। उसे आज नहीं भागने दूँगा। देखते हो, मेरे साथ कितने आदमी हैं?—कमीने, बदमाश!'

यह कड़क निष्फल हो गई। तपिश बुझ गई।

दरोगा ने एक सिपाही को इशारा किया।

सब खामोश खड़े रहे, जैसे उन्हें कोई मतलब नहीं। वे किसी प्रकार की सहायता नहीं देना चाहते। ज्वान-ज्वान मजदूरों के चेहरों पर प्रतिवाद झलक रहा था, जैसे कोई सहयोग नहीं मिलेगा।

सिपाही ने मुन्नू लाल की गर्दन पकड़कर धक्का दिया और बोला, 'बता सूअर, बता हरामजादे...'

पर मुन्नूलाल चुप रहा। सिपाही ने उसके मुँह पर इतने डंडे मारे कि वह खून थूकने लगा। दाँत टूट गया। मज़दूर खूनी आँखों से देखते

रहे। उनकी आँखों में एक दृढ़ता थी। वे घूर रहे थे—जैसे अगर इंसान को इंसान समझना तुम्हें नहीं आता, तो वे सिखा सकते हैं।

दरोगा सहम गया। उसने चिल्लाकर कहा, 'चार्ज! लाठी चार्ज!'

लाठी चार्ज होने लगा। कुछ देर मजदूर अकड़कर खड़े रहे, मगर उन सैकड़ों लाठियों के सामने घुटनें लड़खड़ा गये। औरतों पर जब लाठियाँ चलने लगीं, हवा में खून पुकारने लगा, बच्चे सहमे हुए से चिल्लाने लगे, किंतु नादिरशाही हाथ उठकर नीचे नहीं झुका। कुछ मजदूर भाग-भागकर अपने घरों में घुसने लगे। उनको भागते हुए देख कर दरोगा गरज उठा, 'पीछा करो।'

सिपाही लाठी उठाकर पीछे दौड़ने लगे। उन्होंने अपनी बंदूकों के कुंदे से मारकर कई लोगों का सिर फाड़ दिया। उनकी कराहों से बस्ती गूँजने लगी।

पुलिस की लाठियों और जूतों की आम रियायत बढ़ती जा रही थी। जो औरत सामने आ गई, उन्होंने उसे ठोकर मारकर सामने से हटा दिया और मर्दों को पकड़ पकड़कर, उनके सिरों पर लाठी मार-मारकर उनकी शक्ति क्षीण करने के लिए भयानक प्रहार करने लगे।

कटोरी कराह उठी। चोट खाकर वह नीचे गिर गई थी। सिर से खून बह रहा है। वह कहाँ गिरी, कुछ याद नहीं रहा।

वह कुछ सँभलकर सिर पकड़ रही थी, तभी सामने देखा। एक लड़की झटके से गिरी। सिपाही ने बूट से उसकी छाती को कुचल दिया। लड़की के मुँह से एक घिरघिराती आवाज निकली।

रामभरोसे के सिर से भी खून गिर रहा था। वह खड़ा था, नारे लगा रहा था। वह डरा नहीं था। सब गिर जायेंगे वह नहीं गिरेगा। अगर वह मुर्दा भी हो जायेगा तब भी जालिम उसे जिंदा समझकर ऊपर संगीन चलाता रहेगा।

फिर पुलिस कोठरियों की तलाशी लेने लगी। बेतरतीबी से सामान उठा-उठाकर बाहर फेंका जाने लगा। जो मजदूर रोकता था, उसे वे कठोर चेहरे चिल्लाकर कर घूरते, और डंडे मारकर बाहर धकेल देते। औरतें निकल-निकलकर बाहर भागतीं—जैसे घर में कोई शेर घुस आया हो।

दरोगा दूर खड़ा सिगरेट पी रहा था—निश्चिंत, निर्भय...

कटोरी नीचे का होंठ दाँतों में भींचकर देख रही थी। सुक्खन की बन्द कोठरी का ताला तोड़ा जाने लगा। सुक्खन कहीं गिरा पड़ा है। मेट उस कोठरी के आगे खड़ा-खड़ा बातें कर रहा है। ताला टूट गया। सिपाही भीतर घुस गये।

दो सिपाहियों ने प्रेमलता को खींचकर बाहर निकाला। दरोगा तेजी से उधर चल पड़ा।

प्रेमलता ने चिल्लाकर कहा, 'कोई परवाह नहीं!' काम न रोकना। अगर जिंदा रही तो फिर आऊँगी। 'इन्कलाब...'

सहमी हुई आवाज ने जबाब दिया, 'जिंदाबाद!'

—४—

कटोरी उठी। उसने आँखें फाड़ कर चारों ओर देखा। अब चारों तरफ आदमी भाग नहीं रहे हैं। कई घण्टों के बाद अब कुछ शान्ति छाई थी। अब बड़े-बड़े जूतों की वह डरावनी आवाज गूँजना बन्द हो गया है। अब उन खौफनाक हथियारों की खडर-खडर सुनाई नहीं देती।

अब वह पुलिस की भीड़ चली गयी थी। वे जो बगावत के यानी अपनी रोटी के लिये उठने वालों के नेता मजदूर थे, उन्हें पुलिस गिरफ्तार करके ले गयी थी, ताकि उन्हें जेलों में डाल कर सताया जाये, उनके घर वाले भूखे मरें और वे माफी माँग माँग कर कुत्तों की तरह छूट कर लौट आयें।

उनमें मुन्नूलाल, रामभरोसे, मजीद, सुक्खन और भी न जाने कौन-कौन थे। उनको कहा जाये कि पेट के लिये जिंदा रहने वाले कीड़ो, अगर जिंदा रहना चाहते हो तो हमारे बैलों की तरह कोल्हू में पिसते जाओ, वर्ना तुम्हें गोली मार दी जायेगी।

तभी कटोरी चली। सब लोग डरे हुए देख रहे हैं। सिरों से खून बह रहा है जैसे बगावत एक खून का जोश है, जिसे लाठियों और बन्दूकों से मार कर बाहर बहा दिया जा सकता है, जैसे खून कम कर देने पर इंसान जानवर की तरह गुलामी करता रहेगा।

हीरादेई खामोश बैठी थी। उसकी पलकें स्थिर थीं जैसे वह अपनी सारी चेतना खो चुकी हो। उसकी आखें आसमान की तरह सूनी थी। उनमें न ममता थी, न किसी अतीत की सुलगन। कुछ नहीं। केवल बटन-सी आँखें।

उसके सामने उसका बच्चा था। वही दुधमुँहा बच्चा—खून से लथपथ। वह रोना चाहती थी, पर जल्लाद की सिर पर लटकती तलवार ने उसे दहशत के रस्सों से बाँध रखा है, जिसके बीच से माँ की ममता कभी आह बन कर हलक से निकल जाती है, बगावत कर बैठती है।

मौत की भयानकता उस घायल जिंदगी पर पहरा दे रही थी। अब वह बच्चा नहीं रहा, क्योंकि उसके बड़े होने में खतरा था। वह भी अपने बाप की तरह लड़ता और...

उसी समय सबने देखा—सफेद खद्दर की टोपियाँ लगाये कुछ नौजवान तिरंगा झण्डा लेकर आ पहुँचे। और ऐलान करने लगे, 'भाइयो, हमें तुम पर हुए अत्याचार से सख्त हमदर्दी है, लेकिन जब बच्चा बुरी सोहबत में पड़ जाता है तब उसे सुधारना अपना फर्ज होता है। अगर आप हमसे कहते तो सरकार आपकी मदद करती।'

कटोरी के होंठ घृणा से काँप उठे। यह लोग वही थे जो बड़े-बड़े

सेठों की मोटरों में घूमते थे। कुत्ते—गुलाम—फूट डाल कर मिठाई खाने वाले !

उसके मन में आया कि वह चिल्ला-चिल्ला कर दुनिया को सुना दे कि यही वे लोग हैं जो उसके दाँतों में से रोटी छीन कर ले जाने वाले हैं। हमें नहीं चाहिये इनकी हमदर्दी।

किंतु ये सब न कह कटोरी ने पूछा, 'आप कहाँ रहते हैं ?'

यह एक निरर्थक प्रश्न था। उसका मन अपने आप उचाट खा रहा था। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी। उसके कानों में प्रेमलता के शब्द गूँज रहे थे। ये लोग उसे बदनाम करते थे।

मजदूर डर से काँप रहे थे, औरतें अभी तक सिसक रही थीं। एकाएक कटोरी हीरादेई के बच्चे को उठा कर कह उठी, 'लो, यह ले जाओ। मेरा बेटा तुमने मार डाला है...।'

उसकी फटी आँखों में एक पागलपन-सा छा गया था। स्वर दृढ़ था जैसे सब डर जायें पर वह नहीं झुकेगी।

'तुमने आकर कत्लेआम किया है तो ले जाओ, इस बेगुनाह की लाश को, जिसको देख-देख कर तुम अपने बँगलों में डरते रहो, क्योंकि सबके दिन एक से नहीं रहते। वह वक्त आने वाला है जब तुम्हें इस खून का जवाब देना होगा। जब खून लोहे में लगता है तब वह जुल्म बनता है, पर जब लोहा खून में उतरता है उस समय वह लोहा बनने लगता है—वही पानी जैसा खून लोहा बन जाता है।'

मुफ्त इलाज

—१—

नाटा कद, छोटी आँखें, छोटे छोटे मगर मोटे हाथ पाँव यहाँ तक कि हथेली की उल्टी तरफ भी माँस, जिसके कारण हाथ की उङ्गलियाँ और भी छोटी दिखाई देतीं, शरीर पर अधमैले, या घर के धुले जैसे साफ कपड़े—सिर्फ एक कमीज घुटनों तक, एक ढीला पाजामा, पाँव में स्लीपर और सिर के मशीन फिरे बालों पर ऊंची बाढ़ की टोपी। हाथ और गले में काले डोरों के गंडे। घिरघिरी आवाज, मुँह पर करीब-करीब रुपये की मोटाई जितनी दाढ़ी। दाँतों में पानों की पीत का रंग, वही नवाब था। उसके चेहरे पर सदैव मुस्कराहट छाई रहती जैसे जीवन की परेशानियाँ उससे बहुत दूर थीं।

बिना किसी तकल्लुफ के जब वह चलता, उसके होठों से गीत फूटता और वह-वह चुनी हुई गजलें गाई जातीं जिनको सुन लैला और मजनूं के अमर किन्तु आज में सस्ते बना दिये गये प्रेम की याद आ जाती। नवाब गाते गाते मस्त हो जाता। वह यह भूल जाता कि वह सड़क पर है और फिर कान पर हाथ रखकर गाता और उसकी मोटी, भारी, चपटी आवाज पहले गुर्राती और फिर हिलती और अंत में हवा की पर्तों में ऐसे सिमट जाती जैसे कुत्ते की टाँगों में उसकी पूंछ जिसका मुख्य अर्थ सामर्थ्य की कमीं और भय होता। और, नवाब जब खुलकर जमकर गाता तब हारमोनियम पर उसकी वही मोटी उङ्गलियाँ चलतीं और घण्टों स्वर उठता··काँपता, खो जाता।

—२—

नीम के दो पेड़ों की छाया में सड़क की तरफ पीठ किये, अर्थात् सड़क के किनारे के घरों के पीछे खपरैल वाले एक छोटे से घर के सामने दो-तीन गधे बंधे हुए हैं। किसी किसी लात उठाने वाले गधे के पैर—एक आगे का एक पीछे का मजबूत रस्सो से बाँध दिये जाते हैं। तो उस कुम्हारों के घर में आज इसी बात का कुहराम मचा हुआ था। अधेड़ उम्र का बाबू, जिसका आधा सिर गंज से चमक रहा था और जिसके चारों ओर घुंघराले बाल खूब बड़े-बड़े होकर छत्तरी की तरह फैल गये थे, अपने गधे के पीछे बेतहाश पड़ा हुआ था। उसके पड़ोसी सुक्खा कुम्हार ने देखा तो हंसा और मजाक करता हुआ बोला—आज तो बाबू पिछाड़ी अगाड़ी बाँधने में लगे हो ?

बाबू को खीझ आ रही थी। उसने हंस कर कहा—अमाँ ! ये तो अपना पुराना काम है...!

किन्तु बात पूरी नहीं हुई। सामने से आवाज आ उठी, 'आदाब बजा लाता हूँ भाई साहब।'

गधे की टाँगें बांधने की रस्सी स्वाभाविक रूप से ही बाबू के कंधों पर चली गई और उसने दाँत निकाल कर कहा—अक्खै ! म्याँ तुम हो ? आखिर सुध आई। कैसे पटक रिये ओ ? इत्ते दिन कहाँ रहे ? अबे भाई सुक्खे ! चचे को पहचाना ?

सुक्खा की पड़ी हुई पतली मूंछें; एक कुर्ता और ऊंची धोती कसे थे। उसने मुस्कराकर कहा—चचे सलाम। अब तो आना जाना ही बन्द कर दिया ?

उसके स्नेह सिक्त स्वर को सुनकर नवाब हंसे। उनके चौड़े दाँत उनके फैले हुए होठों से निकल आये जैसे कागज पर चिपके हुए टीन के बटन दर्जी के यहाँ पड़े रहते हैं।

इसके बाद जान पहचान के और थोड़े से लोग एकत्र हो गये। और नीम के पेड़ की छाया में नवाब के सामने हारमोनियम रखा गया। हारमोनियम तब की खरीद थी जब शायद वह चला ही चला था, यह उसके बाद किसी कवाड़िये के यहाँ के नीलाम से खरीदा गया था, क्योंकि नवाब को उसके ताल सुर ठीक करने में उतनी ही देर लगी जितनी किसी संगीत के आचार्य्य को तानपुरे के तारों को कसने इत्यादि में लगती है।

नवाब गाता रहा। पान, बीड़ी, सिगरेट, सब उसके सामने मुहैय्या थे। वह कभी कभी पान खाता और पीच थूकने को गर्दन मोड़ता, या फिर सिगरेट को सबसे छोटी उङ्गली और अनामिका के बीच दबाकर चिलम की तरह हाथों को बाँध कर दम खींचता और फिर गाने में उलझ जाता। चारों ओर प्रशंसक बैठे थे, वे हिन्दू थे, वे मुसलमान थे—बल्कि यह अङ्गरेजी ढङ्ग छोड़कर कहना चाहिये, वे मिट्टी ढोनेवाले, मटके कुल्लड़ बनानेवाले कुम्हार थे।

इसके बाद नवाब धर्म के गीत गाने लगा। जब उसने मर्सिये गाये, मुसलमानों की आँखों से पानी बहने लगा, हिन्दू लोग करुण और विचलित दृष्टि से देखते, अपने साथियों को समझाने का प्रयत्न करते और स्वर उठता जाता, जिसमें गधों की लीद की बदबू खो गई और घर के बीचों बीच गुजरने वाली खुली नाली का पानी भी गायब हो गया। औरतें अंदर सिसकने लगीं। बच्चों के मुँह खुल गये। एक लड़का एक के ऊपर एक रखे मटके से टकराया और दोनों ही चीजें गिरीं। किन्तु न नुकसान का किसी को ज्ञान हुआ, न लड़के ने ही रोने का साहस किया। इस समय बाबू की तर आँखों में से जीवन का समस्त उद्वेग पिघल-पिघल कर बहा जा रहा था।

'हाय हसन···' की करुण दिल दहलाने वाली आवाज कलेजे में डंक मारती हुई, लपट की फूंक मारती हुई, बाहर निकल कर टकरा कर नवाब

के गाने को ओर-ओर उकसाती, और देखते-ही-देखते नवाब पागल-सा हो उठा। उस पर उद्वेग और श्रम के चिह्न संगीत की मौटी धारा में गिड़-गिड़ाहट बनकर प्रकट होने लगे।

सारी सभा झूमती रही।

—३—

शाम के वक्त छोटी-सी खाट पर नवाब उसी नीम के नीचे बैठा था। वह थक गया था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद सिगरेट का दम खींचता और धूंआ वेग से बाहर फेंकता। इस समय उसे एक रुपया छः आने मिल चुके थे। इनके अतिरिक्त कैंची की सिगरेट के दो पाकेट भी थे। बाँये गाल में पान दबा था। वह कुछ गम्भीरता से सोच रहा था। सुक्खा अपने हाथ के काम समाप्त करके आ गया और खाट पर ही बैठ गया। बाबू गया हुआ था। जिस वक्त वह कंधे पर सड़क के नल से भरा हुआ घड़ा लेकर भीतर दालान में घुसा उसकी बीबी ने धीमी आवाज में पूछा, 'रात को खाना खायेंगे ?' नवाब और सुक्खा ने भी सुना। दूरी ही कितनी थी !

'अमे क्या करना है ?' नवाब कह उठे, 'जाके जरी-सी बाजार से कलेजियाँ लेते आओ। चले जाओ यार तुम सुक्खे ! बस ज्यादा नहीं जरा आपके के लिये ' ' 'समझे ' ' !

बाबू ने कहा—खा भी तो यार क्या बात है ? आज बिना खाये न जाने देंगे।

उस स्नेह से नवाब गद्‌गद् हो गया। भीतर से बाबू की बूढ़ी माँ ने भी दाद दी। नवाब ने प्रसन्न हो कर कहा—इस कहे में जो मजा है, जो मुहब्बत है, वह क्या मुझसे छिपी है, पर आज तो म्यां कलेजी चलने दो, समझे, कलेजी।

तब सुक्खा चला गया। उसकी प्रतीक्षा में बाबू भी अपनी पजामा घुटनों तक चढ़ाकर बैठ गया। और जब बोतल नहीं खुली तो इधर-उधर बातें होने लगीं। मँहगाई बढ़ गई है। नवाब उसमें पिस गया है। अब लोग पुराने ताल्लुकों को ताक पर रख कर बेमुरव्वत हो गये हैं। किसी से दो आने उधार लेने का भी जमाना नहीं रहा। सुक्खा के बच्चे अब कई हो गये हैं। किसी तरह गाड़ी खिच रही है। और नवाब ने निकाह कर लिया है।

बाबू ने चौंक कर कहा, 'और मुँह मीठा तक न कराया? कहाँ हुई? कब हुई। बताया तक नहीं?'

'गाँव में। हुई क्या, उधर पीर की शान में मेला जुड़ता है, वहीं, एक दिन मैं गया था। गाने का बुलव्वा मिला था मुझे। जिस वक्त मेरा गाना खत्म हुआ नकद साढ़े सात रुपये मिले। वैसे अब गाने की कीमत घट गई है। तो वह वहीं मिली।'

'हाँ' बाबू ने कहा। स्वर में उत्सुकता थी। 'फिर।'

'फिर क्या?' नवाब ने कहा—न उसके कोई आगू पीछे, न हमारे कोई पीछे आगू। हमने कहा कि चल शहर में रहेंगे। पहले तो कहती रही कि दो बार ऐसे ही धोखा उठा चुकी हूँ। मरद छोड़ जाते हैं।

बाबू की आँखें स्थिर हो चलीं। उसने बांये हाथ से खोपड़ी की गंज को सहलाया जैसे वहाँ की खाल खिच गई थी। नवाब कहता रहा—मैंने कहा कि मरद मिले होंगे तुझे बस। पर आदमी एक न मिला होगा। वह नहीं समझी। मैं उसे समझाता रहा। तू बैयर तो है पर इंसान भी है। दहकानी है वह, समझी ही नहीं। पर फिर चली आई।

'क्या काम करती थी वहाँ? जिसके पहले बैठी रही होगी उसे कुछ खर्चा देना पड़ा होगा?'

'कुछ नहीं जी, वह तो आजाद औरत थी, नाचती थी, गाती थी, कमाती थी, खाती थी...!'

तभी एक चिढ़ा हुआ स्वर सुनाई दिया, 'बेड़नी होगी!' बाबू की माँ ने भीतर के खटोले पर बैठे-बैठे कहा था।

'हाँ अम्मी, वही, वहीं, नवाब दाँत निकाल कर हँस रहा था।'

पेड़ की डाली से अब चाँद कट गया था। हवा के झोंकों में कभी-कभी पत्ते सुरसुराते और फिर झूमते हुए कुछ देर में खामोश हो जाते, जैसे कुछ देर हवा में झाड़ू सी लगती और फिर चाँद दिखाई देता, जैसे साफ सुथरा आइना हो। गधे चुपचाप कान खड़े किये सो रहे थे। उनके शरीर का कोई भी हिस्सा इस समय हिल नहीं रहा था। पड़ोस की बातचीत की आवाजें अभी डूबी नहीं थी और चारों तरफ के मकानों से घिरा वह स्थान अब चाँदनी में नहाने लगा था। केवल कच्ची पक्की भीतों की जड़ों में अंधेरा पानी की तरह भर जाना चाहता था।

(४)

उसी समय कोलाहल मच उठा। पर वे उड़ती हुई आवाजें थी जिनका कोई तारतम्य नहीं था। कुछ सुना अनसुना-सा वह कोलाहल मनुष्य के चिरंतन हाहाकर का प्रतीक बनकर कुछ समय तक उठता रहा। फिर झुकने लगा और फिर उसमें कोई नवीनता नहीं रही।

नवाब ने बोतल उठाकर आतुरता से सूंघ ली। बाबू कहा, 'जरा और ठहर लो।' तभी सुक्खा ने प्रवेश किया। उसके हाथ में कलेजियां थीं। उसने लाकर खाट पर धर दीं और बैठ गया। अपने लिये निकाल कर अलग दोने में रख लीं और बैठकर सांस पूरी करने लगा।

कुल्हड़ आ गये। नवाब ने हंसकर कहा सुक्खे! यार! आज बहुत दिनों में मौके पर आये हो। वर्ना वो जमाने जब जवानी थी; जब रोज नई-नई चीज सुनाई जाती थी, रोज पउवा खुलता था...!

बोतल अब खुली। उसके खुलते ही एक तेज गंध आई जिससे नथुने फूल उठे।

'सेर छाप है' सुक्खा ने कहा।

'तब तो तेज होगी।' बाबू ने दाद दी।

'कैसी भी हो म्यां, जिसने कलेजे में चीरा न लगा दिया, जिसने गले में लकीर न उतार दी, वह क्या कोई पीने की चीज है? आज कल मुझ से रोज सिर्फ अद्धाजुट पाता है, जिस पर वह बदजात घर में दिन रात लड़ती रहती है,' नवाब हंसा, 'और तुर्रा यह कि मैं लाया नहीं कि अच्छी तरह पहले आधी पी जायेगी, तब कहेगी, तुम शाहंशाह आदमी हो, तुम राजा हो…?

वे लोग पीने लगे। तेज चीज थी। ऐसी पड़ी दिमाग पर जैसे गर्मी में पत्थर की सड़क पर दौड़ते हुए घोड़े की जोर की टाप, जिसकी रगड़ से आग सी निकल आती है…!

कोलाहल बढ़ता जा रहा था।

'ए मुओं को क्या सूझी है?' बाबू की माँ भीतर से बर्रा उठी, झगड़ा करने को दिन काफी नहीं था?' वह स्वयं एक झगड़ा सा कर रही थी। यह नित्य का-सा कोलाहल नहीं था। इसमें जीवन के किसी पहलू पर भीषण वादविवाद था। तभी सुक्खा के एक लड़के ने हाँफते हुए आकर कहा—दादा ओ दादा!

'क्या है बे?' बाबूने पूछा। वह नशे की गुलाबी में झूम रहा था।

'एक औरत अपना बच्चा…!'

लड़का कह भी न पाया कि बाबू कि माँ गालियाँ देने लगी। यह नई बात थी। तीनों उठे और उस भीड़ में खड़े हो गये। देखा। एक घूंघट काढ़े स्त्री। लड़की सी। शायद पंजाबिन थी।

किसी ने चिल्लाकर कहा—ले जा अपना बच्चा यह कोई हस्पताल है? बड़े आदमी हो के ऐसे काम करते हैं? फिर बदनाम करने को हमारे बाड़े है.? जब पाप किया था तब न सोचा था कि···

उसने कुछ फोश बका।

नवाब ने मुँह की भाप एक व्यक्ति के मुँह पर छोड़ कर—अमें कौन है?

'पंजाबिन है। शरणार्थी। इनका पेसा ही यह है। मैं जानूं इसे।'

सुक्खा और बाबू ने देखा नवाब लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ा और उसने जमीन पर पड़े हुए बच्चे को उठा लिया। सब चकित से देखते रहे। नवाब उस बच्चे को देखकर कहने लगा, 'क्यों बेटे? अम्मा तो छोड़ चली अब किसके नाम को रोयेगा?'

उसका व्यवहार बिल्कुल पागलों का सा था। लोगों की उस पर श्रद्धा थी। वे सब उसे शराब के नशे में धत्त समझे हुए चुप हो गये। स्त्री रो रही थी। नवाब ने उससे मुड़कर कहा—इसे मुझे दे दो।

स्त्री लड़खड़ा कर बैठ गई जैसे वह सब कुछ सह सकती है। किन्तु यह नहीं सहा जाता।

'मैं समझता हूँ बीबी जी मैं समझता हूँ। माँ का दिल बहुत नर्म होता है।' और उसने आवाज उठाकर उपस्थित लोगों से कहा, 'अबे यारो! तुमने यह तक न सोचा कि यह कितना कठिन काम कर रही है। लड़की ही तो है बिचारी। गलती हो गई? हो गई, हो गई।'

उसकी बात सुनकर सबको विष्मय हुआ।

'वा भाई वा' मजीद कानमैलिये ने कहा, 'अब दुनिया में ये भी ठीक समझा जायेगा? हाय जमाने!'

'हाय जमाने', नवाब ने लड़खड़ाते हुए कहा, 'जमाने की न कहो प्यारे गुलबदन। जमाने में रोटी सोने के भाव बिकती है, बेटे। समझा? नया

जमाना है। क्या कहने ? अब बच्चे सड़कों पर मिलने लगे। वाह ! जाओ बीबी। तुम जाओ। तुम्हारा काम हो चुका। तुम्हारी शान बच गई जाओ। पर एक बात बताती जाओ।' उसने झुककर धीरे से पूछा, 'शौकिया था या मजबूरन ?'

औरत काँप उठी। उसने सिर झुका लिया। आज··वह शायद मर जाना चाहती थी। उस समय नवाब की काँपती आवाज उठी—अबे जाओ अपने-अपने घर। समझे ? क्या समझे ? जाओ अपने अपने घर। अब पुलिस नहीं आयेगी। समझे ? हाँ, नहीं आयेगी। यह बच्चा मेरा है। या खुदा ! मैं समझा था, मेरे औलाद नहीं थी। पर किस्मत में अभी तक इतना जोर था कौन जानता था ?

तभी किसी ने कहा, 'वा उस्ताद ! बच्चे के साथ माँ को भी लेते जाओ तो बिचारी का भला होगा।' सब हँस दिये। जब सब चुप हो गये तब नवाब ने फिर कहा—बेवकूफ ! गलती किससे नहीं होती। और भागी हुई तबाह औरत के पास चारा ही क्या था ? अच्छा तो यह नहीं हुआ पर मजबूरी का नाम सब्र है। क्या किया जाये ? जमाना ही ऐसा है। समझे ? औरत की कोई जात होती है ? जिसका बाप और खाविंद मर गया वह क्या करे ? अबे यह इलाज है, हर्र लगे न फिटकिरी··मुफ्त··

वह कुछ और कहना चाहता था, पर जैसे उसके पास शब्द नहीं थे। लोगों ने समझा वह नशे में धत्त थी। किन्तु उसके भीतर तूफान चल रहा था। हाथों पर नई जिन्दगी का बोझा उठा लेना क्या सहज है ? यह मांस का लौंदा कल बढ़ेगा और इसके साथ की बदनामी इसके साथ भूत बनकर मंडराया करेगी और यह बेकुसूर सदा के लिये कुत्तों की तरह देखा जायेगा। नवाब ने फिर कहा—गनीमत है इसने बच्चे की लाश नहीं फेंकी। वर्ना वह गुनाह होता। वह इंसान का खून होता। अबे सोचो। तुम्हारा बच्चा, क्या ऐसा ही बेगुनाह नहीं होता··!

पंजाबिन ने उसके पांव पकड़ लिये। 'हैं, हैं,' करता हुआ नवाब पीछे हट गया—छूती हो...!

और शराबी झूमने लगा था। सुक्खा और बाबू बची खुची कलेजियाँ खाने के लिये आतुर हो रहे थे। भीड़ छट चली थी। औरत उठी, उठकर चली और भीड़ उसे राह देती गई। वह कुछ देर में गली से निकल कर ओट में हो गई, गायब हो गई। कोई नहीं पहचान सका वह कौन थी। सुक्खा और बाबू ने देखा नवाब बच्चे को हाथों में लिये अब जा रहा था। वे लौट आये।

—५—

आधी रात के वक्त जब नवाब ने अपने घर का द्वार खटखटाया उसकी बीबी ने बड़बड़ाते हुए द्वार खोला। वह ऊँघ रही थी। किन्तु ज्यों ही नवाब ने बच्चे को चुमकारा वह चौंकी। और फिर कपाल पर हाथ मार कर बोली—अये हये शराबी! ये किस खटखनी का जना ले आये?

वह और भी बड़बड़ाती रही किन्तु नवाब ने मुस्कराकर कहा—एक बेबस जान और सही।

बीबी की शंकाएं काभी बढ़ चुकी थीं। नवाब ने उसे झूमते हुए सारा किस्सा सुनाया। सुन कर स्त्री ने कहा—लाओ! मुझे दो बाहर फेंक आऊँ।

नवाब चिढ़ गया। उसने चेत कर कहा—अरी छुट्टो बीबी! हाजमे की गोली का मजा वह जाने जिसे कभी कब्ज हुआ हो। तुम तो मरद हो समझीं? कभी तुम्हारे हुआ है कुछ? बच्चा नहीं जायेगा। आदमी के बच्चे इज्जत से पलते हैं। सात घर तो बिल्ली के बच्चे बदलते हैं। वह हँसा। उसने फिर कहा, 'तुझे क्यों आग लग रही है?'

'आग लगे तुम्हारे मुँह में', स्त्री ने फिर कहा, 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा।'

'ऐसे ही सही, मेरे नये बच्चे की माँ! एक दिन तुझे लाया था, आज इस बच्चे को ले आया हूँ। जिसे अपना मान लिया, वही अपना है।'

वह शराब के नशे में चूर चूर, झूम रहा था, हँस रहा था।

दूसरे दिन जब बाबू और सुक्खा नवाब के घर पहुँचे उन्होंने देखा बच्चा चिथड़ों में पड़ा है। गोरा रंग है। गदबदा है। अच्छा है। वे बैठ गये। सुक्खा ने कहा—तो ले ही आये?

'किसके बिरते छोड़ आता?' नवाब ने कहा, 'अपने घर में कौन बिरादरी है, कौन सरकार है? गुल्लू की माँ ही...!

'गुल्लू कौन?' बाबू ने बीड़ी सुलगाते हुए पूछा।

'यह पड़ा तो है गुल्लू', नवाब ने मुस्करा कर कह, 'इसका नाम मैंने गुल्लू रखा है। ठीक है?'

घरबार हीन अधेड़ की वह तृष्णा अत्यन्त दयनीय थी। बाबू ने पूछा—इसकी माँ भी यहीं है?

नवाब हँसा और हसरत की नजर से अपनी स्त्री की ओर देखने लगा।

विडंबना

लखनऊ से गाड़ी शाम को चली। इतनी भीड़ थी कि मनमोहन को हिलने की भी जगह नहीं मिली। डिब्बे में लोग या तो गाँधी जी की बात करते थे या औरतों की। और जैसे जितने विषय हैं वे उनके अपने हैं उन्हें छूना सभ्यता के विरुद्ध है।

डिब्बे में बैठे-बैठे मनमोहन को लगा जैसे साँझ का धुँधला प्रकाश रात के निविड़ अंधकार में तेजी से घुसता चला जा रहा है। भीतर कितनी गर्मी थी। प्राणों में कसक उठती है, मन बचना चहाता है, किन्तु खिड़की से बाहर झाँकने तक की कोई राह नहीं। भीतर घुप्प अंधेरा छा रहा है। लोगों ने खिड़कियों पर पीठें अड़ा रखी हैं। दरवाजों के सामने बड़े-बड़े बक्सों के ढेर पर एक न एक आदमीनुमा जानवर बैठा ही है जो जरा-सा छूते ही काटने को दौड़ पड़ता है, मनमोहन निराश होकर देखता है। कुछ भी नहीं दीखता। बातें हो रहीं हैं। किंतु मन नहीं लगता।

'कहाँ जा रहें हैं आप?'

प्रश्नकर्त्ता ने उस ऊबा देने वाले सन्नाटे को तोड़कर मनुष्य बनने का प्रयत्न किया है। पशु भी साथ रहते हैं, किन्तु परस्पर बोलते नहीं। इनमें से किसकी अपनी व्यथाएँ नहीं। किसकी हड्डियों में तपिश का जहर नहीं! लेकिन सब हँसते हैं जैसे हँसी की सफेद झूठ सारे जीवन की घोर कालिमा को ढाँक लेगी।

उत्तर दो तीन व्यक्तियों ने एक साथ दिया। अंधकार में यह निश्चिय नहीं हो सका कि किससे प्रश्न पूछा गया था। वास्तव में किससे प्रश्न हुआ है जो कोई भी उत्तर दे सके। इस भ्रम का उत्तर था कोलाहल।

मनमोहन ने एक लम्बी साँस खींची और धोती उठाकर पसीना पोंछा। बगलवाले व्यक्ति ने तड़पकर कहा—ए जनाब! यह वर्जिस घर कीजियेगा। यहाँ आँख कुचा दी।

मनमोहन को मन ही मन हँसी आ गयी। अंधकार ही समस्त संघर्ष का मूल कारण है।

'जी मैं कानपुर···'

'टूंडला तक जाने का विचार है···'

'यहीं आगरा···'

कानपुर की मिलें। टूंडले का जंक्शन, आगरे का ताजमहल और पेठा···

मनमोहन फिर मन ही मन हँसा।

'कानपुर तो गाड़ी चार घंटे ठहरेगी न?'

'सवा चार घंटे।'

'जी।' एक व्यंगमिश्रित उत्तर। इतनी सतर्कता होने पर ही जीवन कौन अच्छा है? तुम क्या भीड़ में नहीं हो? तुम भी क्या पिस नहीं रहे हो?

और फिर मनमोहन को विचार आया। तीसरे दर्जे में तो शायद आदमी अधमरा ही हो गया होगा। है कहीं ड्योढ़े में भी साँस लेने की गुंजाइश। क्या जमाना है। कमबख्त औरतों ने तो इधर बैठना ही छोड़ दिया। सफर की आधी दिलचस्पी तो यों समाप्त हो गयी। जो बैठती है वह औरत की शकल का पठान ही होता है। कंजर भी रोटी के पीछे इतना

नहीं झगड़ते होंगे जितना वे जगह के लिये मरते हैं। और है ही कितनी देर की बात ? यह लाइन अच्छी है। इसमें उतने फौजी नहीं होते, वर्ना वह लात पड़ती है कि लीडरों में पड़ जाय तो एक दिन में एका हो जाय और सारा मामला नील हटने के पहले ही तय हो जाय।

एकाएक उसका ध्यान टूटा । एक पतली आवाज ने कहा—जी, मैंने इसी साल एम० बी० बी० एस० की परीक्षा पास कर ली है।

'किसने, आपने ?' एक और शब्द हुआ।

'जी हाँ, मैं गार्ड हूँ।'

मनमोहन चौंक गया। सिगरेट मुँह से लगाकर जलायी और दियासलाई को जरा देर तक हाथ में रखकर इधर-उधर देखा।

आवाज आई। आप तो डिब्बे में बैठने ही न देंगे।

दियासलाई बुझ गयी। किसी ने खाँस कर कहा—आजकल के लड़के सिगरेट के बिना जी सकेंगे ?

कुछ हास्य, कुछ अर्ध विक्षिप्त नीरवता।

कहने वाले ने जैसे हवाई जहाज के गुजरने तक विश्राम किया। प्रतीक्षा थी कि यह कोलाहल आगे बह जाय । और बहने को क्या नहीं कहा ! इस समस्त ब्रह्मांड में प्रत्येक क्षण बहा जा रहा है, भारतवर्ष बहा जा रहा है, रेल बही जा रही है, लेकिन कौन किधर बहा जा रहा है, इस पर सब के भिन्न-भिन्न विचार हैं। यह बहना ही यदि जीवन का चिन्ह है तो क्या जीवित नहीं है ? रेल की एक लकड़ी भी धीरे-धीरे बदल रही है ठीक ऐसे ही जैसे कि करोड़ों आदमियों का जीवन अपने आप बदलता चला जा रहा है। इन करोड़ों का अपार दुःख यदि रेल का सा हाहाकार ही है, तो क्या उसके लिए कोई स्टेशन नहीं है ? क्या यह करोड़ों व्यक्तियों की यात्रा एक बिना टिकट सफर का भय ही है या उसमें जो जगह पाने की तृष्णा है उसका कोई अधिकार भी उनके पास है ?

अधिकार ! मनमोहन ने अंधकार में इधर-उधर देखा।

प्रश्न हुआ आप गार्ड हैं और एम० बी० बी० एस० भी ?

'जी, मैं होम्योपैथ हूँ।'

सारा डिब्बा ठठाकर हँस पड़ा। अर्थात् रोग के साथ इनकी रोगी से भी उतनी ही दुश्मनी है।

मनमोहन ने सोचा कितनी विकृत अस्वास्थ्यकर है यह जीवन की प्यास। मनुष्य कुछ करना चाहता है; किंतु कर नहीं पाता, क्योंकि वह अवरुद्ध है।

डाक्टर की पतली आवाज फिर गूँजी—मैं आपको स्टैथेस्कोप दिखला सकता हूँ।

किंतु अंधकार ने हिलकर इस सत्य को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसके बाद डिब्बे में असह्य नीरवता छा गयी। एक अनवरत घोष हो रहा है; लोहे पर लोहा रगड़ा खा रहा था। कितनी कटुभाषिनी है यह फिसलन भी। किंतु यह निःस्सीम शब्द भी शाँति बन गया है

सारा संसार आज डाक्टर बन बैठा है। लेकिन इस जहर का साहस है कि कहीं से भी उतरने का नाम नहीं लेता...

काश, उजाला होता तो डाक्टर अपना स्टैथेस्कोप दिखलाते। लेकिन इस समय वे ऐसे ही मन मसोसकर रह गये जैसे प्रेमी सौ कसमें खाकर भी प्रिया को विश्वास न दिला पाने पर छटपटा कर रह जाता है कि वह उसे अपना दिल चीर कर नहीं दिखा सकता।

और अंधेरा ! कितना भयानक ! जैसे मानव की घृणा हो, एक भीतर ही भीतर गलकर फैलने-वाला घाव हो। न धोया जा सकता है, न चेतना में उसका संग ही हृदय का तारतम्य झेल सकता है। जिसमें बचने का उपाय एक चीरा है जो अपने आप में इतना भयानक है कि उसके लिए अपने आप औषधि सूंघकर मूर्छित होना भी श्रेयस्कर है।

क्योंकि वे गुलाम हैं, सरकार ने गुलामों की रोशनी बुझा दी उसने रोटी सामने रखकर कहा है न खाओ, यद्यपि रोटी का आटा हमी ने दिया है। उसने कहा है सफ़र कम करो। हम नहीं मानते, दुख उठाते हैं। आजाद होने की यह चेष्टा ही हमारे दैनिक जीवन का, हमारी अन्नत परंपरा का, अभिशाप है, दुस्साहस है........

रेल एक झटके के साथ रुक गयी है। न जाने लोग किधर से घुसे आ रहे हैं...जैसे मच्छर हों, जैसे मक्खियाँ हों...

डिब्बे में अभी भी कोई कोई बड़बड़ा उठता है। जैसे मनुष्य अपने अधिकार को तनिक भी नहीं त्यागना चाहता। आज वह पूर्ण रूप से इतना स्वार्थी हो गया है कि उसके लिए केवल एक शब्द है—कमीना। किंतु सत्ता की धारा आज कठोर पत्थरों पर लड़खड़ाती हुए बह रही है। उसके पास जैसे और कोई चारा नहीं।

डिब्बे में घुसने वालों के लिये भी न जाने कैसे उस भीड़ में अपने आप जगह हो गयी। मनमोहन को विस्मय हुआ। यह हिस्दुस्तान का डिब्बा है। इसमें सदा ही ऐसे लोग जबरदस्ती घुस-घुस आये हैं, और ऐसे ही जगह भी हो ही गयी है...इतिहास की यही भीरुता आज जातियों की एकता बन गयी है, जैसे मध्य कालीन व्यक्तिगत शौर्य्य (Chivalry) को हमने मूर्खता का नाम दे दिया है।

अंदाज से लग रहा है कि चारों ओर जो खड़े-खड़े यात्रा कर रहे हैं, या कहिये पैदल सफर कर रहे हैं उनमें से ही कोई गुनगुना रहा है ठीक। वही गीत जो मनमोहन ने एक बार लाखेरी के छोटे स्टेशन पर एक कुली को गाते सुना था। उस दिन ठंडी हवा चल रही थी! बरसात हो चुकी थी। बरसात तो अब भी हो रही है। अपने ही शरीर की दुर्गन्ध से मन मिचला रहा है। यदि अपना न होता तो कभी का छोड़ दिया होता। कितना दुर्बल है यह मनुष्य। मन की कैंचुली बदलेगा हजार। तन की एक

नहीं बदल सकता। यह भीख है या प्राणों की वह अनन्य भूत पराजय जिसमें पशुता की शक्ति की हीनता को मनुष्य ने एक भाषा का माध्यम होने के कारण मानवता कहा है और उसे श्रेष्ठ कहने के लिए सुरत्व की छलना भी उसके आगे फेंक दी है जैसे बालक दौड़ रहा हो गेंद के पीछे जो आगे बढ़ती जा रही हो ढुलकती, जा रही हो, पीछे बुलाती और, और······

'आपने देखा ! उफ् बड़ी गर्मी है।'

एकाएक मनमोहन चौंक उठा। यह बियावन में किसकी तान गूँज उठी। जैसे सहारा के रेगिस्तान में कोई मशक भरकर छिड़काव कर रहा हो।

डेढ़ पैसे का खून और सही। औरत की आवाज है।

दियासलाई को निकालने के लिये जेब की ओर हाथ बढ़ाया।

'भाई साहब।'

'जी फर्माइये।' कठोर स्वर से उत्तर मिला। फिर बगल वाले सज्जन ने कहा, 'हाँ तो क्या तय रहा दारोगा जी। हजार गाठों की परमिट (Permit) दिलवाइयेगा।

'जनाब वारफण्ड क्या देंगे ?'

'अच्छा हटाइये। हर गाँठ पर तीन-तीन रुपये।'

'तीन हजार !!'

'तो क्या हुआ,' हास्य, बड़ा बुरा हास्य।

'अजी हम लाला हैं। तीन हजार दूँगा, बीस हजार कमाऊँगा···'

एक ठहाका और मनमोहन ने फक से माचिस जलाकर देखा।

स्त्री के दाँत बाहर निकले हुए थे और उसकी आवाज में ऐसा फाह-शापन था जिससे मनमोहन के हृदय में एक घृणा सी काँप उठी जिसे वह

अपने आप दबा गया। 'हाँ' क्या अपने आप विचार ने लौटकर ठोकर मारी। आप का मतलब है कि जो सुन्दर नहीं उसे संसार को अपनी ओर आकर्षित करने का अधिकार ही नहीं? है क्यों नहीं? वह स्वयं ही कौन सुन्दर है? लेकिन जो कुछ नहीं है, उसे उस ओर हाथ नहीं बढ़ाना चाहिये।

तब भारत की माँग, एक अनुचित माँग है।

मनमोहन अपने आप लज्जित हो गया। अंधकार में किसी की आकृति नहीं है, क्योंकि आज छाया चिरसंगिनी नहीं रही, क्योंकि आलोक का खड्ग उसकी म्यान में डूब गया। यह छायाओं का विराट सम्मिलन ही अंधकार बन गया है, जैसे व्यक्तियों की बज्र जड़ता का नाम ही परंपरा है, गतिरोध की हलचल हीनता ही एक सत्ता की कोशिश नहीं, एक अपदार्थ अकिंचनता है। व्यक्ति का यह लय वैसा ही है जैसा अंधेरे में लगी घास का, इतना भी नहीं कि नदी की तह में पड़े कंकड़ हों जो अपने आप बह-बहकर चिकने हो जायँ, जैसे शालिग्राम......

गाड़ी फिर स्टेशन पर रुकी। बाहर उजाला है। बाहर भी जीवन एक पहले से बना कार्यक्रम है। रेल आते ही पूरी बेचैनी है, जलेबी की पुकार लगनी है, पान, बीड़ी सिगरेट और फिर वो धर्मोपदेश—हिंदू पानी, मुस्लिम पानी; हिंदू मिठाई, इस्लामी समोसा...एक चिता है, एक कब्र और मनुष्य सोचता है किस पर अपना पाँव धर दूँ, क्योंकि मैं भी मुर्दा हूँ, क्योंकि या तो मैं नंगा हूँ या मुझपर किसी ने कफन ओढ़ा दिया है।

'जरा आप इस गठरी को हटा लें, सेठ साहब...'

'जी यह चश्मा न होने की गड़बड़ी से है। जरा गौर फर्माइये, यह गठरी नहीं, मेरी जाँघ है...'

इधर आ जाइये, इधर, कोई कहता है। ठठाकर हँसने वाले चुप हैं, व्यक्ति ने धम से बैठकर कहा—देखिये न! क्या बताऊँ? बड़ी मुश्किल से टिकट मिला है, साहब। एक रुपया तो टिकट बाबू ही खा गया।

'अरे साहब ! क्या पूछते हैं ? एक सेकेंड क्लास का टिकट लिए रो रहे हैं ड्यौढ़े में ।'

कहने वाले के प्रति लोगों के हृदय में एक अज्ञात श्रद्धा का उदय हुआ है । त्याग करने का ही संसार में मोल है । घर में याद खाने को नहीं है तो राजनीति में कौन भाग लेने को तैयार नहीं हो जाता ? कम ही हैं मोती के जवाहर, जो दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं···क्या वे आज कहीं के एडवाईजर नहीं होते ? शत्रु के पद की तोल में रखकर अधिकारहीन का गौरव देखा जाता है । यदि रावण आक का पेड़ होता और राम एक कटार से ही उसे काट डालते तो क्या उनकी घर-घर पूजा होती ?

'क्यों आपने गार्ड से कहा नहीं ?'

'सुनते हैं किसी की यह लोग ? टुकड़ों के गुलाम !' कहने वाले के स्वर में अपार विक्षोभ है । उसका बस चलता तो स्वर्ग के धोखे में वह आकाश के सारे नक्षत्रों को पृथ्वी पर उतार लाता और अपनी ही भू-मा को चकना चूरकर देता । यह शब्द ऐसे निकले हैं जैसे मोटी लाइन के चलते समय उसके स्लीपर खड़खड़ा उठते हैं, फटरफटर करते हैं । उनका यह क्रोध सामाजिक है क्योंकि व्यक्तिगत है, क्योंकि उनके अज्ञान में भी उनका व्यक्ति एक सामाजिक दासत्व है···

क्योंकि रेल उनकी अपनी नहीं । और वे उसमें भी समझौता करके बैठ नहीं सकते । उन्हें यही अविश्वास भूत की तरह डरा रहा है कि एक दूसरा केवल एक दूसरे को खा जाने के लिए है । जो बाहर है वह शत्रु है, जो भीतर है वह पड़ोसी है । पैसा चाहिए, अनाथ बनकर पेट बजाइये, जो माता के पक्षपाती बनकर सब को वेश्यागामी करार दीजिये, या आँख मींच कर अंधे बन जाइये । बाहर झाँकने वालों को प्लेट फार्म की दूसरी तरह कलामुंडी खाकर बहलाइये । क्लार्कों को नवाबों की औलाद बताइये······

एक झूठ नहीं अनेकों और समाज के यथार्थ चित्रण । एक के बिना भी काम नहीं चलता। यहाँ कोई किसी का नहीं है । सब अपने-अपने लिये हैं । क्योंकि सबको पैसे देकर यात्रा करने का गर्व है, जिसके पास पैसा नहीं वह अपराध है ।

औरत का स्वर सुनाई दिया । वह कह रही थी—

'मुखड़ा क्या देखूँ दरपन में
धरमी धरमी पार उतर गये
पापी डूबे जल में ।'

मनमोहन के मन में आया कहदे पहले आप दाँत बदलवा लीजिये ।

और उत्तर भी याद आ गया—आखें कमजोर हो जायँगी। तभी तो हाथी के दाँत मरने पर ही मिलते हैं । अगर जिंदे रहते हाथी के दाँत मिल जाँय तो फिर क्या है, घर-घर हाथी बंधा पाइयेगा ।

किंतु औरत की आवाज में धरम का उतना नशा नहीं जितना स्त्रीत्व के ज्ञान का बाजारूपन है ।

मुखड़ा देखने योग्य तो कोई नहीं । मनमोहन यदि यही बात कहता तो शायद लोग समझते कि अब चूरन बेचने का गीत शुरू होने वाला है। लेकिन वह एक स्त्री का स्वर था। इतने मर्दों में एक औरत। जैसे बहुत से फौजियों में एक civilian, जैसे बहुत से कलक्टरों में एक कांग्रेसी, जैसे बहुत से ऊँटों में एक गधा ।

अपना-अपना विचार अपनी-अपनी हाँडी है सब अपनी-अपनी अलग-अलग पकाते हैं । और सबको अपनी-अपनी में सबसे अधिक आनन्द आता है ।

अचानक एक चिहुँक ।

'माफ कीजियेगा, कुहनी लग गई ।'

'हैं, हैं पकड़िये पकड़िये। यह गयी, वह गयी, वह देखिये।'

'गिर जाने दीजिये साहब। चीज भी तो ज्यादा महँगी नहीं थी।

'अजी मेहनत की अधेले की चीज भी सोना है। चेन खींच दीजिये।'

'चेन खींचकर तो शायद मुझे बेचकर भी पचास रुपये नहीं मिलेंगे।'

'क्या गिर गया साहब।'

'जी कुछ नहीं। चाँदी की मूँठ की छड़ी थी।'

'तो गिर गयी?' स्वर में विषाद और विस्मय दोनों घुल गये।

'क्या किया जाय साहब। यह कोई बैलगाड़ी तो है नहीं जो जहाँ चाहे आवाज देकर ठहरा लो।' मनमोहन के मुँह से निकल ही तो गया।

'जी!' किसी ने चिढ़ कर कहा, आपका नुकसान थोड़े ही हुआ है। दूसरों का भी ख्याल किया कीजिये।

किसी और ने डिब्बे में एक दूर के कोने से कहा; खिड़की के बाहर कोई भी बदन कहिस्सा रखने से ही नुकसान होता है।

छड़ी खोनेवाले ने कहा—अजी साहब छड़ी गिरी है। वह क्या मेरे जिस्म का हिस्सा था?

क्या मस्त आदमी है। सुननेवालों की तबियत फड़क गयी। वाजिद-अली शाह ने कैद में कहा था कि एक नाच तो दिखा दो कमबख्तो! मगर फिरंगी उस वक्त जहाजों में सामान लदवा रहे थे। नवाब का राज गया, गोरों का तो ईमान चला गया। मगर समय का अत्याचार देखिये। शाहंशाह भूखे खड़े हैं। और कल जो गज हाथ में लिए कपड़ा बेचते फिरते हैं कि तुम्हें इससे ज्यादा कपड़ा नहीं मिलेगा। तुम कमीज पहनकर क्या करोगे?

दरोगा जी की धीमी फुसफुसाहट—लालाजी, यह तो औरत कोई ऐसी वैसी ही है।

लालाजी की दबी हँसी जैसे डूबते आदमी के मुँह में पानी भरता

जा रहा हो। सारा शरीर हिल रहा है, क्योंकि मनमोहन भी कभी-कभी उस हलचल में लचक जाता है।

औरत फिर बोल उठी, 'आप, मास्टरजी को कब से जानते हैं ?'

'जी हाल ही की मुलाकात है।'

'मैं उन्हीं से मिलने जा रही हूँ। वे अब फौज में भर्ती हो गये हैं।'

'अच्छा किया'

'इन्जीनियर हैं। और फिर जल्दी से कहा—मैं डाक्टरनी हूँ।'

'आप ? किसी अस्पताल में या आपकी अपनी डिस्पेंसरी है ?'

'जी क्या ?'

'मैंने कहा डिस्पेंसरी कहाँ है ?'

जी हाँ। पहले मास्टरजी की लौंडरी थी। वहीं कपड़े धुलवाने लोग आया करते थे......

लेकिन अधिकाँश लोग ऊँघ रहे हैं। उनकी चेतना अब लड़खड़ाकर राह दे रही है। और अधिक सहना अब उनकी शक्ति के बाहर है। खाने और सोने के दो ही तो आराम हैं जिनके लिये इन्सान मेहनत करता है, जागता हैं। जब दोनों में से एक नहीं रहता तब वह या तो फौज में रहता है या कब्र में।

उस सन्नाटे पर स्त्री की वह पतली आवाज, कभी-कभी खिलखिलाहट, और पुरुष के स्वर की गुप्त मादकता, उतावलापन कि अंधकार में भी समाज का भय !

कितने घिनौने हैं वे दांत ! किंतु मिट्टी की भी हों। पुरुष, विकृत पुरुष की वासनाओं का एक मात्र केन्द्र। आँख मींचकर शब्द सुने जाँय। मनमोहन को कोई आपत्ति नहीं। बस यह याद न आये कि यह आवाज उन दांतों को छू-छू कर आ रही है।

उस अचेतन घुटन में प्राणी वैसे ही झूम रहा है जैसे किसी को चक्कर आ रहा हो। वह अपने आप को संभालने में असमर्थ है। उस

शिथिलता का विश्राम, जैसे घोड़ा या गधा खड़ा-खड़ा सो रहा हो······ कैसे भी हो जीवन का सफर है, सफर को काबू में लाना कठिन है, क्योंकि यह सफर उस बीच के दर्जे के कीड़ों का है जो अपने से ऊँचों से पायी हिकारत को अपने से नीचों को चुकाकर अपने आपको किसी तरह छोटी-छोटी दूकानों का मालिक बनाये रखना चाहते हैं। विद्वेष और घृणा के बीच में अविश्वास है। और वे झूम रहे हैं जैसे बदनामी ने शादी रोक दी हो·············

स्टेशन पर भीड़ हमला कर उठी। भीतर एक बाबू ने तड़पकर कहा—ऐ! ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा!

लोग सुन-सुन कर लौट रहे हैं। यह उनके बस से बाहर की बात है। क्या खाकर चढ़ेगी। कुछ ने सिर्फ बक्स उठाना सीखा है, बक्स रखना नहीं; कुछ ने नाज उगाया ही है, आज तक जिस रफतार से उगया है, उस ठाट से खाया नहीं। एक की कमर में दर्द है, एक के दिल में। और पेट का दर्द ऐसा है जो न उनके बाप के जमाने में हटा, न अब जा रहा है। मैले होंगे वे लोग। निश्चय ही सफेद नहीं हैं उनके कपड़े क्योंकि वे डाँट खाकर विद्रोह नहीं करते। क्योंकि वे एक नेता के पीछे मर सकते हैं, नेता नहीं बनना चाहते········दो आदमी और एक औरत घुस ही आये।

बाबू ने तड़पकर कहा—क्यों घुस आये हो भीतर? ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा!

'ऐं ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा' गाँववाला बोला—तुम टिकट बाबू हो? बाबूपन लौटने लगा है। स्वर में कड़वाहट है। जैसे उन्हें कमीना साबित कर दिया गया है; क्योंकि यह रेल उनके बाप की नहीं है; शायद उन्हें अभी तक बाप का नाम नहीं मालूम था, या रईसी समझकर पहली बार ड्योढ़ी सफर कर रहे थे। धुँधले उजाले में अब एक झिल्ली-सी बराबर है।

खुले दरवाजे से गठरी बाहर उछलकर निकल गयी। गंवारिन ने देखा और पति से कहा—यह क्या हुआ?

पति किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। स्त्री देखती रही।

बाबू को डांटने वाले गाँववाले ने उपेक्षा से देखा। उसे कोई मतलब नहीं। और वह स्त्री खड़ी है। उसे बाबूवर्ग यह सम्मान नहीं देना चाहता कि वह स्त्री है, उसे बैठने का पहला अधिकार है। वह शायद स्त्री नहीं है, क्योंकि वह गँवार है।

एक छोटी-सी गठरी गिर गयी है। स्त्री कहती है—जंजीर खींच दो।

बाबू कहते हैं: हैं, हैं, पचास रुपये का जुरमाना हो जायेगा।

'बाबू' स्त्री कह उठी, 'मार का लँहगा है उसमें। बिरादरी में क्या कहेंगे ?'

बिरादरी का उत्तर बाबू के पास नहीं है।

अनवरत महानिनाद से रेल बढ़ी चली जा रही है। किसान खेती करता है। दाना-दाना महाजन ले जाता है, जैसे वह विराट जनता का प्रसार खानों का अनखुदा कोयला है, जिसे खोदा इसलिए जाता है कि एक बड़े इंजिन की आग जगायी जा सके। किन्तु इंजिन की भूख मिटनेवाली नहीं है, क्योंकि वह भागा जा रहा है, भागा जा रहा है, बेतहाशा भागा जा रहा है, और कोयला जलता जा रहा है, भस्म होता जा रहा है, क्योंकि उसके दो ही प्रयोग हैं या तो वह कोयला जिसमें वही चीज है, जो हीरे में हैं, या वह खाद है, जो गेहूँ की शक्ति की मिठास है.........

भोर की पहली किरण आकाश में फूट रही थी। मनमोहन ने देखा—वह स्त्री नीचे बैठकर रो रही थी, लोगों के पैर के पास और उधर हँस-हँस कर मास्टरनी डिब्बे को रिझा रही थी।

मनमोहन का हृदय जाने क्यों भीतर ही भीतर कराह उठा। जिन साहब की छड़ी गिर गई थी वे ऐसे बैठे थे जैसे निर्लिप्त होना ही मनुष्य का एकमात्र सुख है और एक बूढ़ा प्रतीक्षा कर रहा था कि यदि वे ढंग से बैठ जायँ तो वह भी जरा टिक जाये...........बैठने का बहाना करके साबुन की ही कलाकन्द समझ ले...........

इतिहास बोल उठा

—१—

अपने मुँह को यदि मैं बंद रखूँ तो क्या इतिहास भी बोलना छोड़ देगा ? मेरे दोस्तों ! आज से हजारों साल पहले रोमन साम्राज्य के एक ऊँचे पदाधिकारी को, दूसरे ऊँचे पदाधिकारी का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था —

पूज्य चाचा जी,

प्रणाम ! लोगों में यहाँ नाजरथ के गड़रिये का बहुत जिक्र है। गुलामों में एक नई हलचल पैदा हो गई है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या वह सचमुच खुदा का बेटा है ? क्या वह सचमुच सबको मुक्ति दिला सकता है ?

—आपका भतीजा

चाचा ने उत्तर दिया—

प्रिय पुत्र,

आशीर्वाद ! मैं नहीं जानता। पर उसकी जाति के ही लोगों ने उसे सूली पर चढ़ा दिया और मार डाला। पर सुनते हैं वह मरा नहीं बल्कि फिर जी उठा और स्वर्ग चला गया और उसका सन्देश कभी मिटेगा नहीं।

—तुम्हारा ही

मेरे दोस्तों ! वह ईसामहीस था। वह गान्धी था।

—२—

देश में हलचल व्याप गई थी। झुंड के झुंड युवक गाते हुए सड़कों पर टूट रहे थे। उनके दिलों में देश के लिये आग जल रही थी। अनेक तरुण क्रान्तिकारी अपने जीवन का बलिदान कर चुके थे जिन्हें विदेशी शाशकों ने बर्बरता और कठोरता से कत्ल कर दिया था क्योंकि उनका अमन खतरे में पड़ गया था।

पुलिस के घोड़े वेग से इधर से उधर दौड़ते हुए सबको घेरते जा रहे थे।

कांग्रेस का दफ्तर पगड़ियों से घिर गया।

नमक के बोरे उठा उठा नालियों में फेंके जाते थे और भंगियों से पानी डलवा कर उन्हें धुलवा दिया जाता था। लेकिन मिट्टी और पानी में से निकला हुआ खार प्रत्येक भारत वासी के हृदय में समा गया और आँसू पानी की जगह खून होकर माँ बहिनों की लुटी हुई अस्मत के साथ गिरने लगे।

सड़कों, घरों, बाजारों, गाँवों में विदेशी माल जलाया जाने लगा। लंकाशायर की मिलें फेल होने लगीं। विलायत में मजदूर बेकार होकर घूमने लगे।

और हिन्दुस्तान के युवक युवतियों के लहरों के से थपेड़े से ब्रिटिश तख्त हिलने लगा। उस समय युवकों का हृदय आजादी का वह सुपना देखता जिसमें सुख ही सुख था, और वह दुगनी शक्ति भर कर वन्दे मातरम् कह कर आगे बढ़ते...

मेरे दोस्तों! इस करोड़ करोड़ जनता ने ही आजादी पाने के लिये रक्त बहाया था। यह विराट संघर्ष किसी अकेले नेता की बपौती नहीं था।

और तभी शहरों और गाँवों में दमन का भयानक चक्र चलने लगा। खड़ी फसलों को आग से जला दिया गया। मजदूरों पर गोलियाँ चलाई गईं, निम्न मध्यवर्ग के युवको जेलों में ठूंश दिये गये। न्याय लाठी होगया, शाशन होगया। किन्तु मनुष्यत्व का न्याय नहीं रहा।

तब भी जीवन अपराजित हुँकाराता रहा। करोड़ों मनुष्यों का हृदय ऐसे विक्षुब्ध हो उठा, जैसे प्रलय की आँधी में समस्त संसार के गहन कानन हरहरा उठें हों, और सत्य का आग्रह बढ़ता गया। जीवन के लिये, विदेश के अत्याचार और लूट से बचने के लिये, जीवन उमड़ता रहा, जले हुए खेतों में फिर बीज फूटे, मरे हुए बाप के बच्चे युवक होकर आगे बढ़ चले, पीढ़ी पर पीढ़ी खून से भींगती रही, पर आगे बढ़ती रही, संसार काँप उठा, अत्याचार काँप उठा, दमन काँप उठा।

मेरे दोस्तो! तब गद्दार कुत्ते देशभक्त कहला कर निकल आये और अमन सभायें बनने लगीं। जहाँ दीन दलितों के हितों की रक्षा करने के लिये कोई भी संठन किया गया, उसी के समानान्तर सरकार ने भी अपनी ओर से धन देकर पुराने पिट्ठुओं को अपनी ओर करके, नई संस्थाएँ बनाईं और अपनी स्वार्थरक्षा समितियों को सबसे ऊँचा स्थान दिया और फिर उन्होंने सुना सुना कर कहा कि आजादी के लिये शोर मचाने वाले आदमी मुट्ठी भर हैं, इन्हें दम भर में कुचला जा सकता है क्योंकि जनता सुखी है, उसे साम्राज्य से कोई कष्ट नहीं है। यह चन्द पढ़े लिखे विदेशी साहित्य पढ़ कर बिगड़ गये हैं।

किन्तु विदेश कहता रहा और वे थोड़े से लोग बात करते ही गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिये गये। जो सफेद टोपी लगा कर चलता उसकी टोपी कुचल दी गई कोई पूछने वाला नहीं था, कोई सुनने वाला नहीं था। बहुत से लोगों पर सरकार ने इल्जाम लगाया कि वे चुपचाप हथियार इकट्ठा कर रहे थे, सरकार को उलटने का षड्यन्त्र कर रहे थे,

उन्हें बन्द करके उन पर मुकद्दमा चलाने की भी जरूरत नहीं समझी गई। पुलिस ने जिस पर चाहा लाठी चलाई, जिसे चाहा जेल में डाल दिया। यह भारत रक्षा कानून था। पर यह भारत, करोड़ करोड़ गरीब जनता का नहीं, चन्द सत्ताधारियों का भारत था उनके खिलाफ बोलने वाला अशान्ति फैलाता था। पुलिस और फौज गोलियाँ चलाती थीं और अखबारों में छपता था कि सरकारी अफसरों के काम में, उद्योग में बाधा डाली जाती थी, बागी ईंट पत्थर मारते थे, पुलिस और फौज की गोली आत्म-रक्षा में चला करती थी।

मेरे दोस्तो! सच बोलने वाले अखबारों से सरकारी विज्ञापन छीन लिये जाते थे, उनके दफ्तरों में छापे मारे जाते थे, तलाशी की जाती थी, गिरफ्तार करके सम्पादकों को लम्बी लम्बी जमानतों पर बड़ी मुश्किल से छोड़ा जाता था। किसी किसी को घर के सम्बंधी के मरने पर भी नहीं छोड़ा जाता था। जेलों में सड़ा घुना खाना दिया जाता था, कोड़ों की मार लगती थी, देशभक्त जब अपमान और अत्याचार से व्यथित होकर भूख हड़ताल करते थे तो या तो उन्हें चुपचाप मार डाला जाता था, या बदनाम कर दिया जाता था।

देखते ही देखते नौजवानो का आन्दोलन अपने साथ किसानों और मजदूरों को खींच लाया और जब समुद्र की भाँति असंख्य जातियाँ एक होकर हिलने लगीं तब विदेशी साम्राज्य का जहाज उसमें डूबने उतराने लगा। क्षण भर देखा और विदेशी क्रुद्ध हो उठा। नवयुवकों पर सङ्गीनें चलने लगीं। गोलियों ने उनके सीने को छलनी कर दिया, स्त्रियों के साथ बर्बर सैनिक बलात्कार करते रहे, बच्चों को काट डाला गया किन्तु वृद्ध सेनानी बढ़ता रहा, तूफानों में भी वह लौ न हिली, न काँपी, अमेध अंध-कार में आत्मा का गौरव जलता रहा।

पीढ़ी पर पीढ़ी फसल की भाँति उगती रही। पीढ़ी पर पीढ़ी विदेशी पूँजीवाद, देश की समस्त प्रतिक्रियावादी शक्तियों को लेकर टीड़ीदल की

भाँति चूसता रहा, खाता रहा, किंतु अपराजित धरती कभी भी नहीं सिमटी, वह कभी भी ऊसर नहीं हुई ! हिंदुस्तान जागता रहा ।

विशाल साम्राज्य में सोने के सिंहासन के चारों ओर कुत्तों की तरह जीभ लटकाये निरंकुश देशी राजा खड़े खड़े आका की आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहे और अपने ही भाइयों का रक्त शोषण करते रहे । किंतु बाहर मज़दूर मशीनों में कीड़ों की तरह पिसता रहा, किसान भूखा रह कर फसल उगाता रहा, गुरुवृंद आधा पेट खाकर घायल हृदय बच्चों को बढाता रहा, और देश की विराट शक्ति का वह ठेला नेताओं को आगे बढ़ाता रहा । वह भीड़ जिसके बल पर नेता, नेता था, वह भीड़ जिसने एक विशाल साम्राज्य को कुछ नहीं समझा······

किंतु विदेशी उन्हें आपस में धर्म और अज्ञान के नाम पर लड़ाता रहा, उनकी न्याय की माँग को हुल्लड़ कह कर आस्मान से उन पर बम बरसाता रहा देशीय सभाओं की देशभक्ति को स्वाभिभक्ति का विरोध कह कर उनके आँदोलन को गदर कहता रहा और उन्हें अपने भारी बूटों से कुचलता रहा । गीत झरना बंद होगये, किंतु भाव बनकर हृदय के भीतर समा गये ।

देश को तैयार किया जारहा था । सरकार भारतीयों को तमीज सिखा रही थो, बच्चे को सब तरफ से पीटा जारहा था । किसानों के लिये जमीदार, बौहरा, पटवारी, चौकीदार, पुलिस जैसे गुरु, नियुक्त होगये थे । मजदूर के लिये, मिल्लमालिक व उसके गुर्गे पढ़ाने के लिये तैनात थे ।

इतजार हो रहा था । स्कूल बड़ी मुस्तैदी से चलाया जा रहा था । एक दिन ऐसा आने को था जब हिंदुस्तान को अपने पैरों पर खड़ा होना था । विदेश चुपचाप देख रहा था । सब उस घरेलू झगड़े को देख कर चुप थे ।

मेरे दोस्तो ! गहानी लंबी है मैं उसे दुहरा कर व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहता। आज की परिथिति को उस दिन से मिला कर न देखो, वर्ना उससे देशभक्ति का तगमा छिन जाने का खतरा है। तुम भी हाँ में हाँ मिलाते जाओ जैसे उन दिनों भी हाँ में हाँ मिलाई जा रही थी। तब वे गद्दार सशक्त थे, जो स्वतंत्रता के सैनिकों के मुँह पर थूकते थे और तब न्याय उनकी ओर था। । कहा जाता था कि देश के जीवन में गड़बड़ी डालने वाले थोड़े से नेता लोग थे, वर्ना जनता शांत थी, सुखी थी अंगरेजों ने वादा कर दिया था कि वे हिंदुस्तान को सदा के लिये गुलाम नहीं रखेंगे। किंतु एक ही परेशानी थी कि अंगरेजों को लायक हिंदुस्तानी ही नहीं मिल पाते थे जो सब काम संभाल लें !

इतिहास कभी झूठ नहीं कहता आज भी यही कहा जा रहा है कि राष्ट्रीयकरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि उद्योग धंधों को संभालने के लिये आज भी हिंदुस्तान के पास इतने लायक आदमी नहीं हैं। अंगरेज क्या गलत कहते थे तब तो हमने उन्हें झूठा कहा था।

—३—

कई साल की पुरानी बात है। फ्रांस में भयानक विक्षोभ फैला हुआ था।

लोग दाने दाने को मरते थे। उनके पास सर्दी में तन ढंकने को कपड़ा भी नहीं था। उनका कोई मान और अपमान नहीं था। उन्हें भेड़ बकरी की भाँति पाला जारहा था। और इतिहास कह रहा है कि एक दिन जब तख्त पलटा तब फ्रांस का बादशाह और उसकी छबीली बेगम तलवार के घाट उतार दिये गये क्योंकि वे भूल गये थे कि मनुष्य को भूख कैसे लगती है।

उस दिन व्यापारी वर्ग के हाथ में ताक़त आगई थी। उस दिन भी जनता के बल पर ही व्यापारी वर्ग सशक्त हुआ था। देखते ही देखते नेपो-

लियन का विशाल साम्राज्य उठ खड़ा हुआ, किन्तु काल की ठोकरों से चूर-चूर होगया।

बहुत दिन बाद रूस में बादशाह, बेगम और सामंतों के प्राणान्तक अत्याचार से व्याकुल जनता ने फिर वही गीत दुहराया किंतु इस बार शक्ति बीच के दलालों के हाथ में नहीं आसकी, सीधे जनता के हाथ में आगई। इतिहास बोल रहा है। मैं कुछ नहीं कहता।

और फिर पवित्र 'आर्य वंश' में पैदा होने वाले श्रीमान् हिटलर आये और उनके शासन में सारा यूरुप, संसार, थर थर काँपने लगा। पर इतिहास हँस रहा है।

हिंसा का यह खेल कहा जाता है, अच्छे नहीं होते। मनुष्य का रक्त चूसने से हानि नहीं। वह एक शरीर से दूसरे शरीर में आजाता है। रहता तो भीतर ही है ! लेकिन हत्या अच्छी नहीं होती। उन शोपकों से समझौता कर लिया गया है। भारत की परंपरा में उन्हें पैसा देकर शान्ति से हटा दिया गया है। अब उनकी जगह व्यपारी वर्ग के हाथ शासन आगया है। यहाँ सामंतों से लड़ने में व्यापारी को ख़तरा था क्योंकि सीधे जनता के हाथ में शक्ति आजाती और जनता को अभी शिक्षा की ज़रूरत है। यदि विचार हो कि कुछ दिन बाद कह देंगे कि अब तुम्हारा ख़र्च नहीं चलता, तब यह उस्तादी हो सकती है, पर इतिहास में ऐसा उदाहरण सिर्फ़ इंगलैंड में मिलता है, जिसकी प्रगति का प्रत्येक अध्याय दग़ा और मक्कारी से भरा पड़ा है। भगवान रक्षा करें।

—४—

मेरे दोस्तो ! और चीन में जो लपट मांचू साम्राज्य के विरुद्ध एक दिन हरहरा कर उठी थी, वह एक दिन दो भागों में खंडित होगई !

राष्ट्रसेवक चांचकाईशेक की सेनाएँ दीनसेवक माओत्से तुंग के विरुद्ध लड़ती रहीं किंतु इतिहास कहता है कि निहत्थी लाल सेना दिन दूनी रात

चौगुनी बढ़ती रही। तब चाँगकाई शेक और उसके मदांध चोरबाज़ार करने वाले व्यापारी, मज़दूर किसानों, बुद्धिजीवियों को भूखा रखकर अपने 'राष्ट्र' अर्थात् व्यापार की उन्नति करने लगे और मात्र्योत्से तुंग अपनी लाल फौज लेकर किसान मजदूरों, बुद्धिजीवियों को उठाता हुआ बढ़ता रहा।

उसके बाद चाँग 'राष्ट्र' के लिये अमरीकी सेठों से करोड़ों रुपया कर्ज़ लेकर, उनसे शस्त्र लेकर मात्र्यो को दबाता रहा, पर 'मात्र्यो' ने जब अन्य देशों की जनता को संगठित होने की पुकार उठाई तब वह, अराष्ट्रीय होगया। ठीक ही है। जाति रुपये और हथियार की नहीं होती, मनुष्य की होती है।

पर अमरीका का क्या मतलब ? वह तो चीन की राष्ट्रीयता को कायम रखना चाहता है।

और भारतवर्ष भी इन चक्करों से दूर है। हमें क्या मतलब ?

हमारे देश मैं सब हैं। सब अपनी अपनी जगह ठीक ठीक बैठे हुए हैं।

किसान खेत पर हैं, मज़दूर मशीन पर।

ज़मीदार कुड़की पर हैं, मुआवज़ा पाने को हैं। वे हट जायेंगे।

पूँजीपति कुर्सी पर हैं ? नहीं, देशभक्त कुर्सी पर हैं। सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट इत्यादि क्रान्तिकारी सदा जेल में रहता है। यदि दमन और जेल का उनसे व्यौहार न हो तो यह उनका अपमान कहलायेगा।

मैं कुछ नहीं कहता।

मान लीजिये आपका हाथ बहुत दिन से पक गया हो, सड़ गया हो। अगर आप उसका इलाज कराके उस घाव को मिटा देना चाहते हैं तो यह तो आपकी 'राष्ट्रीयता' 'संस्कृति' और 'परंपरा' के विरुद्ध है। सीधा रास्ता है, जहाँ तक हाथ सड़ गया है उससे ऊपर से उसे बांध दीजिये। अपने आप कट कर गिर जायेगा! तकलीफ़ तो भाई झेलनी ही पड़ेगी। 'देश' के लिये क्या नहीं किया जाता!

और फिर इस देश में अनेक जातियाँ आईं और मिल गईं, इन राजा पूंजीपतियों, ज़मींदारों को भी पड़ा रहने दीजिये। अपने आप आपही में में मिल जायेंगे। आप क्यों नाहक परेशान होते हैं। इतने दिन भूखे रह कर भी आपको भूखा रहने की आदत नहीं पड़ी? बड़े 'अराष्ट्रीय' हैं आप!

—५—

मेरे दोस्तो! मैं कुछ नहीं कहता। इतिहास बोल रहा है।

महाभारत में पढ़ा है कि जिस देश में शासक अपने पापी कर्मचारियों को प्रजा के विरुद्ध बल देता है, जहाँ राजा जानता है कि उसका शासन अन्याय से भरा हुआ है, जहाँ ज्ञान और श्रम की अवमानना होती है, उसकी रक्षा भगवान भी नहीं कर सकते।

जहाँ दंभ और व्यक्तिगत स्वार्थ, प्रजा को लूटते हैं, जहाँ सत्य का हनन होता है वह राष्ट्र कभी भी सुरक्षित नहीं है। बाहर से काठ में तब आग लगती है जब हवा चलती है, पर ज़िस काठ में भीतर घुन लगा होता है, उसका नाश कोई नहीं रोक सकता। वह वृक्ष ऊपर से भीषण और बलिष्ठ दिखाई देता है, किन्तु भीतर ही भीतर पोला हो जाता है।

जहाँ पाप पर विश्वास करके उसे बढ़ाया जाता है, आश्रय दिया जाता है वहाँ पाप अन्त में अपनी सीमायें लांघ जाता है और किसी के दाबे नहीं दबता।

मेरे दोस्तो! मैं चाहता हूँ भगवान और सरकार मुझे इज्ज़त दें। ऊंची नौकरी दें। मैं इस बात का हामी हूँ कि जब पूंजीवादी के हाथ में ताक़त हो वह डट कर शोषण करे—मजदूर को कुचल दे—मैं यही चाहता हूँ—वह मजदूरों से कहता रहे तुम्हारे फायदे के लिये मुनाफ़ा खाता हूँ, मैं तो यह चाहता हूँ कि एक बार जलते रोम में पहुँच जाऊँ और जब असंख्य रोम की जनता जलते घरों में नष्ट हो रही हो, नीरो उसमें बैठ कर फ़िडिल बजाये, हँसे अर्द्धनग्न स्त्रियों के हाथ से शराब पिये। मै कवि हूँ, मैं निर्माण

से पहले नाश का गीत छेड़ना चाहता हूँ। मैं नारद हूँ, मैं पाप का घड़ा जल्दी भरा हुआ देखना चाहता हूँ। मेरे पूर्वज मूर्ख नहीं थे जो उन्होंने बार बार अवतारों की कल्पना की थी।

लोग कहते हैं—जनता भीषण बदला लेगी।

मैं कहता हूँ—धर्म में भी एक कल्कि अवतार आने वाला है।

कहा जाता है कि जब अपने पापों से इन्द्र मुँह दिखाने के भी लायक नहीं रहा तब वह छोटा हो गया और जाकर छिप गया। उसकी जगह नहुष लाकर बैठाया गया, पर वह मदान्ध होगया और उसने इंद्राणी पर भी निगाह डाली।

काठ की हांडी बार बार नहीं चढ़ती। नहुष को क्या जरूरत थी कि वह देवताओं की इज्जत पर हाथ डालता वह तो स्वर्ग की गद्दी पा ही गया था।

मैं पूछता हूँ कि क्या नहुष के लिये जरूरी है कि वह बार बार वही गलती दुहराये? क्या यह इंद्राणी से समझौता करके पृथ्वी के हाहाकार के बदले सुख नहीं भोग सकता?

पर इतिहास ठठा कर हँसता है और कहता है कि जब जब धर्मात्मा नहुष नशे में चूर होकर ज्ञान और मेहनत के ठोकर मारता है, तब-तब वह स्वर्ग से गिर जाता है। पृथ्वी का हाहाकार एक भयानक भाला है जो लोहे के स्वर्ग को भी नहीं छोड़ता, तोड़ देता है।

यह अवश्यम्भावी है, इस नियम को किसी भी व्यक्ति की महानता नहीं बदल सकती।

सतयुग बीत गया

मन्दिर का फ़र्श पक्का था। एक दो दिन नहीं, जब से मुहल्ला है तभी से उसका जीवन है और बढ़ती के साथ संतुलन चला है। मुहल्ले के दो वर्ग हो गये। उगते हुए मध्यमवर्ग ने मन्दिर या तो निम्नवर्ग के लिए छोड़ दिया, या पुराने विचारों के रईस उसमें दिलचस्पी लेते रहे। पीपल के पैरों पर चितकबरे उलझे हुए छाया के बनाये काले दागों से वह फ़र्श ढक-सा जाता और उस पर अनेक पीढ़ियों के व्यक्ति आये थे, ठहरे थे, चले गये थे........

सामने शिवलिंग पर दिन-रात पानी की बूँद टपका करती। यह अमर स्नान था। उस धुंधलके में एक मध्यकालीन वातावरण था, जिसका आज के उजले युग से सरलता से कोई मेलजोल हो सकना तनिक कठिन काम था।

और नल पर नहाते आदमी जब हर हर महादेव का नाम लेते हुए अपने धर्म की रक्षा में उद्यत रहते, तब ऐसा लगता जैसे वह शब्द मुहल्ले की रक्षा में रत हिंदुओं के लट्ठ बजने के समान था। धर्म की रक्षा का यह कार्य आज बहुत दिन से चल रहा था। मुगलों के राज्य में भी, अँगरेजों के में भी, और अब जवाहरलाल के राज में भी वही हाल था।

धुंआ उठने लगा था। कुछ कंडे और लकड़ियाँ जल रही थीं। उन छोटी-छोटी लकड़ियों से घुमड़ता हुआ धुंआ उठता और सिंधी तथा पंजाबी शरणार्थियों की तबाही, मुसलमानों के अत्याचार, हिंदुत्व के नये

विलायती पोशाक पहनने वाले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लड़कों के प्रचार के ऊपर, पूँजीपतियों के ब्लैक मार्केट की तरह बढ़ता हुआ उठता और कसैलापन लिये छत से टकरा जाता।

बाबा बैठे थे। ऊपर से नीचे तक एक लम्बा चोगा पहनते। उनके कान फटे हुए थे जिनमें बड़े-बड़े कुँडल थे। उनके चेहरे पर रौनक थी। वे हट्टे-कट्टे आदमी थे जिन्हें देख कर भारत देश में धर्म के सम्मान का उदाहरण मिलता था। उनके चारों तरफ आते जाते, काछी, कोली, ठाकुर, बांभन इत्यादि अनेक जातियों के सूखे साखे, व्यक्तियों को देखते ही ज्ञात होता था कि उनके स्वास्थ्य और शक्ति का स्रोत कहाँ है, जहाँ से अनेक धाराओं ने बह कर उन्हें अथाह मर्यादा और गांभीर्य्य दे दिया था, जैसे वे समुद्र थे, अपने आप में अनंत, पर्य्याप्त।

कनकटे जोगियों की समाधियाँ शांत और नीरव एक किनारे बनी हुई थीं। आज भी गीतानाथ के बारे में मुहल्ले के लोगों में निम्नवर्गों में विश्वास था कि गीतानाथ ने जिंदे में समाधि ली थी और चुनाई हो जाने के हफ्ते भर बाद वे बम्बई में दलाल श्रीगोपाल को मिले थे। उस दिन से मन्दिर का महत्त्व बढ़ गया था।

तभी बुड्ढे जीवा ने खाँसा। बुढ़ापा आया था तो देह सुत गई थी, ऐसी कि पसलियाँ दिखाई देती थीं। लेकिन शरीर में स्फूर्ति थी। वह देश-देश घूमा हुआ आदमी था। अनेक यात्राओं के वर्णन सुनाता, जिनमें काफी दिलचस्पी होती। कांग्रेस के आंदोलन को हजारों की भीड़ में नान वायलेंस (अहिंसा) का मंत्र हृदय में धारण करके बम्बई में चौपाटी पर गिरफ्तार भी हुआ था और एक डेढ़ हफ्ते बाद छूट आया था। उससे पुरानी स्मृतियाँ उसे अँगरेजों के निकट ले जाती थीं जब वह किले में अँगरेज टामियों की हजामत बनाता था।

भाँग का जोश था, वर्ना उसकी उम्र के लोग, जिनके उसी के समान दाँत गिर गये थे, बाल सफेद हो गये थे; इस समय बैठ कर ठसके वाली

खाँसी खाँसते और उनकी जीवन के प्रति ममता संकुचित हो चुकी थी जब कि जीवा की तृष्णा फैल रही थी।

आस्मान में घटा छा रही थी। जब पीपल के पत्तों पर बैठ कर वह उमँग रही हैं। ठंडी-ठंडी हवा चल रही है। शरीर सुखिया रहा है। भीतर तक मन को तरावट पहुँच रही है। तभी साँपवाले की बीना का स्वर सड़क पर सुनाई दिया। शायद बिच्छूनाथ जा रहा है।

'अहाहा' जीवा ने सिर उठा कर कहा, 'यहाँ अभी सँपेरे की आवाज सुनाई देती है। बड़े शहरों में बस मोटर, और सफेद-सफेद बाबू और सूखी मरी औरतें। अपना घर सुरग है। ऐसी बात और कहाँ ? क्या दल के दल बादल छा रहे हैं ? क्यों खलीफ़ ?

कैलाश का मेला जमा हुआ था। इक्के, ताँगे, पैदल, सबकी भीड़े चल रही थीं। औरतों के झुंड को देख कर लगता कि सतरंगा बादल कड़कड़ाता हुआ चला आ रहा है। वे भारी रंगीन लहँगे पहनतीं और गाती हुई निकल जातीं। उनके साथ एक ढोल बजाने वाला आदमी चलता।

चारों ओर सनसनी-सी छा रही थी। बरसात की उमँग थी।

खलीफ़ ने कुछ नहीं कहा। केवल चिलम बगल में बैठे भोपा की ओर बढ़ा दी जो भैंस के स्वर में ढोला गाता था, अपनी मशक वाली बीन बजा कर, जिस पर औरतें उलझ जाती थीं......

शहर के छैले सफेद धोती, कुर्ते, वास्केट, टोपी पहने घूम रहे थे! लेकिन आँखों का सुरमा, गले का गंडा और हाथों में लटकती फूल मालाएँ साफ़ प्रकट करती थीं कि वे हैं छोटी जातियों के ही लोग, जैसे धोबी का लड़का कैसे भी साफ कपड़े पहने दूर ही से धोबी का लड़का लगता है और बाबू गर्व करते हैं कि वह कभी भी उन जैसा नहीं लग सकता।

औरतें गा रही थीं ।

जो मैं होती जाली का कुर्त्ता
लगी रहती रे
बाबू तेरे सीने से

सुनने वालों ने ठहाका लगाया । जीवा 'बाबा' कहलाते थे और रसिक बूढ़ों की परंपरा में आने के कारण अपने दाँतों और बालों को खूब कोसते कि दिल अभी जवान ही है । लाला चुन्नीलाल ने पालथी लगाते हुए कहा, 'अब क्या होगा ?'

'होगा क्या ?' सेठ ने कहा, 'बड़े लोगों की बात कोई सहज समझ सकता है ? आई गई पूरी हुई ।'

व्यंग्य तीव्र था । चुन्नीलाल परचूनिया । उस चूहे के समान लगते थे जो एक हल्दी की गाँठ पाकर पंसारी बन बैठा था ।

'क्यों सब दब गया ?' जीवा ने पूछा ।

'क्यों न दबता ? पुलिस को घूस दी । लौंडिया के घरवालों को धमका दिया । हो गया काम, सेठ कह उठा ।

सिल को धोते हुए ··जीवा कहने लगा, 'इसका नाम दुनिया है, वो तो होता ही रहता है ।'

और दुनिया फिर आँखों में आ गई । घटा अब करवटें लेती है, कभी अंगड़ाई लेती है और पीपल के पेड़ पर ऐसी बैठी ललक रही है जैसे बाजार में बैठी कोई तवायफ । यह है उन युगों की भूखी कल्पना । वह दिन ही और थे जब औरतें-औरतें थीं, मरद मरद थे । अब वे दिन कहाँ ?

तब रंगीनी थी, कि जिंदगी अपनेपन में डूबी हुई थी शराबोर, जब कवित्त होते थे, ख्याल होते थे, पगड़ी बँधती थी, वह अब है अब भी है, पर वह बात नहीं है ।

और फिर औरतों का वह गीत धीरे-धीरे अब अपने संकोच छोड़ कर शरीर की वासना का मन में उतरा हुआ वेग मिटाने लगा। अब वे रीतिकालीन कविता गाने लगीं जिनमें राजसी प्रभाव नहीं था, किन्तु एक सीधा खुलापन था जिसे फूहड़ कहा जा सकता है। गीत इतना गन्दा था कि कभी-कभी दो एक हिम्मतवर औरतें ही गातीं बाकी संकोच से चुप हो जातीं और उस कठिन शब्द के पार होते ही सब स्वर मिलातीं। वे हँस रही थीं। कुछ लोग आवाज कसते थे, पर ऐसे जैसे झाड़ी के इधर-उधर लट्ठ मार रहे हों। कुछ देर बाद वे चुप हो गईं।

अब कुछ लड़के हाथ उठा-उठा कर चिल्ला रहे थे। उनके हाथों में रसियों की किताबें थीं। चार-चार पैसा, नया आल्हा, नया बिरहा······

लोग खरीदते। यह प्रचार का नया साधन था। इस में चोरबाजारी सरकार की लैंतलाली, खद्दरपोशी की आड़ में चलती पोलों को लेले कर गीत बनाये गये थे।

लड़के किताबें जल्दी से बेचकर भीड़ में मिल गये। उस वक्त सिपाही और एक आदमी उस जगह चक्कर लगाने लगे। उन्होंने पैरों के निशान सूँघ लिये थे।

चुन्नीलाल ने देखा और वे समझे, किन्तु इतनी अमहत्त्व की बात पर उसका ध्यान नहीं गया।

जीवा ने कहा—बात कुछ और है। पैसा ही सब कुछ नहीं होता, हाँ, क्या कई। उसने झटके से सिर उठाया। वह नाई था, वह बातें करने में उस्ताद था। सारे संसार के नाई बकबक करने में उस्ताद होते हैं। पैसा कमाना उसके लिये दो हाथ इधर, दो हाथ उधर का खेल था, या फिर जिजमानी का जरियां था। नई दुनिया में दूसरे काम की वही कद्र थी, जो बांभनों की पुरोहिताई की थी या ठाकुर की जमीदारी की। सब

ही को हेच समझा जाता था। वे जो पहले भाग्य मानते थे अब कभी कभी अविश्वास से सिर हिलाते थे। लौंडे तो बिल्कुल ही बिगड़-चले थे, बस ब्याह के वक्त सब ठीक था, वर्ना कौन पूछता है। सो उसने अपनी बात को यों समझाया। देखो भाई, सुनो! धनी और रईस तो अलग-अलग चीजें हैं। धनी वह जिसपै पैसा हो; रईस वो जिसपै दिल होता है। धनी की दौलत बढ़ती है और लोगों में उससे घिन बढ़ती जाती है, लेकिन रईस वह जो अगर दिन पर दिन गरीब भी होता जाये, लोगों को उससे हमदर्दी बनी रहे। रईस हाथ में बेंत रखता है, मुँह के बीच पैसा भींच घिघियाता नहीं। रईस वह जो मर जाये पर सँवरता रहे। और काम कराये, पर करे नहीं। समझे? हाँ। यह नहीं कि परसों बाबा गोबर थापते थे, दादी दाई का काम करती थी आज बेटा नाती की आँखें आसमान पर चढ़ गईं.......आँखों में सील और पानी चाहिये.......,

और जीवा को नये पूँजीवादी की तुलना से जो प्राचीन सामंतीय-संस्था प्रिय थी, वह उसके गुणगान में लगा रहा।

सेठ की तोंद कुछ निकली हुई थी। आदमी वैसे भारी नहीं था। कुछ खिंची हुई आँखें थीं। गोरा रंग था। दिन में कन्धे पर कपड़े के थानों का गट्ठर लेकर कटपीस आवाज लगा-लगा कर बेचता था। मुहल्ले के बाबू बनने वाले रईसों के पुरखों का प्रारंभ इसी रूप में हुआ था। वह अब हँसा। उसने कहा लेकिन एक बात है। एक बार बड़े ठाकुर के सामने नाई मूँछ पर ताव देकर जो चला, तो ठाकुर ने कड़क कर पूछा—कौन है? नाई ने मूछों के घंमड पर कहा—मैं नाई ठाकुर सुनते ही तो ठाकुर चिल्लाया—चल बे हरखू पटक दे साले को। इसका ठाकुर-ठाकुर एक ओर करदे, नाऊ-नाऊ अलग करदे। सो विचारा ठीक हो गया। तो अब तुम अपने को कुछ कहो। कोई कुछ कह सकता है?

तो, जीवा ने कहा, 'कहें तब जब कहने का बखत हो, अब वो खुद

तो अकड़ ले। पर पहले जो रिसरिस कै मरन तो न था? सिर झुकाते थे, तो क्या हम अकेले थे?'

'सो तो है,' भोपा ने कहा, 'सब के दिन फिरते हैं। राजा नल ने क्या नहीं सहा—'

सेठ सुनाने लगा। उसके चेहरे की झुर्रियाँ हवा से काँपती हुई सी लगती थीं। वह नरखंदेह पहली सदी का आदमी लगता था। उसने कहा—रईसी की बात करते हो? यही बाप-बेटे में सरत होती थी कि देखें तू ज्यादा पीता है कि मैं। और फिर दोनों बग्गी जोत कर सहर की अव्वल तवायफ के नाच देखने जाते थे, बाप अलग, बेटा अलग। बड़े-बड़े खेल होते थे। बाप की बात कि दबंग आदमी। शेर की तरह गरजता था। घूँघट काढ़े देखो तो अपने हाथ से पलट कर कहे—हरामजादी, हमी हैं तुझे नखरे दिखाने को, और जो मुँह खोल कर चले तो सिर हो जायँ कि कुतिया बनी डोलती है? ऐसा दबदबा छाया था हाँ। हर किसी की बहू-बेटी पर हाथ डाल देता था। और जब मरा तो लड़के ने कतल करवाया। किसके लिये? जैजात के लिये। क्या ले गया? ले गया कुछ छाती पर? खाली हाथों आया था, खुले ही गया। था तो खाली? और घर में रखेल थी। थी ऐसी कि निभा गई। विदर घर में बहू ने रो-रो उमर गँवादी। होटलों में किस्से सुनाता। माँग-माँग कर बचा-खुचा साग लाता। तबाह हो गई सब मिट गई जी, हाँ। और जब मरा है, तब की देखो। कफन को नाम नहीं था, घर में धेला नहीं था। बिरादरी आ गई काम बखत मौके पै। बहू आई तो पहली सरत धरी। रंडी मेरे मरद की लास नहीं छुएगी। दरद था। उमर भर की जलन थी। पर क्या हुआ? कुछ मिला बिसे? बंस नास हो गया, बंस..............

उस कथा को प्रायः सभी जानते थे पर बार-बार सुनने की प्रवृत्ति हर एक में कुछ अंश तक होती है। सो भी अपने परिचितों के विषय में। वे बाप-बेटे मंदिर के खास आदमियों में से थे।

जीवा मुखर होचला, काश्मीर में ? डाँन चौंग बुस-पुस चेन-फेन······ यह है वहाँ की बोली । कोई क्या समझेगा ? कुछ नहीं । पर वहाँ लोगों के कैसे-कैसे हुसन हैं, सेब जैसे गाल···········

सुनने वाले हँसे । बुड्ढा चेता । जब वह अपने मन की बात कहता है, लोग उसे टोक देते हैं । उसने चुप रहने में ही गनीमत समझी ।

तभी लाला ने किसी पुड़िया के फेंके हुए कागज को उठा कर पढ़ा । खबरें सनसनीखेज और मजेदार थीं । जोर से पढ़ गया—५७१ आदमी मरे, कोलम्बिया में बाढ़, आगरे का ताजमहल बिक गया ।

'क्या हुआ ? क्या हुआ,' सब पूछ बैठे । 'पढ़ो लाला पढ़ो जरा ।'

'पुरानी खबरे हैं,' लाला ने अपना ज्ञान दिखाया ।

'हैं तो खबर । आज की न सही, कल की सही,' सेठ ने कहा । लाला पढ़ने लगा । रास्ता बन गया । सेठ हँसे ।

बोले, 'खूब ठगा सालेने । कोई खबर है भला ? ठाकुर देखा तुमने ?'

जीवा चौंके । उसे अपनी काश्मीर-यात्रा में देखी भयानक बाढ़ याद आ गई थी जिसमें औरतों के हाथ ठिठुर गये थे कि उन्होंने अपने बच्चे फेंक दिये थे । पुरानी बात है । सात दिन उसने छोलदारी में बैठे बिता दिये थे । चीड़ की लकड़ी के धूंए से बदन में बदबू बस गई थी ।

'इकन्नी ले गया·······'वाक्य पूरा भी नहीं हुआ । जीवा ने काटकर एकदम पूछा, 'इकन्नी ले गया ? क्यों ।'

'यों कि किसी ने ताजमहल की साँचे में बनी पत्थर की नकल किसी को बेंच दी । इनको पैसा कमाने का जरिया हो गया ।' वह मुस्कराया ।

'बाबू पैसा-पैसा कमाता है । आदमी की अब कोई पूछ नहीं,' जीवा ने झटके से कहा और अपना पोपला लंबा-सा मुँह कुत्ते की तरह उठा कर बोला—इसमें एक बार छपा था कि एक औरत के दो बछड़े पैदा हुए । थी । चंडूखाने की खबर । बखत की बात है··········

वह हँसा। नीचे के दो दाँत कटे खेत के शेष ठूठों की तरह दिखाई दिये। और फिर भाँग के इन्तजाम में लग गया। अब उसे याद आने लगी। उसकी भाँग मामूली नहीं होती थी। जो कोई पीले तो सात कलामन्डी खा जाये। लेकिन वह जहरी हो गया था। उसके बारे में मशहूर था कि एक बार उसे एक बिच्छू ने काटा और स्वयं मर गयी।

और काश्मीर की वह ठंडी रातें उसकी आँखों के सामने से गुजर गईं। वह जवानी के दिन। और तब उसका छोटा भाई बच्चा था। उसने उसे गोद में खिलाया था। आज वह दिन आ गया है कि दोनों अलग रहते हैं। वह और बात है। काले सिर वाली चीज़ें साथ नहीं रह सकती। पर भगवान ने भी कैसा चक्कर बनाया है कि उनके बिना कोई काम नहीं चलता। छोटेलाल बड़ेलाल पान वालों का घर देखो। मिल के रहते हैं। कभी झगड़ा नहीं हुआ।

और उजड़े यौवन वाली वह कहारिन सामने से घुसी। मन्दिर में उसे देख कर बाबा मुस्कराया। थी कहारिन पर लगती थी खटकिन। कुएँ का पानी भर कर लाई थी कि महादेव जी पर चढ़ा कर लौट चली। जीवा ने टेढ़ी आँख से उसे देखा और जोर-जोर से बोल उठा—महादेव की जड़ी, जिसके भाग में पड़ी।

और भी न जाने कुछ कहा, जो था तुकबन्दी में, पर वह उतना ही अशिव था जितने शिवजी के गण हुआ करते हैं। व्यंग्य था कि अब भक्ति भी सूझ रही है? बात यह थी कि जब रास हुआ था तब यह कहारिन दो रोज के लिए गायब हो गई थी। अब इसे किसी ने रख लिया था। जब उसकी बहू ने इसे देखकर आँखें चढ़ाई तो हँस कर कहारिन की तरफ दिखा कर कहा, 'क्या बात है? बुरी है कि कानी है। तेरे रहते ले आया, यही न तेरे गुस्से का कारन है? तो लुगाई तो यह हुई नहीं। सो तो तू है। यह बेचारी गरीबनी है, खालेगी, पड़ी रहेगी। तुझे भी तो एक टहलनी की जरूरत थी।'

अब कालेज के लड़कों के लिये हास्टेल के मेस में खाना पकाने वाला सफेद बालों वाला तनसुख बूढ़ा कहने लगा—पहले यह सड़क पक्की थी, यहाँ सब जंगल था। पहले यहाँ भड़भूँजे, गड़रिये और घोसी रहते थे। दलालों ने उनकी तमाम जमीन हथिया ली। अब उनके पास कुछ नहीं रहा पर फिर कालेज खुला। प्रोफेसर लोग बाबू लोग आ बसे। अब यहाँ पहले की-सी बात नहीं रही। अब तो शहर के उस तरफ हलचल है यहाँ कारखाने खुले हैं। भरोस कहता था। मिल में चौकीदार हो गया है। कालेज की फिल्ड पै पहले बरफखाना था। यह नहीं कि हर कोली चमार अब बरफ खाता है। तब बात और थी। जाड़े में जमा के पाले में गाड़ दी। गर्मी में खादी तो जमी हुई रईसों के लिये·······

अतीत की वे कथाएं अपने साथ एक वेदनात्मक ध्वनि लिये थीं, कभी उस कुम्हारिन का जिक्र होता, जिसकी चाँदी की अंगूठी निकालने के लिये जीवा कुंए में उतरा था, पर वह अखीर में मुकर गई, या फिर बोधी के घर के उस सांप का, जो कहता था कि धन ले लो, पहलोटा का बेटा वहू देदी, सो किसी ने नहीं लिया। अनंतचौदस को अब भी आवाज सुनाई देती है या फिर फुलरिया के मेले पर जो पानी पड़ा था, सैकड़ों घर बह गये थे उसकी करुण कहानी। और भी जाने कितने सुखदुख, जन्म जीवन-मृत्यु की वह आबाद कथाएँ गूंजती रही, पीपल खड़खड़ाता रहा हवा की ठंडक अब भी नीचे आकर झपट्टा मारता और देह को सिहरा जाती।

कैलास के मेले से लाला लोग बगीचियों में छान-छान कर अब तोंद सामने रखे तांगों में लौट रहे थे, निर्विरोध जीवन, जिसमें जीवन का हाहाकार मौत की सी जिंदगी में हाँफ रहा था। एक मध्य कालीन उदासी जिसमें जिंदगी नई हलचल से घबराती है, पीछे लौट जाना चाहती है। और घटा झूल रही है जिसका रूप कभी नहीं घटता।

बाबा ने आकर खेम ठोके। यह मस्ती की निशानी थी। उन करें हाथों की चोट से वे बलिष्ठ जांघें गूंज उठीं। उसको देख कर लगता था

कि शक्ति का प्रतीक था। उसने बम-बम-बम की आवाज लगाई और फिर मन्दिर के दीपक को ठीक करने भीतर चला गया।

सारा संसार, घरों, दूकानों, खेतों कारखानों में बँटा है। कितने आदमी हैं, कितनी जिन्दगानियाँ हैं। सबके सब परेशान हैं। पर बाबा को चिंता नहीं। वह वास्तव में आदमी नहीं है। वह सबसे अलग है। सुलफा, गाँजा, चरस, पीने में कोई उसकी टक्कर नहीं ले सकता। जीवा को उस पर अत्यंत भक्ति है। अक्सर वह यहाँ आता है और कभी नारियल कभी कुछ भेंट करता है। जब से उसका नगर प्रसिद्ध मास्टर मर गया है। मास्टर का चेला है, कब्रों में नंगा बैठा रहता है घुटनों पर एक कम्बल डाले, उसमें वह बात कहाँ?

और वह बाबा सब के बीच में निर्विकार खड़ा है। सब से अलग सबसे ऊपर भारतीय संस्कृति का आश्चार्य्य है कि वह सर्वोपरि स्थान पर है। अब वह स्वप्न की तरह अपना सम्मान खो देगा। उसकी बात में कभी-कभी जो यह झलक दे जाती है, वह जीवा का हृदय कचोट उठती है।

'छान, छान, किसी की न मान,' का ऊँचा स्वर उठा और सबके हृदय को छूता हुआ बह गया।

और जीवा कहने लगा—आज बाजार क्या गया आफत हो गई।

'क्यों ठाकुर,' किसी ने पूछा, 'क्या हो गया?'

'हुई क्या! आबकारी महकमे के दो आदमी भाँगवाले की तलासी लेने आये थे। साला कम तोलता था। हाँ जी इत्ती मेंहगी छीज और डण्डी हमारे ही खिलाफ जाये। गलती हो गई। ऐलो, कम्बख्त, कभी तुझे ही खिलाफ पड़ी? कभी नहीं। सो देखते क्या है कि वे दोनों आदमी चलने लगे। क्या कही। निरबत लेली थी। हका भारी बड़ी यारी। भइया मेरे। दुनिया का काम चलता है योंही। पर लाला की जात सात..........

अभी वह कुछ गाली देने वाले थे, क्योंकि उनके होठ फड़क रहे थे। झट से लाला चौंके। बोले—सभी थोड़े होवें हैं एक से।

जीवा ने परिस्थिति को समझा। बोला—सो किसने गधे घोड़ों को एक संटी से हाँका मेरे लाला! पर बहुत लोग इकट्ठे हुए और उन दोनों को घेर लिया। डाँटा, डपटा, तब कहीं…………

अब बाकी हिस्से में किसी को दिलचस्पी नहीं रही थी। पीटा होगा। और क्या? कोई रिश्वत तो रुकेगी नहीं।

'जरा गरम करलो' भोपाने कहा, 'सत आ जायेगा। हाँ।'

अन्तिम शब्द पर जो जोर दिया तो उसकी झोंक में जीवा उठ गये और धूनी की आग पर कटोरा रख दिया। गर्म हो जाने पर उंगली डाली। जरा ताप आने पर उंगली हटाली 'उफान आ गया। कटोरा लाल धारी के अँगोछे से अलग लाकर भंग धोते हुए कहने लगे—क्या बतावें? जलन हो गई है जलन। आदमी में अब ईर्सा हो गई है। कोई किसी की बढ़ती नहीं देख सकता। बड़े लोग हैं, वे भी पहले से नहीं रहे। बड़े-छोटे पहले भी थे पर पहले आदमी-आदमी से बात तो करता था। अब तो मुँह से कहते हैं सब बराबर हो, पर फरक बढ़ता जा रहा है, जिसका नाम आदमी की कहीं पूँछ नहीं रही, जिसे देखो, पैसे के पीछे कुत्ता बना घूमता है हद हो गई…………

हठात् जीवा विकृत स्वर से चिल्ला उठा—नाश जाये इसका, बेईमान कुत्ता सिवजी के घर में डाका डाल रहा है……जरा देखो, कैसा कुकरम हो रहा है……सबने देखा। भांग में चने का साग मिला हुआ था। उन्हें लगा, आज सचमुच सतयुग बीत गया था। धरम की टाँग टूट गई थी क्योंकि वे अपने को भंग से भुलाये जो रखते थे उस पर भी मुनाफा लिया जाता था………………।

नर्स

मेरिया चुप बैठी रहती। मैं उन दिनों सेना की सेवा में गाने के लिये भेजा गया था। मेरे साथ एक इतालवी स्त्री थी, जिसकी माँ अंगरेज थी। कुछ दिन उसे संदेह के कारण जेल में भी रखा गया, किंतु जब उसके घर की तलाशी में ऐसा माल बरामद हुआ, जिससे यह प्रगट हुआ कि वह बहुत दिन से ही मुसोलिनी के विरुद्ध संगठन करने वाले मजदूरों के साथ थी और तभी भाग कर इंग्लैण्ड में बस गई थी, उसे छोड़ दिया गया। और विस्तार से सब बातों को बताने में मुझे काफ़ी देर लगेगी। अतः मैं केवल यही कह कर अपनी असली बात पर आजाना चाहता हूँ कि वह अपने नाच के बल पर मेरी साथिन हो गई और मेरे साथ ही रहने लगी। उसके बाद हमने विवाह कर लिया! घूमते घूमते काफी दिन बीत गये। मैं अपनी पत्नी को सदैव 'लिली' कहता और वह किसी भी दूसरे नाम को भुला देना चाहती थी।

उस दिन लिली के नृत्य के बाद एक स्त्री ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर कहा, 'अद्भुत! बहुत सुन्दर। 'तुम्हारे नृत्य में संजीवन है। घायलों को भी तुम्हारे नृत्य की आवश्यकता है।' लिली ने मेरी ओर कनखियों से देखा और बच्चों की भाँति हँस उठी।

'आप?' स्त्री ने कहा। 'मैं, हूँ अंतर्राष्ट्रीय रेड्क्रास की नर्स। आप?'

'मेरे', लिली ने कहा, और हंस दी।

मेरिया ने कहा, सुंदर! जोड़ी बहुत 'सुन्दर है।' लिली की आँखें हठात् सतर्क हो गईं, क्योंकि नर्सों का चरित्र सदैव से ही कुछ संदेह से देखा जाता है। किन्तु मेरिया के शेष वाक्य, 'बिल्कुल ऐसा ही मेरा एक भाई था, युद्ध में चला गया, सदा के लिये—' बात दूसरी हो गई। मृत्यु ने लिली को उसके समीप खींच लिया।

और मैंने देखा मेरिया चुप बैठी रहती। और उस निस्तब्धता में एक रहस्य की भावना सी दिखाई देती, जिसको न समझ कर लिली मेरी ओर देख उठती। एक दिन उसकी उत्सुकता इतनी बढ़ गई कि वह एकदम पूछ बैठी। मेरिया ने सुना और अपने गम्भीर स्वर से कहा —ऐसा क्यों सोचा तुमने लिली! बताओ। मैं? चुप तो नहीं बैठती। न कोई खास बात ही है। केवल एक बात सोच रही थी।

'हम भी तो सुनें' लिली ने झटके से सोलहवीं सदी के उस प्राचीन नाटक को बन्द करके किताब मेज पर रखते हुए कहा। 'तुम तो प्रायः समस्त यूरोप देख चुकी हो। उफ! कैसा है तुम्हारा हृदय। भयंकर युद्ध भूमि में जाकर घायलों की देख रेख करना, उन्हें उठा लाना ...'

'लिली।' मेरिया ने कहा, 'मौत कितनी भयानक है, इसको भी तुम कभी सोचती हो? यह जो सौंदर्य है, शांति है, नृत्य है, कला है, प्रेम, जो कुछ भी है, इस जीवन के ही अनेक पहलू हैं। लेकिन जिंदगी क्या किसी कबाड़िये की दुकान है जहाँ हर चीज सस्ते दामों पर तो मिले, पर किसी की बर्त्ती हुई उतरन हो? तुम शायद नहीं सोचती होगी। मेरे एक मामा हिन्दुस्तान में सेना में काम करके लौटे थे। वे बताते थे कि अपना सब सामान जब वे नीलाम कर रहे थे, तब हिन्दुस्तान में लोग बड़ी इज्जत से उनके सामान को खरीद रहे थे, क्योंकि वह सब उनके लिये काफी कीमती था।'

मैं भूल गई हूँ। उनके पास एक किताब थी, जिसे मैंने पढ़ा था। एक बहुत पुराने जमाने में कोई धर्मयुद्ध हुआ था। उसमें एक पुराने योद्धा ने

अपने मरने की तरकीब भी बता दी थी। वह कई दिन तक तीरों के बिस्तर पर लेटा रहा और अंत में परमात्मा का ध्यान करता करता मर गया। वह अखंड ब्रह्मचारी था। उस लड़ाई में सेना सेना से लड़ती थी। जनता पर कोई हाथ नहीं उठाता था। अब तो वैसा नहीं होता।

तुम कारण बता सकती हो? तब राजा अपने राजवंश के लिये लड़ते थे। अब राजा या कहो राज्य, बाजारों के लिये लड़ते हैं। मुझे यह देख-कर बहुत खेद होता है। बताओ। मेरा भाई मारा गया। किसके लिये? मृत्यु की भयानक छाया जहाँ खेला करती है, वहाँ मुझसे कहा गया है कि मैं जीवन का वरदान बन कर क्षमा करूँ। माफी किसकी माँगूँ। पहले पाप तो करलूँ। क्यों मारता है आदमी को आदमी और क्यों फिर भीख दी जाती है जिंदगी की।

जिस समय मैंने झुक कर दवा गले के नीचे उतारी, उस हिन्दुस्तानी सिपाही ने मेरे हाथ पकड़ लिये और कहा—मेम साहिब! अब नहीं सहा जाता।

मैंने देखा। मुख की विकराल आकृति पर रक्त की कमी एक डरावना-पन लेकर छा गई थी। लगता था जीवन की चमक उस पर से ऐसे चली गई हो, जैसे पत्थरों से ठोकर खा खाकर पुराने जूते की। मैं काँप उठी। मैंने कहा, 'तुम ठीक हो जाओगे। घबराओ नहीं तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे।' मेरे शब्दों में कातर करुणा थी।

किन्तु वह अविश्वास से बुड़बुड़ा उठा—नहीं, अब मैं जीवित नहीं रहूँगा। अब मैं नहीं बचूँगा। मैं मर जाऊँगा।

कितनी बड़ी बात कह गया था वह। यानी अब उसके लिये जो कुछ दिख रहा है, वह सब नहीं रहेगा। अब इन आँखों में से एक ऐसा अँधेरा इसके भीतर उतर जावेगा, जो इसको उस मिट्टी से मिला देगा जिस पर हम चलते हैं, जिसमें उजाला नहीं घुसता। कहाँ हुआ था इसका जन्म।

कहाँ आकर दम तोड़ रहा है। यहाँ सब अनजाने हैं। कोई आँसू बहाने वाला तक नहीं।

मैं दहल उठी।

और वह कहता रहा—'मैं कायर नहीं हूँ। मेम साहिब, मैंने बढ़ कर हमला किया था...मैंने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये...। थक कर उसने फिर कहा—लेकिन सब बेकार हैं. वह...मैं गरीब था...मेरे घर के लोग भूखे थे। बीस मील पैदल चलकर गाँव से शहर...भर्ती हुआ था मैं...वर्दी मिली थी...खाना...अच्छा था...उस दिन से लोग मुझसे डरने लगे थे...नहीं मेम साहिब...नफरत करने लगे थे...।

और वह कराह उठा।

'कोई नहीं, कोई नहीं...अँधेरा...अँधेरा छा रहा है मेम साहिब। उफ! माँ! मेरे बच्चे...उनकी माँ...अब भूखे मरेंगे...जमीदार तो उनकी जमीन छीन लेगा...कौन देखेगा उन्हें...मेरे, बच्चे...मेरे दुध मुँहे बच्चे ...भगवान...आह...' और फिर एक दर्दनाक आवाज गूँज उठी, घहरती हुई, भीषण। लिली! वह कह रहा था...'भगवान...क्यों दिया यह दण्ड...।

लिली, मेरे कान बहरे हो गये थे, हृदय विक्षोभों से फट रहा था। वह व्यक्ति। क्या वह एक भेड़ की ही भाँति नहीं था, जिसने कुछ लोगों के पेट भरने के लिये अपनी जान को दाँव पर लगा दिया! किसके लिये लड़ा था वह? किसका गर्व करे? आज मनुष्य का अभिमान और राष्ट्र का गौरव क्या कभी इसकी लाश पर खड़ा हो सकेगा जो एक विदेशी के लिये कुत्ते की मौत मर रहा था? लाचार! हिन्दुस्तानी! क्या यही थी तेरी बहादुरी की कीमत?

मैं देख रही थी। वह एक निस्सहाय बालक सा मेरे हाथ में पड़ा था। मैं देख रही थी। किन्तु सिपाही दर्द से बेहोश हो चुका था।

घड़ी अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ रही थी ! मैंने उसे तकिये के सहारे लिटा दिया।

दूर एक बिस्तर पर कोई जैसे अपनी बेहोशी जैसी नींद से जाग उठा। उसने भर्राए गले से कुछ कहा।

हिंदुस्तानी सिपाही बेहोश सा पड़ा था।

मैं अधिक नहीं ठहर सकी। जागे हुए सैनिक के समीप चली गई। वह कराह उठा था :—पानी...पानी...।

पास जाकर मैंने उस से कहा। ठहरो। घबराओ नहीं।

और पानी पिलाकर कहा; डरो नहीं। मन न हारो। भगवान सबका भला करता है। वह पानी पीकर कुछ जैसे स्वस्थ हुआ। उसने कहा; नर्स ! तुम बहुत अच्छी हो......

उसने मेरे हाथ पर हाथ फेरा। मैं जानती हूँ, उसमें विलास नहीं था। किन्तु उसमें पौरुष का जाग्रत स्पर्श था...

उसमें अभिमान था। दास्य की वह भावना नहीं थी इसमें। मानो मैं इस पर दया नहीं कर रही थी। उसे अपना गर्व था जो मेरे कर्तव्य से अपने को कम समझने से इंकार करता था।

मुझे उस फ्रेंच लड़की की याद हो आई जो सिआमी से होनोलूलू चली गई थी, जो नर्स थी, और हर शाम को सिपाहियों के साथ शराब पीकर सिनेमा देखती और रात को बगीचे में उनके साथ अपने आपको बेचा करती। नितांत वेश्या सी। क्या यह सैनिक मुझे भी वैसा ही समझता है ? सैनिक जो है। जीवन को दाँव पर लगा कर सोचता है कि संसार के सुखों को इसने त्याग दिया है, तभी उसे हर उचित अनुचित का अधिकार है। क्योंकि इसको पैसे के अतिरिक्त और मिलेगा भी क्या। किन्तु इस का यह स्पर्श......

घृणा से मेरा मन तिक्त हो गया। किन्तु फिर सोचा। मातृत्व की वह भावना, जो हिन्दुस्तानी सिपाही ने मेरे प्रति दिखाई थी, कितना गर्व हुआ था मेरे जीवन को उस समय। किन्तु छिन्न-भिन्न वह स्वप्न एकदम। इसकी दृष्टि में मैं सेवा के उज्ज्वल धर्म से आलोकित नहीं है। और वह फ्रेंच लड़की जो छलते सिपाहियों को स्वयं छेड़ती थी...कभी-कभी अधनंगी होकर 'बाल' में नाचती थी...मैं वह सब नहीं सोचना चाहती......

मैंने उससे कहा; तुम निराश क्यों होते हो ? बड़े-बड़े घायल भी ठीक हो जाते हैं। एक आया था जिसके पेट को गोलियों से छलनी कर दिया था। भगवान की दया से वह भी ठीक हो गया...

'ठीक है नर्स ! भगवान की दया मुझ पर...नहीं होगी। उसी दिन समाप्त हो गई थी वह दया, जब भयानक बमबारी में ग्लैसगो में मेरी माँ मर गई थी। माँ ! ब्लिट्ज ! उफ ! बच्चे दहल कर रो रहे थे। बर्बर... जानवर...असभ्य...निहत्थों पर वार...' सिपाही कराह उठा; लेकिन मैं मजबूर था। मुझे फौज में जबर्दस्ती दाखिल कर लिया गया। मै जानता हूँ। उस समय मुझे कायरता ने घेर लिया था। मैंने सोचा था। क्यों लड़ूं ? क्या मिलेगा मुझे ? क्या मुझसे पूछ कर लड़ाई शुरू की गई है ? किंतु माँ की लाश देख कर मेरी आँखें खुल गईं। पीछे जाने का वक्त न था। इंगलैंड पुकार रहा था ! हथियार उठाने लायक अपने हर बच्चे को देश पुकार रहा था। मैंने सुना...में जलती आग में कूद पड़ा। जर्मनी के खूनी पाँव मेरे देश को नहीं रौंद सकेंगे...' और फिर उसने दृढ़ स्वर से कहा; इंगलैंड ने कभी सिर नहीं झुकाया...वह कभी सिर नहीं झुकायेगा... इंगलैंड कभी दास नहीं होगा...एक भी आदमी जब तक जिंदा रहेगा... समुद्र की लहरों पर... शासन करने वाला इंगलैंड...

मैंने सुना। गर्व से मेरा वक्षःस्थल फूल उठा ! यह मेरे देश का गौरव तब मैंने उसके पौरुष से प्रभावित होकर उसके हाथ पर हाथ फेरा। यह व्यक्ति देश के लिये मर रहा था। इसे सारे सुखों की आवश्यकता थी।

किंतु फिर अन्तर्राष्ट्रीय सेवा ! मैं तो इन सबसे ऊँची हूँ। वह निरीह हिन्दुस्तानी...सभी सैनिक अपनी घिरती निर्बलता में कराह उठे—इगलैंड बच जायेगा...लेकिन मैं नहीं रहूँगा...नर्स...इंगलैंड आजाद रहेगा...पर मैं नहीं बचूंगा...मेरा जीवन नष्ट हो गया है...मेरे बच्चे बिना बाप के हो जायेंगे......

मैं सुन रही थी। राष्ट्र के गौरव में व्यक्त अपने को निस्सहाय क्यों अनुभव कर रहा था......

साँझ हो गई थी। बाहर बरफ गिरने लगी थी। मैं उठकर औरों को दवा देने लगी। घड़ी फिर टनटना उठी। देखा। बत्तियाँ जलने के पहले एक अजीब उदासी हवा पर फैल रही थी।

अस्थायी अस्पाल में चारों ओर हल्की २ कराहें उठ रही थीं। नर्सों डाक्टरों की हलचल हो रही थी ! सब अपने २ काम में लग रहे थे ! डाक्टर मिले ! देख कर मुस्कराये ! और अपनी सारी हंसी हंस कर कहा; नर्स ! दुनिया एक पहिये की भाँति घूम रही है ! एक मिनट का विश्राम नहीं है ! लगता है दो चार दिन में सारी दुनिया के नौजवान खत्म हो जायेंगे !

मैं आगे बढ़ रही थी ! सुना ! पीछे से किसी ने दबी आवाज से कहा; तब जवान औरतों की परेशानियाँ बहुत बढ़ जायेंगी......

थकान से मैं चूर चूर हो रही थी ! इस वक्त भी यह मजाक...जिस देश में स्त्री अपने को पुरुष के विलास की वस्तु समझती है, वहाँ पुरुष अपनी स्वाभाविकता खोकर लोलुप पशु हो जाता है ! क्योंकि स्त्री इस बात की शर्म करती है कि वह स्त्री है...जैसे स्त्री होना भी, माँ होना भी, कोई छिपाने लायक, झेपने लायक बात है...पड़ते ही नींद आ गई, सारा कोलाहल, सारी चिंता, परेशानी खोगई ! बड़ी गहरी थी वह नींद ! यह

बेहोशी ! लोग कहते हैं मरने के बाद इंसान को यह बेहोशी जगा देती है ! पर मेरा जीवन !

लीली ! मैं उस समय बेहद थक गई थी ! सोच सकती हो ! इधर मैं बेहोशी के सुख में सोई हुई थी, इधर लोग दम तोड़ रहे थे । कहाँ मेरे पास चेतना कि मैं सोचती कि उनको एक एक करके घर के चित्र याद आ रहे होंगे । बंदूकों की नालियों के बीच जिंदगी गुजारने वाले ।

हठात् मुझे किसी ने जगा दिया ।

'सो रही हो ? भयानक लड़ाई हुई है । तैयार हो जाओ । मैदान में से लाशें उठानी हैं ।'

कहने वाला चला गया । मुझे अत्यन्त बुरा लगा । अभी तो सोई थी, पर काम तो काम था । काश मैं भी किसी की पत्नी, घर पर रहती... जिस समय मैं तैयार होकर पहुँची, डाक्टर तैयार खड़ा था । वह हँस रहा था । मुझे उस पर अचरज हुआ । वह अजीब आदमी था । मैंने उसे कभी उदास नहीं देखा ।

'बैठो बैठो ।' ट्रकों पर सामान इत्यादि लेकर चढ़ गये । डाक्टर मेरी ही गाड़ी पर चढ़ गया । उसने कहा; 'सोचती होगी वे लोग अच्छे होंगे, जो घर रहते होंगे । कारखानों, खेतों में काम करते होंगे...वह हँस रहा था ।

गाड़ियाँ चल पड़ीं । अँधेरे में उनकी रोशनी ने घूंसा मारा और भारी चक्के से रबड़ के दाँतों वाले पहिये एक घर्र घर्र करते नदी को गुंजाते हुए बढ़ चले । मैं चुपचाप आकाश की ओर देखती खड़ी रही । अन्जान है यह पृथ्वी, यह हवा, यह मिट्टी···या जीवन·····

युद्ध भूमि से कराहों की आवाज कर्कश होकर गूंज रही थी । मैं काँप उठी ! युद्ध भूमि में से लाशों में से जिंदा लाशों को ढूंढना—यह काम मैंने

पहली बार आज प्रारंभ किया था। लाशों का इंतजाम किया था···पर यह न देखा था कि जिंदा आदमी लाश किस तरह बनता है, किस तरह चलती हुई गाड़ी के अन्दर पंजर ढीले किये जाते हैं, किस तरह दोनों सुइयों की तरह उसकी आँखें शून्य की ओर फैल जाती हैं·····

मेरा हृदय हाहाकार कर उठा। मैंने अनुभव किया मैं बहुत भयानक सत्य के बीच खड़ी थी। अच्छे थे वह जङ्गली गीदड़, कुत्ते···भेड़िये जो इन पर टूट कर अपनी भूख मिटा लेने का इंतजार कर रहे थे·····

क्या चाहता है जर्मनी? यही है संसार को सभ्य बनाने की योजना? कि लाशों के अंबार पर उसकी विजय का कल्याण चिन्ह बन कर स्वस्तिक चमका करे। मैं स्त्री हूँ उस समय मन किया रो पड़ूं।

मैं लाशों पर बढ़ने लगी। किसी का बदन दो टूक होकर पड़ा था। किसी का हाथ कट गया था। किसी का पाँव जाँघ से अलग हो गया था। माँस के उन लोथड़ों में मैं आगे बढ़ रही थी। पाँव बार २ डगमगा जाते थे। किसी के मृत शरीर पर पांव पड़ते ही हृदय काँप उठता था। लगता था जैसे आज घोर अपराध हो गया था··

पर यह माँस जो जीवन बनकर चलता था आज टुकड़े-टुकड़े हो गया था···अब यह व्यर्थ था। अब यह किसी भी काम नहीं आ सकता क्योंकि इसमें से रक्त बाहर बह गया है··

उजाले में देखा। एक व्यक्ति मुंह के बल पड़ा था। बड़ी दया आ गई मुझे। न जाने किसकी आँखों का तारा था। कैसा कीचड़ में पड़ा था। अबोध-सा, निर्बल।

मैंने उसे अपने सहारे उठा कर बिठा लिया। देखा वह एक जर्मन था। शायद सिपाहियों के ऊपर वह नायक था। यह उसकी वर्दी से जाहिर हो रहा था।

वह होश खो चुका था। बक रहा था···हिटलर भगवान है···जर्मनी का लोहा···संसार दास होगा। हमारी हुकूमत···कमीने रूसी···इन्हें कुचल दो···अंग्रेज दोगले हैं···उन्हें मिटा दो। उनका साम्राज्य छीन लो। जर्मन युवकों। सारा संसार तुम्हारा है। उन्होंने वादा किया था। हिटलर ने वादा किया है···हम सारे संसार के शासक होंगे···

फिर कुछ रुक कर वह कह उठा—

'संसार असभ्य रह जायेगा। मैं मर रहा हूँ। जर्मनी के बिना···फ्रौ··· तुम्हें कितना सामान भिजवाया था, वह गाँव में लूटा था। गाँव में आग लगाई थी···बच्चों को कुचला था···अब वे बड़े होकर भी बदला नहीं ले सकेंगे···' और वह हँस पड़ा।

क्रोध से मैंने उसे छोड़ दिया। बर्बर। पशु। मृत्यु के समय भी इसे अपने पापों का प्रायश्चित्त करने का ध्यान नहीं। पर फिर सोचा। इसके दिमाग का सूराख बन्द हो चुका है।

और मैं फिर उसको गर्म गर्म ब्रैन्डी पिलाने लगी, जिससे हाथ पाँव ढीले हो गये। और वह पृथ्वी पर लेट गया।

लोग अब स्ट्रैचर लेकर उठाने लगे थे। मैंने सोचा कि आवाज देकर उनमें से किसी को बुलाऊँ।

उसी समय मेरा ध्यान टूटा देखा। एक व्यक्ति धीरे-धीरे हिल रहा था। उसमें कुछ जान बाकी थी। मैंने सोच। यह भी कोई जर्मन ही होगा।

समीप जाकर उसके सिर को थपथपाया। सैनिक को कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। मैंने उसे सीधा किया और उठाया। फिर उसके मुख को देखा। वह बहुत घायल हो चुका था। उसकी आँखें बंद थीं।

शीत बहुत भयानक थी। मैंने उसको दूर से आते आलोक की जब किरणें फिर इधर आईं, देखा। वह रूसी था। इन लोगों की अभी-अभी

यहाँ जीत हुई थी। बहुत से जर्मन भाग गये थे । बहुत से कैद हो गये थे। उजाला इधर-उधर चलते आदमियों से कह रहा था।

ब्रैन्डी पीते ही उसे कुछ होश आया। एकबारगी उसके नयन खुले। पर अंग हिला डुला नहीं। मुझे इस समय ऐसा लगा, जैसे बच्चों को, घायल चिड़िया के बच्चे के मुख पर पानी डाल कर उसे चैतन्य होते देख कर एक सुख-सा होता है।

उसने अधमुंदी आँखों से देखा। जैसे उसके शरीर में अब कुछ शक्ति संचारित होने लगी थी। उसके होंठ हिले, पर कुछ भी कह नहीं सका।

थोड़ी सी ब्रैन्डी और पिलाई। शक्ति काँपने लगी।

एक दम उसने पूछा, 'कौन जीता ?'

मैंने धीरे से कहा, 'तुम।'

वह कहने लगा, 'सच ?'

'सच। बिल्कुल सच!'

विभोर होकर जैसे सिर झुका गया।

फिर वह अपने आप कहने लगा मुझे विश्वास था......मुझे मालूम था...वह नहीं जीत सकते...वह कभी नहीं जीत सकते...वे लुटेरे हैवान... वे मजदूरों को कुचल देंगे, वे सामंतों को खड़ा कर देंगे, फिर हमारे खेतों में काँटे उगा करेंगे, जिन्हें लोग कभी न खा सकेंगे, भूखे मरें...... गद्दार......गद्दार पैदा होंगे, वे अपने लिये दूसरों को चूस लेंगे......

मैंने देखा। उसके हृदय में कितनी श्रद्धा थी। अपने ऐक्य की कितनी संगठित भावना थी। वह मरते-मरते भी चेतना की शक्ति थी। उसके वे शब्द जैसे दुनियाँ भर के गुलाम और शोषित सुन रहे थे......

और वह आधा बेहोश-सा, आधा चैतन्य, विभोर होकर कह रहा था— मेरी नई दुनिया...मेरे खेत...सारा गाँव...याद रखना...हम सब एक

थे···हमारे खेत···वे लहलहाते खेत···वे फूलों से भरे बागीचे···वे हरे भरे मैदान···वे ट्रेक्टर···वे साँझ के उठते शोर, वे सब के गाये हुए गीत··· वे सम्मिलित नृत्य···

मैं सोच रही थी···आजादी, गुरिल्ला युद्ध, संग्राम के दाँवपेंच, बहादुरी, जासूसी, देश भक्ति, हमले, जीवन और मृत्यु···कहाँ, किस देश में नहीं हैं···सब में यही है। शक्ति की भूख कहाँ नहीं है? पर यह भेद कहाँ है? तनख्वाह ले कर तो सब लड़ सकते हैं।

उसने फिर कहा, 'निकोलाला···मेरी निकोलाला। मैं तुम्हारे पास कभी नहीं लौटूँगा। पर तुम्हारा जीवन कभी कलुषित नहीं होगा···'

वह फिर बेहोश हो गया था। मुझे याद आया। वह हिंदुस्तानी बीबी के लिए रो रहा था! वह अंग्रेज भी उसी की इज्जत के लिये लड़ा था। वह जर्मन उसे लूट का सामान भेजता था। और यह व्यक्ति मौत की गोद में भी उसी भावुकता से उसे याद कर रहा था।

एक क्षण को जैसे उसमें चेतना लौट आई।

'कौन हारा?' उसने हठात् पूछा।

मैंने कहा—जर्मन हार गये।

सच कहती हो! वह तो पहले ही से हार गये थे। जो पाप करता है उसकी हार वहीं से शुरू हो जाती है···

वह हँसा।

यही तो·····मैं जानता हूँ। मेरा देश अपार है···उसे कोई पार नहीं कर सकता···उसका हर आदमी चट्टान है···वहाँ कोई गद्दार नहीं··· मैं जानता हूँ···जर्मनी नहीं जीतेगा।

मेरे यहाँ का बच्चा-बच्चा आजाद है, जर्रा जर्रा आजाद है···न मर्द भिखारी है, न औरत वेश्या है···

मैं किसान का बेटा हूँ···निकोलाला मैं अपनी मर्जी से आया था। हम किसी के गुलाम नहीं हो सकते···तुम्हारी आँखें। जीवन के ऊष्ण स्पंदन···वह जिंदगी···मैं जा रहा हूँ···पर तुम तो रहना···

मेरे घर···मेरी नई दुनिया···कोई नहीं···कोई नहीं लूट सकता तुझे। मेरा देश रूस···बाइलोरशा, कोहकाफ, साइबेरिया···सब के सब लोग मेरे लोग मैं सबका···सब मेरी याद करेंगे···ओह! मैं कितना सुखी हूँ···वे जागीर-दार, वे पूंजी-पति···कभी नहीं···जनता नहीं मिटेगी···मैं नहीं मिटूंगा···

और उस अंधकार की भीषण डाढ़े अट्टहास कर उठीं और हमारी जलाई हुई बत्तियाँ ऐसी लगी जैसे उन जबड़ों में चमकते हुए दाँत हों जो धरती को चबा जाना चाहते थे। लिली। मैं अजीब-सी पड़ गई! मैंने चौंक कर देखा। इस समय गाड़ियाँ चलने लगी थीं। सैनिक लोग स्ट्रैचर लिये हमारी ओर बढ़ते आ रहे थे। सैनिक मर चुका था।

सच कहती हूँ लिली। बाकी सब मरे थे। सब वे मर गये थे। किंतु यह एक आदमी नहीं था जो मर जाता। मुझे लगा यह एक खुशनुमा मौत थी। इस मौत के पीछे एक जिन्दगी का पैगाम है, इस मौत के पीछे एक नई दुनियाँ का ऐलान है·····यह आदमी मरा है, तब इसके हृदय में जिंदगी की तपिश है। इसकी मौत से कड़ी टूटती नहीं·····बढ़ती है·····

और वह निकोलाला···वह इस मृत्यु को सुन कर फिर प्रतिज्ञा करेगी। उसका यौवन वहाँ शराब की बोतल नहीं होगा। उसका नारीत्व एक आदरणीय प्रेयसी का सुख है, जो चरम सीमा में मातृत्व का शाश्वत गौरव···

मैंने देखा जनता जीवित थी···वह जीत रही थी···

अब बर्फ घनी होकर गिर रही थी। रात का अन्धेरा कड़कड़ाने लगा था। हवा में कुछ गर्म सी भभक थी। मैं बैठी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे युद्ध भूमि में घायलों के बीच में···जहाँ सैकड़ों योद्धा प्राचीन काल से

लड़ते आये हैं, यहाँ सुन्दरियों के पीछे, धर्म के पीछे, साम्राज्यों के लिए, पैदल, घोड़े पर, मोटर, टैंकों पर युद्ध हो चुके हैं···पर आज इंसान ने इंसानियत के लिए युद्ध किया है···

और मैं सोचती हूँ कि जिनकी पृथ्वी स्वर्ग नहीं है, नरक है, जहाँ आदमी जानवर है, वहीं स्वर्ग की कल्पना छला करती है। मैं वह गाना सुनना चाहती हूँ जो बेयोवन ने गाया है···मौत का गान···इस पुरानी दुनिया के ध्वंस में भी कितना सुख है···मैंने देखा···वह मौत जिंदगी की राह पर झाड़ू की तरह लगी थी, गलाजत मिटाने !···

मेरिया चुप हो गई थी।

अंगारे न बुझे

—१—

साँझ हो गई थी। अब अँधेरा झूमता हुआ झुका आ रहा था। कहीं कहीं गायों के रँभाने की आवाज आती, या फिर नीच जातों के यहाँ से ढफ बजता हुआ सुनाई देता।

गाँव के घरों का धूंआ अब छप्परों से निकल निकल कर धूल भरे रास्तों पर छाया सी करता हुआ आस्मान की ओर चल पड़ा। कहीं कहीं धूल के स्थान पर हल्की सी कींच भी हो गई थी! नाला बहने लगा था। और पानी बरसने के बाद किले पर लाल छाया उजाला बनकर तैरने लगी! अनेक वर्षों का यह किला, जिसके खंडहरों में से मोटी मोटी दिवारें झाँकती दिखाई देतीं, इस समय अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर प्रतीत हो रहा था।

उधर खंडहरों के पास जहाँ सरे साँझ उजाला रहते ही पुजारी गोपाल जी के मंदिर का पट बंद हो जाता था, क्योंकि चीते का खतरा बना रहता था, इमली के उसी भूतों वाले पेड़ की छाया में एक बड़े पत्थर के उपर, जहाँ से डूबते सूरज की अन्तिम किरणें अभी तक दिखाई देती थीं, मैंना बैठी थी। वह युवती थी और उसे देख कर लगता था वह कोई बसंत का झूमता हुआ पेड़ है। ऋतु आने पर आदमी की जात भी एक बार लहल-

हाती है और हवा में अपनी गंध फैलाकर आप ही सतृष्ण नयनों से चारों ओर व्याकुल सी ढूंढा करती है !

बूढ़ा जाधव बैठा अपने लोहे के औजारों को अब एक किनारे लगा रहा था। लड़के खेत की दाँई तरफ के कुंए पर नहा रहे थे और लड़कियाँ सिर पर घड़े धरे लौट रही थीं। जाधव ने मैना को देखा और सिर हिलाया।

गाड़ियों की चरर चूं अब शाँत थी। यात्रा इस समय समाप्त हो चुकी थी। सूर्य्य डूब गया था। न जाने ऐसे ही चलते चलते कितने दिन बीत गये हैं। सूर्य्य डूबते से सूर्य्य उगते तक एक स्थान पर रहते हैं, फिर जैसे भूमि व्यर्थ हो जाती है, वे आगे बढ़ जाते हैं। सब लोग ईंट पत्थर जोड़ कर चूल्हों की नकल बना कर रोटी का प्रबंध करने लगे। गाड़ियों के पीछे अब धूंआ उठने लगा था। स्त्रियों की बातचीत का तीखा स्वर उठ रहा था।

अधेड़ आयु का मंगा सुदृढ़ और बलिष्ठ व्यक्ति था। उसके घुटनों तक दुहरी धोती थी। हाथों में कड़े थे, गले में गंडा था। पाँवों में चमरौधा जूता। उसका स्याह रंग इस समय भी धुंधलके पर अलग दिखाई देता था।

और बंजारों की उस पुरानी धरती पर वह गीत उठता हुआ किले से टकराता और फिर कुंए, खेत, मैदान, सब पर झूमता। अनेक वर्षों से इस भूमि पर केवल बंजारे रहे..हैं। कभी बिल्लोची, कभी नट, कभी कोई और, और आज यह लोहपीटा जाति के सुती देह के स्त्री पुरुष, उसी धरती पर, उसी आकाश के नीचे, उन्हीं बबूलों के पास, मोरों की कुहू सुनते हुए, राजपूताने की पुरानी जिंदगी में गाते विभोर हो उठे थे।

—२—

तब रात हो गई थी अब वह गहरी हो चली।

जाट चौधरी का उन्नद्ध पुत्र अपनी ऊँची सफेद घोड़ी पर निकल चला। उसकी पतली पतली मूंछें तनी रहतीं। सिर पर ऊँचा साफा बाँधता और उसका प्रशस्त वक्षस्थल तथा सुदृढ़ भुजदंड देख कर एक कठोरता का आभास मिलता जिसकी पुष्टि करने वाले उसके बड़े बड़े काजर लगे नयन अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से अनथक चारों ओर घूरा करते।

उस रात में टीले पर चाँद निकल आया था जो सूखे पेड़ के तने से कट गया था। नीचे उलझी हुई छाया सूनसान चाँदनी में हवा के झोंकों में काँप उठती थी, और वह भी इतनी धीरे कि जैसे सब पर एक जादू सा छाया हुआ था।

तभी घोड़ी के रुकने का शब्द हुआ। फिर घोड़ी की पीठ पर किसी की थपथपाहट गूंज उठी और फिर वही एकान्त की स्वर साधना उस प्राचीन किले में से जैसे घुमड़ घुमड़ कर चारों ओर फैलने लगी।

मैना गुनगुनाती हुई बैठी रही। आज मन कुछ उदास था। वह दूर दूर तक फैली हुई उस चाँदनी को देखती और उसे 'मारवड़ी' की विरह व्यथा याद आने लगती।

हठात् वह चौंक पड़ी। धुंधली सी एक पुरुषाकृति धीरे धीरे टीले पर चढ़ती आ रही थी। मैना सन्नद्ध सी बैठी रही। आगंतुक समीप आकर रुक गया। मैना ने पहचाना। उसने कहा—कुँवर जी तुम हो ?

जैसे इसके अतिरिक्त उसने कुछ भी कहना ठीक नहीं समझा। जैसे इतनी रात बीत जाने पर जो कुँवर सामने आ खड़ा हुआ है इस पर उसे अत्यंत विस्मय हुआ है।

'हाँ मैं ही हूँ' कंचन ने उसके पत्थर पर पाँव रखते हुए झुककर कहा—और फिर कुहनी घुटने पर टेक कर क्षण भर उस पर गाल रख कर मैना को घूरता रहा। मैना के हृदय में एक भय जाग उठा।

'चल न मेरे साथ' कंचन ने धीरे से कहा, 'मैना, नीचे घोड़ी खड़ी है। उसी पर बैठ कर। घोड़ी नहीं है हवा है हवा। बात की बात में ले उड़ चलेगी ?

और मैना हँस दी जैसे उसने कोई अत्यंत कोमल बात सुनी थी, जैसे बालक ने हठीले स्वर में आज चाँद को मांग लिया था। एक बार उसने उसे भरे नयनों से देखा और फिर मुस्कराकर कहा—क्यों ? घर बसा कर रहोगे ?

कंचन ने फूत्कार किया—तेरे हिया नहीं है मैना 'तू पत्थर है, पत्थर।' उसके होंठ काँप रहे थे।

'नहीं तुम मेरे साथ चलो।' मैना ने कहा—वह उठ कर खड़ी हो गई थी। उसने बढ़ कर कंचन का हाथ पकड़ लिया और अनुरोध भरी दृष्टि से देखा। देखा जैसे आँखों से झल्ल उठने लगी। कंचन का शरीर सिहर उठा।

एक एक करके उसके दिमाग में अनेक चित्र भागने लगे। पिता की मर्यादा। मां की ममता। और कंचन ने देखा। सामने वह भव्य किला, दूर दूर तक की परिचित हवा, वह घर, यह खेत, वह गायें भैंसे, और फिर बचपन से लेकर अब तक के जीवन का सुपना...सामने सिर्फ एक स्त्री...

उसने मन ही मन दोनों को तोला। मां कहती है, चांद सी बहू लायेगी, सुनेगी तो क्या कहेगी और...

मैना अपलक निहारती रही, मौन, अधीर, सतृष्ण। कुछ देर वह उसे घूरता रहा, और हठात् हाथ छुड़ा कर कह उठा—तू पागल तो नहीं है। मैना ?

मैना तिक्त व्यंग से मुस्करा उठी

फिर चिढ़ कर उसने कहा—गांव के बनियों की छोरियों से भी तुझे अधिक पीली कर दूँगा हठीली जब तेरी चुनरी की झालर में चाँदी के ..

मैना की दृष्टि में उलझ कर बात खोगई और वह अनबूझ सा देखता रहा। कंचन मछली की तरह सिर्फ़ आटा देख रहा था। मैना शिकारी की तरह आटे के बहाने कांटा अटकाना चाहती थी। और मैना हँसी। उसने कहा, 'कल जवाब दूँगी।'

और तब कंचन का पौरुष उस सांप की तरह फन उठा कर बैठ गया जो दफ़ीना खोदते खोदते अचानक तृष्णा के धन पर फुफकारते हुए मिल जाता है।

कंचन ने वेग से उठा लिया। और उसके होंठ फुंकार उठे—कहे से लुगाई न आज तक मानी है, न मानेगी, एक बार जब मेरे घर पहुँच जायेगी तब देखता हूँ किसमें इतना जोर है कि वापिस ले आये।

मैना को अच्छा लगा। किन्तु भय से वह फुसफुसा उठी, 'यों नहीं... यों नहीं......

कंचन अंधा हो रहा था। तभी हवा पर हथौड़े की सी चोट बहने लगी मैना ओ! मैना हो!

अधेड़ आयु के मंगा का कर्कश स्वर गूंज रहा था।

'जल्दी चल' कंचन टीले के नीचे भागने लगा। मैना का प्रत्यक्ष विरोध धीरे धीरे मन के आंतरिक समर्पण में विवशता बन कर डूबने लगा। उसकी आँखों में भय की छाया फैल गई।

तभी किसी बलिष्ठ हाथ ने कंचन को पकड़ लिया और इससे पहले कि वह संभल सके उसे एक जोर का धक्का लगा। मैना छिटक कर दूर गिरी और उसके मुख से हठात् निकला—अरी मैया री।

मंगा ने पशु की तरह कंचन को घूरा। कंचन क्रुद्ध था। भयभीत मैना उठ कर वस्त्र संभालने लगी। उसने देखा दोनों दो पागल भैंसों की तरह

दीर्घ श्वास छोड़ते हुए खड़े थे। वह भाग चली। कंचन हाथ फैला कर उसके पीछे भागा, 'मैना'··'मैना।' किन्तु तभी मंगा ने झपट कर वेग से धक्का दिया। कंचन उसी करें हाथ की चोट से लुढ़क चला। जब मंगा ने मुड़ कर देखा मैना वहाँ नहीं थी।

—३—

आकाश से धीरे धीरे सब तारे खो गये। नीला आवरण शुद्ध हो गया। ओट की बेला में नायब तहसीलदार के द्वार पर कंचन की घोड़ी ठहर गई। हुक्के का पानी बदलने वाले अधेड़ नौकर ने उठ कर जुहार की और इत्तला की। हव लौट कर उसने घोड़ी की लगाम कंचन के हाथ से लेली, वह भीतर चला गया।

वे लोग काफी देर तक आपस में बातें करते रहे। इसी बीच में नौकर ने पानी भर दिया ढोरों को चारा डाल दिया। और बीच बीच में कभी भंगिन, कभी मालिन से मजाक भी कर लिया। तीन बार हुक्का भी भर कर पहुँचा दिया किन्तु मालिक और कुंवर की बात का अंत नहीं हुआ।

दुपहर तक ठीक परिणाम निकल आया। जिस समय घोड़ी के सुमों की आवाज खो गई, नौकर भीतर लौट कर आया। उसने देखा मालिक कंचन के जाने के बाद प्रसन्न थे। उसी दिन वे कंजर गिरफ्तार कर लिये गये जो निकट ही के मैदान में डेरा डाले हुए पड़े थे। लोहपीटों ने देखा और बूढ़ा जाधव अधमिची आँखों से दूर से देखता रहा।

एक जवान लड़की बिछिया गिरफ्तार हुए पुरुषों के पीछे पीछे चली गई। मैना देखती रही। सिपाही उससे बेहूदी बातें बक रहे थे और वह हँस रही थी।

दरोगा के यहाँ से जब वह लौटी मैना ने उसे रोका। देर तक प्रतीक्षा करते करते वह अधीर हो गई थी।

'कहाँ गई थी ?'

'दरोगा के पास ।' उसने संक्षिप्त उत्तर दिया ।

'दरोगा के पास ?'

बिछिया हँस दी । उसने कहा—क्या हुआ ? अरे इतनी सी बात थी । तेरी जगह मैं होती तो कभी की रानी बन गई होती ।

दाह भरा वह स्वर कितना मादक था, कितना उन्मत्त, किन्तु जैसे उसमें यौवन की जघन्यता विस्फुरण कर रही थी । फूट रही थी । उसकी बात सुन कर वह सिहर उठी । उसने धीरे से कहा—हम आजाद लोग हैं । कभी पिन्जड़े में बन्द नहीं रह सकते । संसार सारा फैला हुआ है । हमारे मरद इस तरह अगर पकड़ लिये जायें तो औरतें इन सिपाहियों की बोटी बोटी नोंच लें । कुत्ते, गुलाम ।

किंतु बिछिया ने उसके कंधे पकड़ कर कहा, 'पगली तू क्या जाने ? तेरे मुंह में कभी खून नहीं लगा ?'

और फिर मैना के कानों में वह विषैला स्वर जो अनेक रहस्यों का अज्ञात प्रकटीकरण था, धीरे धीरे आँचल खोलने लगा । बिछिया के नयनों में छल-छलाता उन्माद मैना की अतृप्त को ठोकर मारने लगा । उसे पूर्णायता की तृष्णा में बूढ़े जाधव की कठोर वाणी में कही गई वे बातें, वह गौरव, वह मर्य्यादा झोंके खाने लगी । बिछिया ने कहा—दरोगा कहता था । नायब-तहसीलदार कहता था । सब छूट जायेंगे । अरी इसमें दोष क्या है ? सब वही करते हैं । तू चलेगी, बड़ा अच्छा है ।

और मैना को कंचन याद आने लगा । वही रूप, और उसने उस हवा के झोंके पर बहते हुए कहा—मैं किसी को क्या जानूँ ।

'जानने में क्या कठिनाई है । पेट से तो कोई जान कर नहीं आता । सिर्फ कह, चलेगी । कह दे—हाँ ।'

हाँ, वह नहीं कह सकी। लज्जा से सिर झुक गया। केवल पूछा—कब ? 'आज ?'

बिछिया हँसी। उसने कहा, 'अभी नहीं, कल......'

बिछिया चली गई, किन्तु मैना का हाहाकार करता हृदय उसकी पग-ध्वनि से स्पंदित होता रहा। उसे लगा आज वह बदल गई थी। आज वह वह नहीं थी, जिसको कल तक किसी ने बाँध रखा था...

—४—

रात को जब बिछिया अपने डेरों में पहुँची उसने अपनी माँ से कहा—जल्दी ही वे सब छूट जायेंगे।

माँ समझ गई। युवती पुत्री का दिन भर अफसरों के बीच जाकर गायब रहना एक ऐसा ठोस कारण था कि उसी से सब उत्तर अपने आप सुलझ गये।

'पर गिरफ्तार किया क्यों था ? यहाँ तो अभी किसी ने हाथ भी नहीं फेंका।' माँ ने विस्मय से पूछा!

बिछिया हँस दी। उसने कहा—कंचन हैं न चौधरी का बेटा उसकी नजर उस छोकरी पर पड़ गयी है। पर वह हाथ नहीं लगती। परसों मैं उसके पास गई थी। मुझसे कहा उसे फँसवादे। न हो तो ब्याह ही कर लूँगा। मैंने कहा मुझे मतलब। मुझसे ही न कर लो। वह रूठ गया। कल किसी ने उसे पीट दिया। सो आज हम पर हमला बोल दिया। जानता था बिछिया और कैसे भी नहीं दबेगी।

उनकी सलाह होने लगी।

'फिर क्या हुआ ?' माँ ने पूछा, 'वह तैयार हुई है ?'

'होगी नहीं' बिछिया ने गर्व से कहा—है कौन जिसका सिर नहीं झुका ?

माँ ने देखा पुत्री अपने यौवन के गर्व में सब कुछ तुच्छ समझे बैठी थी। उसका हृदय संकुचित हो गया।

उधर वृद्ध जावव सुना रहा था। बहुत दिन पहले लोहपीटों का राज्य था। वे क्षत्रिय थे। जब वे हार गये तो उन्होंने अपनी आज़ादी के लिये प्रतिज्ञा की कि वे कभी घर बना कर नहीं रहेंगे। सदियाँ बीत गईं; पीढ़ियाँ बीत गईं, ऐसे ही गाड़ियों पर घूमते फिरते हैं, बंजारों की तरह, लोहार पीट पीट कर पेट भरते हैं।

मैना सुनती रही, सुनती रही, वृद्ध कहता रहा—आज तक हमारी जात के लोगों ने पुरखों की शान को निभाया है। आज तक वे कभी किसी छत के नीचे नहीं सोये। वे कभी बँध कर नहीं रहे। जिसका घर ही छिन गया, उनको फिर घर बना कर किस तरह जीवन बिताने की बेशर्मी हो सकती है। हम चिड़ियां की तरह, हवा की तरह, आजाद हैं। हम कभी बंध कर नहीं रह सकते। जब तक फिर हमारा राज न बन जाये······

और साँझ होने पर वह जब उठ कर चली तब वह यही सोच रही थी। क्या यह हो सकता है ? क्या सचमुच हमारा फिर से राज हो सकता है ? यदि हो गया तो वह रानी बनेगी। मन की यह कल्पना अत्यंत सुखद थी जिसने उसकी पाँवों में गति भर दी।

कुएँ पर बिछिया मिली जिसने बढ़ कर उसके हाथों को थाम लिया। मैना का स्वप्न टूट गया। वह अपने को ऊँचा समझ रही थी। हठात् बिछिया को देख कर वह सकपका गई। बिछिया ने अधमिची आँखों से देखा, देखा मैना का भूला हुआ यौवन और उसने कहा—घूमने चलेगी ?

वे दोनों चलने लगीं। मैना को बिछिया के मन चले यौवन ने धीरे धीरे छा लिया। उसे अनुभव हुआ जैसे बिछिया जीवन को जानती है

और मैना उसके सामने नितांत बालिका है। वह उसकी बातों को दिलचस्पी से सुनने लगी जिन्होंने मर्य्यादा का आवरण फाड़ दिया।

बिछिया ने कहा, 'वह'।

और फिर जिस धड़कती गाथा ने धमनियों में जादू भरना प्रारंभ किया उसकी ऊष्मा से रक्त की गति में एक उच्छृंखलता भरने लगी, जैसे तालाब ऊपर तक भर कर अब एक दम ऊपर आ जाना चाहता था, जैसे पत्तों पर फिसलती बूँदों ने एक बड़े जल विन्दु का आकार ग्रहण कर लिया था जो डब-डबा रहा था। उस अपार पौरुष की कहानी सुन कर लगा मैना का श्वास रुक जायेगा। जैसे अमराई में से मेघों का मंत्र गर्जन सुन कर मोरों की अधीर कुहू पुरवैया पर बार बार झूम रही थी, और माँसल जीवन की सुलगन अब चाँदनी की तरह गिरि, वन, नद, आकाश और पृथ्वी को एक कर देना चाहती थी; जिसमें अन्तर्दाह की करुण वंशी अपनी मुखर तान से सबको गुंजा दे, झंकृति कर उठे।

बावड़ी आ गई थी। मैना भूली भूली सी बैठ गई। बिछिया ने एक बार चारों ओर देखा जैसे किसी के आने की आशा थी। उस चार सौ बरस पुरानी बावड़ी के पत्थरों पर कूद कर उतरती हुई बिछिया की पगध्वनि नीरवता में ऐसी लग रही थी जैसे सूनापन आज यौवन बन कर तड़पने लगा था।

बात बढ़ चली थी। बिछिया ने हाथ पकड़ कर कहा—चल नहालें।

मैना आश्चर्य सा करती उठ खड़ी हुई। मन करता था वह अपने जीवन की विलास की कथाएँ सुनाती चली जाये और मैना सुनती रहे। कैसी अद्भुत थी यह स्त्री जो अपने गहन से गहन, गूढ़ से गूढ़ रहस्य को ऐसे लुटाती चली जा रही है जैसे कोयल अपनी कुहू...

जिस समय वे जल में पैठ रहीं थीं, मैना ने देखा बिछिया का उन्नत यौवन अपराजित था। सचमुच वह जाति उसे सुखी लगी जहाँ स्त्री यदि स्त्री

है, तो पूर्ण स्त्री है, और पुरुष यदि पुरुष है तो भी पूर्ण रूप से पुरुष है। एक उसकी जाति है जिसमें कितने कठोर बंधन हैं। आजाद तो असल में कंजर हैं, जिन्हें कोई मर्यादा नहीं, मस्त वेपरवाह...

वह हँस दी। मन कुछ कल्लोल करना चाहता था। बिछिया ने उसे तिरछी दृष्टि से देखा और चुभकी लगा कर जल में खो गई। मैना भी उसके अनुकरण पर जल में गोता लगा गई।

उस समय बावड़ी के ऊपर घोड़ी रुकने का शब्द हुआ। मैना चौंक उठी। उसने बिछिया की ओर भय के देखा। बिछिया जैसे निश्चिंत थी। उसने अनबूझ बन कर कहा—होगा कोई प्यासा।

किंतु प्यासे की आकृति देख कर मैना पुकार उठी, कंचन!

दीर्घकाय पुरुष ऊपर एक काली छाया बन कर खड़ा था। जिस समय दोनों भीगे वस्त्र पहन कर बाहर निकलीं कंचन ने बढ़ कर मैना का हाथ पकड़ लिया। बिछिया अरी मैया री कहती हुई भाग चली।

मैना ने भयार्त्त नयनों से कंचन की ओर देखा जिसकी आँखें जल रही थीं और ाथ का बंधन सुदृढ़ होता जा रहा था। देर तक वे एक दूसरे को घूरते रहे। दूर दूर तक का सुनसान इस समय तह पर तह जमती धुँधली छायाओं के चरण छूने लगा था। मैना ने देखा, चारों तरफ की वनी हरियाली के बीच उस बियाबान में कुछ उड़ते चमगादड़ों की फट फटाहट या फिर हवा की सनसन सनसन''और कुछ नहीं, केवल कंचन के दीर्घ श्वास''''''।

कंचन ने उसे अपनी ओर खींच लिया। मैना विशक्त सी हार गई।

—५—

अधेड़ आयु का मंगा चारों ओर घूम रहा था। इस समय वह कुछ कुछ थक चला था, किन्तु लौट कर जाने में भी कोई कल्याण नहीं था।

गाँव से लौटते ही उसने देखा आज कुछ विशेषता थी। सब अपना अपना काम छोड़ कर जाधव के समीप खड़े थे जिसकी क्रुद्ध आकृति पर एक निश्चय की भावना थी। मंगा को देखते ही जैसे आग भड़क उठी। तभी 'कहाँ है बोलो ?' जाधव का कठोर स्वर सुन कर सब काँप उठे। साँझ से ही मैना गायब थी। इस समय तक उसे लौट आना चाहिए था। वृद्ध कह रहा था कहाँ चली गई है मंगा ?

मंगा आगे बढ़ आया।

वृद्ध ने कहा—ढूँढ कर लाओ बेटा।

मंगा को जब घूमते घूमते काफी देर हो गई और मैना का कहीं भी पता नहीं लगा तब वह निराश हो चला। शायद किसी के साथ निकल गई। शायद कंजरों की ओर ही चली गई हो। पाँव उठ चले। कंजरों के डेरों में उसने देखा एक युवती बैठी चाँदनी में ठर्रा पी रही थी। मंगा को सामने देख कर वह हँसदी जैसे वह उसे जानती थी।

उसका हृदय काँपने लगा। बिछिया ने हँस कर कहा कौन है ? इधर आओ।

मंगा आगे बढ़ा।

'बैठ जाओ। लो पियोगे ? पियो।' बिछिया ने कुल्हड़ बढ़ा दिया।

वह बैठ कर शराब पीने लगा। उस सुदृढ़ पशु जैसे मनुष्य में शराब की गर्मी फैलने लगी। बिछिया नशे में झूम रही थी। सारा पड़ाव मदहोश नशे में झूम रहा था। चूल्हे बुझ चुके थे केवल चाँदनी का धुँधलापन अब और धुँधला हो चला। बिछिया मंगा पर सो चली थी और मंगा मटकी खाली कर रहा था।

आधी रात बीत गई किन्तु वृद्ध जाधव के पास कोई भी नहीं पहुँचा। उसका हृदय आशंका से घिर चला। मंगा की प्रतीक्षा करते करते वह ऊब गया। एक एक करके कितने ही पल आँखों की ओट हो गये।

बैठे बैठे वह देर तक बुदबुदाता रहा। सब सो रहे थे। यहाँ तक कि उसकी पत्नी, मैना की मां भी सो गई थी। केवल वही जाग रहा था, जैसे आँखों में नींद की छाया नहीं पड़ी, जैसे फैले हुए आकाश में पूरी सांझ बीत जाने पर भी एक भी पंछी पंख फैला कर नहीं उड़ा।

और तब अंधेरे ही में चरस खिंचने की आवाज आने लगी। जाधव चौंक उठा। क्या आधीरात बीत चली। उधर जमींदारों की हवेली तक सुनसान खिंचा हुआ था केवल कुछ गूजर रातों रात अपना पानी देकर, सुबह कुछ मजूरी करके कमा लेने का इंतजाम कर रहे थे।

सब सो रहे थे। आकाश से पृथ्वी तक वही निर्मम निस्तब्धता जिसमें मनुष्य का हृदय आतुर होकर कसकने लगता है, चारों ओर कसक रहा था। विस्तृत होकर फैल रहा था। यहाँ तक कि बैल भी नीरव खड़े थे। इस समय उनका भी मुँह बंद था। जैसे अब उनकी भी जुगाली बन्द थी। पेड़ पत्ते सब चुप थे। जब हवा उन्हें हिलाती थी तब भी जैसे करवटें मात्र लेते थे। जैसे चाँदनी में लहर उठाना उन्हें भी स्वीकृत नहीं था।

जाधव उठकर घूमने लगा और उसके सिर में एक भारीपन छा गया; जैसे आज तक जो नहीं हुआ क्या वह उसी के समय में उसी की छाया में होगा? क्या जाधव ही इस पाप का अधिकारी होगा? क्या आज पुरखों की शान धूल में मिल जायेगी?

किंतु इसी समय उसका ध्यान टूटा। कोई आ रहा था।

अधार स्वर से उसने पुकारा—कौन है? कौन आ रहा है वहाँ?

देखा मंगा सामने खड़ा था। वह शराब के नशे में चूर हो रहा था। वृद्ध को घृणा हुई। इसलिये नहीं कि वह नशे में था, बल्कि इस लिये कि उसने काम को काम नहीं समझा।

'मैना कहाँ है?' उसने कर्कश स्वर से पूछा

उसने झूमते हुये कहा—नहीं मिली।

उस संक्षिप्त स्वर और अभिव्यक्ति को सुन कर वृद्ध को लगा जैसे वह

बहुत ऊँचे से धड़ाम से गिर गया था ! जैसे वह मर गया था । घृणा से उसने कहा—कहीं नहीं मिली ?

'सारी दुनिया तो मैं ढूँढ नहीं सका ।' मंगा ने नम्र होकर उत्तर दिया । कुछ देर वह पृथ्वी की ओर देखता रहा, पर जाधव को चुप देख वह सोने चला गया । और जाते ही उस पशु रूप मनुष्य को नींद आ गयी । उसके खुर्राटों की भद्दी आवाज सुन कर जाधव का मन उबकाई लेने लगा । वह उसे नितांत असत्य लग..रहा था..।

—६—

आकाश में शुक्रतारा अकेला रह गया था और नीरव शीतल निस्तब्धता में धीरे-धीरे अन्धकार के पत्थरों को पिघलता देख रहा था जो घास पर बूंद-बूंद कर जमते जा रहे थे । हवा अब ठंडी हो गई थी । एक झिल्ली ओढ़ कर आकाश अब निर्जनतम हो चुका था ।

वृद्ध जाधव ने चौंक कर देखा । सामने से कोई आ रहा था । नहीं । वह स्त्री थी । शायद मैना होगी । मन किया एक बार पुकार ले, किन्तु अभिमान ने रोक लिया । वह उसे नहीं बुलायेगा । रात बहुत कम बच रही है । कहाँ गई थी यह ? कहाँ रही रात भर ?

हाँ, वह मैना ही थी । कोई संदेह नहीं । किन्तु इसके पांव आज उसी स्फूर्ति और आत्मविश्वास से क्यों नहीं उठते ? क्या आज यह उतनी उज्जवल नहीं रही जितनी इसे होना चाहिये था ? मैना धीरे-धीरे चली आ रही थी ।

वृद्ध आकर अपनी आग के पास बैठ गया । लोहे के औजार पास में बिखरे पड़े थे । वृद्ध के मुँह पर कभी कभी लपट का उजाला चमक जाता ।

भोर के आलोक में मैना उसके समीप आगई । उसने देखा और चुपचाप पास बैठ गई । उसकी आखों में प्रार्थना थी, भय था । वृद्ध देख कर मन ही मन प्रसन्न हुआ । तब तो इसमें अभी डर है । लड़की में यह डर देख कर उसको एक सांत्वना हुई । अर्थात् अभी संसार में उसका अपना महत्त्व है ।

'कहाँ गई थी ?' उसने कठोर स्वर से पूछा। लड़की ने सिर झुका लिया जैसे भय ने गला दबा लिया था। वृद्ध कोयले दहका रहा था जो लकड़ी जला कर बनाये गये थे। अब कई लोग जाग उठे थे। मैना चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही- उसे कोई राह नहीं दीख रही थी। वृद्ध ने उसे कोई साधन, कोई माध्यम नहीं दिया था। वह वहीं बैठी रही।

वृद्ध अपने काम में लगा हुआ। लोहे की सलाखों को आग पर तपा-तपा कर लाल करता था। फिर हथौड़ों से पीटता था। इसी प्रकार आधा घंटा बीत गया।

जब वृद्ध ने आँख उठा कर देखा, उसकी करुणा जागने लगी। बालिका पर इतना शासन काफ़ी था। मन ही मन उसे दया आई। उसने क्रुद्ध स्वर में ही कहा, 'सोती क्यों नहीं जाकर ? थक गई है ? दूर चली गई थी ? कह कर नहीं जाना था ? कोई साथ नहीं ले जा सकती थी ? एकदम सब कुछ तू ही होगई है ?

और अप्रत्यक्ष रूप में वह स्नेह अब उफनने लगा जिसके रुंध जाने से हृदय पत्थर की तरह कड़ा होकर छाती में अटक गया था।

मैना का साहस आस्मान की तरह भय के बादलों के बीच में से झांकने लगा था, किंतु हठात् आस्मान फिर ढँक गया। वृद्ध ने कठोरतम स्वर से गालियाँ देते हुए कहा, 'ख़बरदार कल से कहीं गई' टाँगें तोड़ दूँगा, सूअर की बच्ची ?

अपने आपको गाली देकर भी वह संतुष्ट नहीं हुआ। वृद्ध का मौन फिर घना होगया। हथौड़ों की चोट से कान बहरे होने लगते, फिर सन्नाटा छा जाता, फिर अंगारे दहक उठते, लेकिन मैना बैठी थी। वृद्ध फिर लोहा गरम करने लगा जब वह लाल हो जाता तब फिर उसे पीट पीट कर आकार देने लगता। प्रभात की नीरवता टूक टूक होने लगी।

आधा घंटा और बीत गया। मैना अभी तक बैठी थी। चौंक कर वृद्ध जाधव ने पूछा, 'क्यों बैठी है ?'

'मैं कुछ कहना चाहती हूँ' उसने कांपते होठों में से शब्दों को फिसलते हुए रोका, जैसे वे काई पर से गुज़र रहे थे। 'मैं ब्याह करना चाहती हूँ। आज से मैं तुम सबको छोड़ दूंगी। मैंने अपना मरद चुन लिया है।'

जाधव जैसे ठीक से सुन नहीं पाया। ब्याह का शब्द कानों में पड़ा अवश्य पर वह भी निश्चयात्मक रूप से नहीं। या जो उसने सुना था वह स्वप्न मात्र था, केवल उसकी अपनी कल्पना थी।

उसने पुकार कर कहा—मंगा ओ मंगा। किसी ने कहा सो रहा है।

जगा दे। और तू भी आजा। सब आ जाओ। मंगा जगा कर भेजा गया। कई युवक युवतियाँ आकर इकट्ठे हो गये। उन सबके मुखों पर एक आश्चर्य था। मंगा की आँखें अभी पूरी तरह से नहीं खुली थी। वह मुँह बाये देख रहा था।

वृद्ध ने कहा, 'अब बता तो। क्या कहती थी? सबके सामने दहराती।

उसे विश्वास था, मैना सब के बीच में कुछ नहीं कह सकेगी।

किंतु मैना कहने लगी—मैंने तय किया है कि मैं ब्याह करूँगी। मैंने एक आदमी पा लिया है। रोज-रोज आधापेट नंगी नहीं रह सकती मैं।

वृद्ध ने सुना, जैसे किसी ने कानों में गर्म सीसा डाल दिया।

'क्या बकती है?' एक बुढ़िया ने कहा। मैना तड़प उठी—धर रखो तुम अपनी मरजाद। भूखे मरते हैं, पर मरजाद नहीं छोड़ते। हमें नहीं रखनी है ऐसी शान। तुम्हें रखनी है, तुम निभाओ, दूसरों की ज़िंदगी क्यों बिगाड़ते हो? गेहूँ के साथ धुन पिसे यह कहाँ का न्याय है? मै तो नहीं रहूँगी।

'तो तू घर बसा कर रहेगी?' बुढ़िया ने फिर पूछा।

'नहीं तो क्या वन वन डोलूंगी?' मुझसे नहीं होता यह सब। मैं तो अब गई हूँ। तुम्हारी किस्मत में नहीं था, तो क्या करूँ? मेरा भाग्य तो अभी इतना नहीं फूटा।

जाधव क्रोध से काँप रहा था। उसका हृदय विक्षोभ से फट जाना

चाहता था। जिस गाड़ी के पहिये को उसने इस लिये बनाया था कि वह उसको राह से पार करायेगा, वही अब दलदल में फँस गया था और किसी भी प्रकार आगे नहीं बढ़ना चाहता। और वह भी उसकी खास बेटी। क्या यह इसी दिन के लिये पाली गई थी। हठात् जाधव तड़प कर उठ खड़ा हुआ। सब कांप उठे। मंगा की ओर उसका हाथ उठा। 'पकड़ सुसरी को' उसने चिल्ला कर कहा।

मंगा ने निर्मम पशु की भाँति चिल्लाती हुई मैना को पकड़ कर दबोच लिया। उस अतिकाय की भीम शक्ति से संघर्ष निष्फल था।

वृद्ध जाधव के दोनों हाथों में लोहे के लाल तपे हुए सलाख दिखाई दिये, जैसे उसने दो भयानक खूनी साँप उठा लिये हों।

'तेरा भाग्य......' उसके होंठ फुंकार उठे। मैना के नयन भय से फैल गये और सचमुच उसने उसके गालों को उस गर्म लोहे से दाग दिया। मैना चिल्ला कर बेहोश हो गई।

—७—

जब उसकी आँख खुली उसने देखा मां की गोद में उसका सिर रखा है। गालों में जलन हो रही है यद्यपि घावों पर कुछ लेप कर दिया गया है। मां कभी कभी उसके सिर पर स्नेह से हाथ फिरा देती है।

सब चलने की तैयारी में थे। मैना उठ कर बैठ गई। उसने धीरे से कहा—सब चल रहे हैं मां?

मां ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। यह तो स्पष्ट था। स्नेह सिद्ध आतुर कंठ फूट पड़ा।

'कितना निरदयी है' मां ने कहा, 'तनिक न देखा कि मेरी फूल सी बच्ची का क्या होगा? कितनी सुंदर थी? पर अब क्या वह रूप लौटेगा?'

उसके आर्द्र कंठ में एक व्याकुलता थी जिसने मैना के हृदय को छू लिया। पिता की याद आते ही वह सिहर उठी। मां रो रही थी। जैसे उसे अत्यंत वेदना हो रही थी।

मैना आँखों में पानी भरे देखती रही। सब छूट जायेगा। जङ्गल जङ्गल, दर दर फिर गाड़ियों पर बैठे बैठे हम लोग भटकते फिरेंगे। जहाँ सूरज उगेगा वहीं से चल पड़ेंगे, जब डूबेगा वहीं रुक जायेंगे···

वह किला, वह टीले, कंचन...सब छूट जायेंगे। घर बनाने की मादक आशा फिर खंड खंड हो कर गिरने लगी। उनका मन भीतर ही भीतर कांपने लगा। क्या सचमुच अब वह चली जायेगी, परदेसी, मुसाफ़िर...

बावड़ी, पेड़ और बिछिया, सब छूट जायेंगी···और एक एक करके ममता के वे बंधन, गाती हुई हवा पर अपना संदेश कह उठे, जिसे उसके अंततम ने सुना, सुना और वे अंतःस्पंदन की अनुभूतियों में, गहराइयों में उतर गये। वह इस तैयारी पर झुंझला उठी।

'मैया, हम कभी घर नहीं बना सकते? मैना ने निर्मल आँखों से देखते हुए पूछा। वह इस बात को नितांत अत्याचार समझती थी कि उसे स्त्री का यह साधारण अधिकार भी नहीं दिया जाये। सारा संसार रहता है। वही नहीं रह सकती?

'नहीं बेटी, पुरखों की आन है···'माँ ने उसे स्नेह से समझाया।

'पर पुरखे तो मर गये मां। अब क्या हम कभी राज कर सकेंगे?' उसने बिनती की।

'सदा से ऐसा ही होता आया है। ऐसा ही होता जायेगा। ठहर मैं आती हूँ।' मां उठ कर चली गई, पर मैना के मन ने इसे स्वीकार नहीं किया! मां काम में लग गई।

मैना चुप हो गई। मां के चले जाने पर उसने गालों पर हाथ फेरा। रात! रात कितनी सुहानी थी। कैसी नशीली थी। पर सुबह···और जले हुए गालों पर हाथ रखते ही वह कराह उठी। आँखों में पानी छलक आया।

तभी देखा दूर टीले पर कँचन घोड़ी पर सवार दिखाई दिया। साथ में बिछिया खड़ी थी।

मैना का मन किया वह जोर से रो पड़े। कंचन को देख कर ममता उमड़ पड़ी। इधर-उधर सब काम में लगे हुए थे। बे खबर। वह धीरे से उठी। बिछिया को देख कर मन भीतर ही भीतर कचोट रहा था। तब? कंचन बावड़ी पर अचानक ही नहीं आया था। बिछिया ने जाल बिछाया था? तभी सब मैना के खिलाफ हो गये थे। बूढ़ा तभी क्रोध से पागल हो गया था। उसने दुनिया देखी है। वह जानता है। वर्ना वह क्या कभी इतना कठोर था? और बिछिया कंचन को क्यों जानती है? इन दोनों में कब की जान पहचान है? और बिछिया जैसी औरत......।

बिछिया ने देखा और उसके मुँह से एक हल्की सी चीख निकल गई। उसने पास आकर कहा—तेरे बाप ने किया है।

मैना ने सिर हिला कर स्वीकार किया। कंचन ने क्रोध से आकाश की ओर देख कर कहा—मैं इसका बदला लेकर रहूँगा। पर अब तू तुरन्त घोड़ी पर बैठ जा। मेरे घर चल।

मैना चुप खड़ी रही। निस्पंद। निर्भ्रांत। उसके हाथों ने दोनों गालों को ढँक लिया, जैसे उसे छिपा लेना चाहती थी। कंचन समझा।

'गालों से क्या हुआ' मैना तुझे अब भी रानी बना दूंगा, कंचन का स्वर काँप उठा। 'मैं तुझे कभी नहीं छोड़ सकता।'

मैना को लगा वह सब झूठ था। बिछिया की आँखों की ललाई इसकी प्रत्यक्ष साक्षी दे रही थी। कंचन व्याकुल हो रहा था। मैना ने गंभीरता से कहा—बैयर कभी मन की नहीं कर पाती, कंचन। अब तुम मुझे घर भी ले जाओ तो तुम्हारे घर के लोग मुझे नहीं रहने देंगे। समझे? मैं कोई बेड़नी नहीं हूँ। मुझे छोड़ कर बिछिया को ही रानी क्यों नहीं बना लेते? तुम्हारे यहाँ तो धूर, हवा, पानी, और औरत को कभी छूत नहीं लगती।

उसके लजाते स्वर में भयानक उपेक्षा थी। भीषण व्यंग था। कंचन का सिर झुक गया। बिछिया ऐसे खड़ी रही जैसे मैना एक बच्ची थी। उसने उसकी ओर देख कर केवल मुस्करा दिया। मैना का हृदय जल उठा।

'जाओ। रात तुम्हारे मन की हो तो गई। कल कोई दूसरी ढूँढना।' मैना ने फिर विष उगला। घोड़ी को मोड़ कर हताश सा सिर झुकाये कंचन चला गया। बिछिया क्षण भर खड़ी रही। फिर एकाएक मैना की ओर मुँह बिचका कर उसी के पीछे पीछे चल पड़ी। मैना उन्हें देर तक देखती रही।

जब वह लौट कर आई उसने देखा उसकी मां जाधव के सामने खड़ी थी। वह रो रही थी। वृद्ध कांपते कंठ से कह रहा था—मैंने उसे जिगर के टुकड़े की तरह पाला था। पर वह तो दुनिया को नहीं समझती। हम कोई कंजरों की तरह नहीं हैं। भूखा रहने पर भी शेर घास नहीं खाता मैना की मां। पर इन हाथों ने ही बच्ची को जलाया था इन्हें सजा मिलनी चाहिए थी। मेरे मन ने पाप नहीं किया, हाथों ने जरूर किया था······।

बूढ़ा अपने हाथों को जलाये खड़ा था—दाग दिया था। वृद्ध कहता रहा—पुरखों की प्रतिज्ञा कभी झूठी नहीं होगी कभी नहीं मिटेगी। आग, यह अँगारे कुछ भी नहीं हैं······इन्हीं में जो लोहा पिलाते हैं, हम उसे पीट कर ढालते हैं······

आगे बढ़ कर फफक-फफक कर रोती हुई, भरे कंठ से व्याकुल होकर मैना ने जाधव के पाँव पकड़ लिये और वह उठी—दादा······। वह हँस उठा। उसने चिल्ला कर कहा—मैना की मां! आज तक कभी भी यह अंगारे न बुझे, न आगे कभी बुझेंगे······।

मां की आँखें हर्ष से भींग गईं थीं, किन्तु मैना की आँखों में उसी गौरव, उसी मरजाद, उसी आन और शान के अंगारे जल उठे थे। वृद्ध का सिर अभिमान से ऊँचा उठ गया था·········